ओझा निबन्ध-संग्रह

प्रथम भाग

[साहित्य-संस्थान, रा० वि० विद्यापीठ के इतिहास और पुरातत्व-विभाग के तत्वावधान में सम्पादित]

लेखक

स्व० डॉ० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा

१९५४ ई०
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर (राजस्थान)

प्रकाशक:—
अध्यक्ष, साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण, मार्च १९५४
मूल्य ५)

मुद्रक—
ज० ना० भिड़े
राजस्थान टाइम्स, लिमिटेड
अजमेर

प्रकाशकीय निवेदन

राजस्थान के प्राचीन साहित्य, लोकसाहित्य, इतिहास एवं कला-विषयक शोध कार्य को राजस्थान के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिये अत्यावश्यक और सर्वथा-अनिवार्य समझ कर राजस्थान विश्व विद्यापीठ (तत्कालीन हिन्दी विद्यापीठ) उदयपुर ने वि० सं० १९९१ में "साहित्य संस्थान" की स्थापना की थी। संस्था की योजनानुसार साहित्य-संस्थान के अन्तर्गत कई महत्वपूर्ण प्रवृतियां आरम्भ की गई थीं, जो अब बहुत कुछ विकसित और विस्तृत हो चुकी हैं, जैसे:—

१. राजस्थान में हिन्दी के हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज, २. राजस्थान में संस्कृत के हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज, ३. चारण-साहित्य-संग्रह, ४. लोक साहित्य-संग्रह, ५. राजस्थानी कहावत माला, ६. महाकवि सूर्यमल आसन, ७. स्व० डॉक्टर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आसन, ८. पृथ्वीराज रासो सम्पादन कार्य, ९. अध्ययन गृह तथा संग्रहालय, १०. इतिहास एवं पुरातत्व कार्य, ११. शोध-पत्रिका, एवं १२. राजस्थान साहित्य आदि।

साहित्य-संस्थान की उपर्युक्त विभिन्न प्रवत्तियों में 'इतिहास एवं पुरातत्व कार्य' भी एक मुख्य और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। इस प्रवत्ति विशेष के द्वारा राजस्थान और भारत की पुरातन इतिहास-सामग्री की शोध-खोज करना, तथा इतिहास का कार्य करने वालो को यथा-सम्भव साधन-सुविधायें देकर आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहित करने का नम्र किन्तु अत्यावश्यक प्रयत्न किया जाता है। स्व० डॉक्टर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान के काम को तथा उसके उज्वल भविष्य को देख-कर अपने समस्त प्रकाशित और अप्रकाशित निबन्ध सम्पादन और प्रकाशन के लिए प्रदान कर दिये थे। स्व० डॉक्टर ओझाजी भारतीय इतिहासकारों और पुरातत्व-वेत्ताओं में प्रमुख और अग्रणी विद्वान् थे। राजस्थान की अन्धकाराच्छन्न ऐतिहासिक सामग्री को सर्व प्रथम व्यापक रूप से प्रकाश में लाने का श्रेय स्व० डॉ० ओझाजी को ही प्राप्त है। इसी प्रकार भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में भी स्व० डॉक्टर ओझा जी ने जो महत्वपूर्ण देन दी है, वह कभी भुलाई नहीं जा सकती।

स्व० डॉक्टर ओझाजी ने वर्षो के परिश्रम से तैयार किये गये अपने ये निबन्ध जिस आशा और विश्वास के साथ 'साहित्य-संस्थान' को दे दिये थे, उसके अनुकूल-संस्थान कितना साबित होगा, यह तो भविष्य ही बता सकेगा, लेकिन इतना अवश्य हम यहाँ कह सकते हैं कि साहित्य संस्थान की जो

योजना और कल्पना है यदि साधन-सुविधाओं के साथ विद्वानों का सहयोग जैसा आज मिल रहा है, आगे भी मिलता रहा तो निश्चय ही हम बहुत कुछ कर गुजरने की स्थिति में होंगे। स्व० डॉक्टर ओझा जी के इन निबन्धों के सम्पादन कार्य में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉक्टर रमाशंकरजी, अध्यक्ष इतिहास विभाग काशी विश्वविद्यालय ने हमारे विभागीय सम्पादक का मार्ग प्रदर्शन कर जो उपयोगी और महत्वपूर्ण सुझाव दिये, उसके लिए संस्थान की ओर से मैं उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, इसी प्रकार- महाराजकुमार डॉक्टर रघुवीरसिंह सीतामऊ और डॉक्टर दशरथ शर्मा. दिल्ली ने समय समय पर जो महत्वपूर्ण सहायता दी है, उसके लिये मैं उनका भी अत्यन्त आभारी हूं। यद्यपि केवल आभार प्रदर्शित कर—उक्त दोनों विद्वान् महोदयों की साहित्य-संस्थान के विकास-कार्य में की गई–और की जा रही सेवा के मूल्य को नहीं आंका जा सकता है, और सच तो यह है कि श्री महाराजकुमार और श्री दशरथजी शर्मा साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व-विद्यापीठ के उन प्रमुख विद्वान्–स्तम्भों में से प्रमुख हैं, जिनके बिना 'संस्थान' का काम चल ही नहीं सकता हैं। इसलिये इन दोनों विद्वान महोदयों के प्रति आभार प्रदर्शित करना केवल रस्म अदायगी मात्र ही है।

"ओझा निबन्ध-संग्रह" के सम्पादन और प्रकाशन कार्य में 'साहित्य-संस्थान के इतिहास एवं पुरातत्व कार्य के संयोजक श्री नाथूलालजी व्यास को जितना परिश्रम करना पड़ा है, उतना अन्य किसी को नहीं। श्री व्यास ने वर्षों तक स्व० डॉक्टर गौरीशंकर जी ओझा के पास रहकर उनके काम में हाथ बटाया है. इसलिये ये श्री ओझाजी की दृष्टि और मति को जितनी सही रूप में समझ सकते हैं उतनी शायद ही अन्य कोई समझता हो। 'साहित्य-संस्थान' के इतिहास और पुरातत्व के काम को जमाने का प्रयत्न श्री व्यासजी का ही है। अतः उनको उनके परिश्रम के लिये धन्यवाद देकर या आभार प्रदर्शित कर उनकी सेवा के मूल्य को कम करने की मेरी इच्छा नहीं है। श्री व्यासजी का तो यह अपना कार्य ही है।

प्रस्तुत निबन्ध-संग्रह का प्रकाशन काफी समय पूर्व कर दिया जाना चाहिये था, परन्तु संस्था की अपनी कठिनाइयों के कारण आज से पूर्व नहीं हो सका, और यदि अभी भी राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, के पीठ मन्त्री श्री भगवतीलाल भट्ट ने राजस्थान-सरकार से आवेदन-निवेदन और दौड़ धूप कर प्रकाशन सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया होता तो न जाने कब प्रस्तुत 'निबन्ध-संग्रह' प्रकाशित होता? श्री भट्टजी के परिश्रम से ही इसका प्रकाशन सम्भव हो सका है।

अन्त में मैं राजस्थान सरकार, उसके मन्त्रीगण तथा शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना आवश्यक कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने "ओझा निबन्ध-संग्रह" के प्रकाशन कार्य के लिये आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहन पूर्ण सहयोग दिया है। राजस्थान और भारत में ऐतिहासिक अनुसंधान के लिये काफी गुंजायश और अनिवार्य आवश्यकता है। यदि प्रान्तीय सरकारों का प्रोत्साहन पूर्ण उदार सहयोग निरन्तर मिलता रहे तो इतिहास की महत्वपूर्ण कमी आसानी से दूर की जा सकती है। ऐतिहासिक अनुसंधान के काम गम्भीर और गवेषणापूर्ण तो हैं ही, परन्तु अधिक व्यय और श्रमसाध्य भी है, इस कारण बिना सरकारी सहायता के ऐसे काम अधिक परिणाम कारी नहीं हो सकते हैं। आशा है, राजस्थान-सरकार और उसका शिक्षा सचिवालय ऐसी ऐतिहासिक सामग्री की शोध-खोज और प्रकाशन के लिये आवश्यक सहयोग और सहायता देते रहने में किसी प्रकार के संकोच का अनुभव नहीं करेंगे।

साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ के सभी शोध-खोज के विद्वानों और विचारकों का मैं उनके सहयोग के लिये अत्यन्त आभारी हूँ। यह तो उन्हीं का काम है, उन्हीं के लिये है। अतः उन्हें ही करना है।

साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर (राजस्थान)

गिरिधारीलाल शर्मा
अध्यक्ष—
साहित्य-संस्थान

प्राक्कथन

स्वर्गीय विद्या-वाचस्पति श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के महत्वपूर्ण निबन्धों का यह विस्तृत "ओझा-निबन्ध-संग्रह" राजस्थान विश्व विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान, उदयपुर का एक महत्वपूर्ण एवं अनूठा प्रकाशन साहस है, स्वर्गीय ओझाजी ने अपने स्वर्गवास के पूर्व अपने समस्त निबन्ध साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर को भेंट दे दिये थे, और तभी से इस संग्रह के प्रकाशन की आतुर कामना बनी हुई थी, ओझाजी ने अपने समस्त निबन्ध राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर को इसलिये दिये थे कि वे इस संस्था को अपने ज्ञान की इस विरासत के लिए जहां पात्र मानते थे, वहां इनको इस बात की खुशी थी—कि उदयपुर में एक जन प्रयत्न साध्य विश्व-विद्यापीठ की स्थापना तथा विकास किया जा रहा है।

निस्सन्देह "ओझा निबन्ध-संग्रह" के प्रकाशन में आवश्यकता से अधिक देर हुई है। इसके कई कारण हैं, सबसे बड़ा कारण इसके सम्पादन क्रम का है, यह उचित ही था कि ओझाजी के समस्त लेखों के सम्पादन में भारत-प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ताओं का सहयोग प्राप्त किया जाय, यही अभिलाषा और प्रयत्न इस ग्रन्थ रत्न के प्रकाशन की देरी का भी कारण बनी, यह आभार मानना होगा कि ओझाजी के सुपुत्र प्रोफेसर श्री रामेश्वरजी ने हमारी इस, समीचीन कठिनाइयों का अनुभव किया, और आज दिन तक धैर्य्य रखा।

ओझाजी राजपूताना के इतिहास के एक भीमकाय अग्रणी थे, धुरन्धर तो वे थे ही, परन्तु राजपूताना की ऐतिहासिक संघर्ष—जर्जर मानवता के शताब्दियों तक के घटना, क्रम के एक व्यासकार थे, राजपूताने के अनेक ख्यात राज्य-वंशों-उसकी बिखरी एवं अनेक रण भूमियों के ओझाजी विशिष्ट ज्ञाता थे, अद्वितीय इतिहास क्षेत्रज्ञ ओझाजी थे—इसमें किसे सन्देह हो सकता है ? इन सबके उपरान्त ओझाजी पनघटों, मन्दिरों, धर्मशालाओं, खण्डहरों, गढ़ों, किलों, और विजन स्थानों के मौन पाषाण-शिलालेखों के महान् विद्यार्थी थे, भारत की प्राचीन लिपियां अपने सहज ही अनजान अर्थ उनके सामने मानो स्वयं खोलकर रख देती थी, ताम्रपत्र, पट्टे, परवाने और रेकार्ड ओझाजी के लिये सहज पाठ्य थे, सच तो यह है इतिहास की प्रत्येक प्रकार की सामग्री ओझाजी की शिष्य थी, आचार्य गौरीशंकर ओझा अपने इसी विशाल ज्ञान के कारण इतिहास के एक मानव-पर्यायवाची हो गये हैं।

यह सही है कि ओझाजी ने एक अग्रदूत की भाँति इतिहास का प्रणयन किया हैं, वंशावलियों, घटना-क्रमों और अन्य ऐतिहासिक सामग्रियों के आधार पर राजपूताना के राज्यवंशों को सामने रखकर उस मतिमान ने राजपूताने के इतिहास का शिवाला खड़ा किया है, परन्तु यह ओझा-निबन्ध-संग्रह प्रमाणित कर देगा कि ओझाजी ने भारतीय-इतिहास की प्राचीन पगडण्डियों, खण्डहरों, ताम्र-पत्रों, और उनके विवादास्पद इतिहास-प्रसंगों एवं व्यक्तियों को अछूता नहीं छोड़ा है, परोक्षतः ओझा ने भारतीय प्राचीन–एवं मध्यकालीन इतिहास कीं कई मार्ग दिशायें खोली हैं, तथा कई प्रश्नों का उत्तर दिया है, एवं कई कसौटियाँ और प्रसंग-कायम किये हैं। "ओझा निबन्ध-संग्रह" के विषयों पर दृष्टिपात करते ही ऐसा प्रतीत होता हैं कि सूक्ष्म किन्तु विशाल इतिहास-नयन प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय-अतीत को एकाग्र होकर देख रहा है, रोमाञ्च और प्रेरणा इन लेखों से मिलती है, और भारतवर्ष की अतीत शताब्दियाँ अपने अनूठे, और अचूक व्यक्तियों को हमें आज वर्तमान जीवन के चित्रों की भाँति भेंट देती है।

ओझा हमारे इतिहास का महान् ब्रह्मचारी है, और यही "ओझा-निबन्ध-संग्रह" का महत्व है।

राजस्थान विश्व विद्यापीठ
पीठ-स्थविर अधिकरण
उदयपुर (राजस्थान)

जनार्दनराय नागर
पीठ-स्थविर,

विषय-सूची

———

स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का संक्षिप्त परिचय

स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का जन्म वि० सं० १९२० भाद्रपद शुक्ला २, को सिरोही प्रान्त के रोहेड़ा गाँव में सहस्र औदिच्य जाति के हीराचन्दजी के घर में हुआ था, इनके चार पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुए, इनकी पत्नी की गृह कुशलता ने इनके प्रारम्भिक आर्थिक संकट मय जीवन को व्यवस्थित कर दिया, प्रारम्भिक शिक्षा घर पर-और वादमें वम्बई में शिक्षा प्राप्त की, वहीं इन्होंने इतिहास, पुरातत्व तथा लिपि आदि का परिज्ञान प्राप्त किया। प्रचुरज्ञान उपलब्ध कर ये उदयपुर की ओर आये, और म० फतहसिंहजी ने अपने राजकीय पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया। इस समय तक इन्होंने काफी शोध पूर्ण लेख लिखें। ई० सं० १८९५ में विश्व की सर्व श्रेष्ठ भारतीय प्राचीन लिपिमाला का प्रथम संस्करण जब प्रकट हुआ, ओझाजी प्रथम कोटि के साहित्यिक गिने जाने लगे। ई० सं० १९०८ में अजमेर के राजपूताना म्युजियम की स्थापना हुई, उसके ये अध्यक्ष बनाये गये और सन् ३८ तक कार्य करते रहे, इन्होंने राजस्थान के तथा भारत के सभी प्राचीन स्थानों का भ्रमण किया। ई० सं० १९०२ में कर्नल टॉड के इतिहास का सम्पादन किया। १९०८ में सोलंकियों का इतिहास लिखा, इसके वाद पृथ्वीराज विजय तथा कर्मचन्द वंश सम्बन्धी पुस्तक का सम्पादन किया और ई० सं० १९१८ में प्राचीन लिपिमाला का वृहद् संस्करण भारतीय प्राचीन लिपिमाला का परिवर्धित संस्करण निकाला, उस पर अ० भा० हि० सा० सम्मेलन से मंगलाप्रसाद पुरस्कार मिला। १९२० में ना० प्र० पत्रिका के सम्पादक वनाये गये, सन् १९२३ से राजपूताना का इतिहास लिखने का कार्य शुरु किया, इन्होंने उदयपुर, डूंगरपुर, वांसवाड़ा, प्रतापगढ़, जोधपुर और बीकानेर राज्यों के इतिहास लिखें, मुंहणोत नेणसी की ख्यात का सम्पादन किया और लगभग १५० पृष्ठों में शोध पूर्ण लेख लिखे, जो विद्यापीठ की ओर से पुस्तकाकार प्रकाशित किये जा रहे हैं।

सम्मान—ई० सं० १९१४ में राय वहादुर का खिताब

„ १९२८ में महा महोपाध्याय की उपाधि

„ १९११ में दिल्ली दरवार में निमंत्रित

„ १९२७ में हि० सा० सं० भरतपुर अधिवेशन तथा नडियाद में हुई गुजरात साहित्य सभा के सभापति

,, १९२८ में हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद में मध्यकालीन भारतीय सांस्कृतियों पर तीन भाषण

,, १९३३ में भारतीय अनुशीलन ग्रन्थ से अभिनंदित

,, १९३३ में ओरियन्टल कान्फ्रेंस बड़ौदा में इतिहास विभाग के अध्यक्ष

,, १९३७ में साहित्य वाचस्पति और वाचस्पति की पदवी

ई० सं० १९३७ में काशी विश्वविद्यालय में डी० लिट् तथा आन्ध्र विश्व विद्यालय से पुरातत्व वेत्ता की मान्यता।

भारत के कई महात्माओं, राजाओं, नेताओं तथा विद्वानों के सम्पर्क में रहे।

निधन वि० सं० २००४ वैशाख वदि ११ को स्वग्राम रोहेड़ा।

स्व० महामहोपाध्याय डॉ० श्री गौरीशङ्कर ओझा

ओझा निबंध संग्रह

पहला भाग

भूगोल सम्बन्धी वर्णन

१—भिन्न-भिन्न प्रदेशों के प्राचीन नाम आदि*

वंश-भास्कर तृतीय भाग की मध्य पीठिका से उद्धृत

(१) अङ्ग—

शक्ति संगम नामक तंत्र में लिखा है—

॥ श्लोक ॥ वैद्यनाथ समारभ्य भुवनेशान्तगंशिवे ।
तावदङ्गाभिधो देशो यात्रायां नहि दुष्यति ॥१॥

अर्थ—वैद्यनाथ से लेकर भुवनेश्वर तक है अंत—जिसका, वहां तक, हे पार्वती ! वह अंग नाम का देश यात्रा में दूषित नहीं है ॥१॥

सम्पादकीय टिप्पण

* बूंदी के महाकवि मिश्रण चारण सूर्यमल रचित 'वंशभास्कर' नामक ग्रंथ को शाहपुरा के सौदा-चारण-कवि बारहट कृष्णसिंह ने सम्पादित किया। उस समय वंशभास्कर में उल्लिखित भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों तथा अन्य देशों के प्राचीन नामों को पढ़ कर उनका परिचय देने की आवश्यकता जान पड़ी। बारहटजी ने श्री, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा से जब कि वे उदयपुर में विक्टोरिया म्युजिअम के अध्यक्ष थे, आग्रह किया कि वे परिचयात्मक वर्णन तैयार करदें। तदनुसार ओझाजी ने विविध ग्रन्थों के आधार पर वंशभास्कर में उल्लिखित भिन्न-भिन्न प्रदेशों के प्राचीन नामों आदि का परिचयात्मक उपरोक्त वर्णन तैयार कर बारहटजी के पास जोधपुर में भेज दिया, जहां पर वे वंशभास्कर का सम्पादन कार्य कर रहे थे। बारहटजी ने उसको वंशभास्कर की तृतीय भाग की मध्यपीठिका में सधन्यवाद स्थान दिया और उक्त तृतीय भाग वि० सं० १९५६ = ई० स० १८९९ में प्रताप प्रेस जोधपुर में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ है, जो अप्राप्य है। इतिहास के विद्यार्थियों के लिये यह विवरण उपयोगी है अतएव उसको अविकल रूप से उद्धृत किया गया है।

यह देश पूर्व दिशा में बंगाल के पश्चिमी भाग भागलपुर के पास था, जिसकी राजधानी चम्पापुरी थी। अङ्ग वंश के क्षत्रियों के निवास से देश का नाम अङ्ग हुआ।

(२) अटकः—

पंजाब की पश्चिमी सीमा पर अटक नाम का शहर है, जिसके नाम से अथवा अटक नदी के नाम से उसके समीप के प्रदेश का नाम पाया जाता है। [जाके (की) मन में अटक है, सो ही अटक रहा।]

(३) अनूपः—

।। श्लोक ।। वव्हम्वुर्बहुवृक्षश्च वातश्लेष्माऽऽमयान्विता।
देशोऽनूप इतिख्यातः शास्त्रेषु च मनीषिभिः ।।१।।

अर्थ—बहुत पानी, बहुत वृक्ष, वात-पित्त के रोगों से सहित होवे, उस देश को शास्त्र में बुद्धिमान् लोग अनूप देश कहते हैं।

पुराणों के अनुसार यह देश विंध्य-पर्वत के निकट और रघुवंश के अनुसार नर्मदा नदी के उत्तरी तट के एक देश का नाम होना चाहिये जिसकी राजधानी माहिष्मती नगरी थी। †

(४) अन्ध्रः—

।। श्लोक ।। जगन्नाथा दूर्द्धभाग मर्वाक् श्रीभ्रमरात्मिकात्।
तावधन्ध्राभिधोदेशःप्रोक्तः श्रीशक्ति संगमे ।।१।।

अर्थ—जगन्नाथ से दक्षिण में और भ्रमरात्मिका से इस ओर अंध्र नामक देश शक्ति संगम नामक तन्त्र में कहा है ।।१।।

यह तिलंगाने ‡ का प्राचीन नाम है, जिसको आंध्र वंश के क्षत्रियों

सम्पादकीय टिप्पण

† माहिष्मति—महेश्वर का सूचक है, जो नीमाड़ प्रदेश में है और इन्दौर राज्य के अन्तर्गत है। रघुवंश के काल से लगा कर दसवीं शताब्दि तक इसका बड़ा ऐतिहासिक महत्व रहा। विद्यादेवी की उपासना का यह केन्द्र था और यहां की महिलाएँ भी विदुषी होती थीं। भगवान् आद्य शङ्कराचार्य को माहिष्मती के मण्डन मिश्र की स्त्री से शास्त्रार्थ करना पड़ा था। ऐसा शङ्कर दिग्विजय में उल्लेख है। शास्त्रज्ञ और बुद्धिमान लोगों का निवास होने से ही इस देश का नाम अनूप पड़ा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

‡ तिलंगाना· यह तैलङ्ग का सूचक है और रामेश्वर के आस-पास होकर मद्रास प्रान्त में मिला हुआ है।

के राज्य रहने से 'आंध्र' भी कहते हैं ।

(५) अर्बुद:–

आबू पर्वत के आस–पास का प्रदेश, जिसमें सिरोही का राज्य और कुछ दांता, पालनपुर और गोड़वाड़ का हिस्सा शामिल है ।

(६) आटव्य:–

यह जंगल से भरे हुए देश का साधारण नाम है, जो विंध्यपर्वत के अरण्य प्रदेश के लिये होना सम्भव है ।

(७) आनर्त:–

काठियावाड़, जिसमें कच्छ और द्वारका शामिल था ।

(८) आभीर:–

॥श्लोक॥ श्री कोङ्कणादधोभागे तापीतः पश्चिमे परे ।
आभीर देशो देवेशि विंध्य शैले व्यवस्थितः ॥१॥
॥ इति शक्तिसंगमतन्त्रम् ॥

अर्थ—कोंकण देश से उत्तर और ताप्ती नदी से पश्चिम विंध्य पर्वत में, हे देवेशि ! (पार्वती) आभीर¶ देश है ।

यह शक्ति संगमतन्त्रमें लिखा है, जो बम्बई से सूरत तक था ।

(९) आरब:–

यह अरब स्थान का नाम मालूम होता है ।

(१०) आवन्त्य:–

मालवे का एक भाग जिसकी राजधानी उज्जैन थी ।

(११) उत्कल:–

॥श्लोक॥ जगन्नाथः प्रान्तदेश श्चोत्कलः परिकीर्तितः ॥

अर्थ—जिसमें जगन्नाथपुरी है, उसको 'उत्कल' देश कहते हैं, जो इस समय उड़ीसा के नाम से प्रसिद्ध है ।

सम्पादकीय टिप्पण

¶ समुद्र के तटवर्ती वसनेवाली जातियों में एक जाति आभीर थी, जो पशु-पालन करती थी । उसके नाम से यह प्रदेश 'आभीर' कहलाया । अपभ्रंश की उत्पत्ति आभीर जाति से ही मानी जाती है । आभीर का रूपांतर अहीर है, जो पशु-पालन और खेती करते है । मुगलकाल में अहीरों के नाम से एक भूभाग 'अहीरवाड़ा' कहलाता था । पिछले युग में जबकि मुगलों की सत्ता ढीली पड़ गई, यह लोग मालवा में लूट-मार कर अराजकता उत्पन्न करने लग गये थे ।

(१२) ऊर्ण:—

यह किसी देश का नाम हो, ऐसा प्रमाण नहीं मिल सका, परन्तु 'उरण' नामका एक नगर बम्बई अहाते के थाणा जिले में था, जो शिलारा वंश के राजाओं के राजप्रतिष्ठित नगरों में से एक गिना जाता था।

(१३) ऊपर-क्षेत्र:—

क्षारभूमि वाला देश तथा रेणुका आदि नवतीर्थ—*

॥श्लोक॥ रेणुका सूकरः काशि कालीकाल वटेश्वरौ ॥
कालिञ्जरो महाकाल ऊपरा नवमुक्तिदाः ॥१॥
॥इति वराहपुराणम् ॥

(१४) कम्बोज:—

॥श्लोक॥ पञ्चनद समारभ्य म्लेच्छाद्दक्षिण पूर्वतः ॥
कम्बोज देशो देवेशि ! वाजिराशि परायण: ॥१॥

अर्थ—पञ्जाब से लेकर अफगानिस्तान तक, हे पार्वती ! कम्बोज देश है, जो घोड़ों की गणना में श्रेष्ठ है।

(१५) कर्णाट:—

॥श्लोक॥ रामनाथं समारभ्य श्री रंगान्तं विलेश्वरिः ॥
कर्णाट देशो देवेशि ! साम्राज्य भोगदायकः ॥१॥

अर्थ—रामनाथ † से लेकर श्रीरंग तक कर्णाट देश है, वह राज्य भोगदायक है और दस लाख की आय को साम्राज्य कहते हैं। यथा:—

॥श्लोक॥ लक्षाधिपत्यं राज्यंस्यात् साम्राज्यं दश लक्षके।
शतलक्षे महेशानि ! महा साम्राज्यमुच्यते ॥१॥
॥ इति वरदा तन्त्रे ॥‡

यह देश दक्षिण में इसी नाम से प्रसिद्ध है।

सम्पादकीय टिप्पण

* यह गंगा-यमुना के तटवर्ती तथा उससे मिले हुए प्रदेश का सूचक है, जिसमें उपर्युक्त नौ तीर्थ थे। उपर्युक्त श्लोक से यह बड़ा विस्तारवाला देश था। वैसवंशी महाराज हर्षवर्द्धन, रघुवंशी प्रतिहारों तथा गाहड़वालों की राजधानी कन्नौज (कान्यकुब्ज) का भी ऊपर-क्षेत्र में ही समावेश हो जाता है।

† रामनाथ—रामेश्वर शिव !

‡ ऐतरेय ब्राह्मण में इस विषय का विशद् वर्णन है और स्पष्ट रूप से

(१६) कलिंग:—

।।श्लोक।। जगन्नायात्पूर्व भागे कृष्णा तीरान्तगं शिवे ।
कलिंग देशः संप्रोक्तो वाममार्ग परायणः ।।१।।

अर्थ—जगन्नाथ से पूर्व दिशा में कृष्णा नदी के तीर तक को कलिंग देश कहते हैं ।

यहां जगन्नाथ से पूर्व भाग में होना संभव नहीं, क्योंकि वहां पर समुद्र है । इसके लिये जॉन डानसन अपनी किताब 'हिंदू माइथोलॉजी' में कारोमण्डल कोस्ट के समीप का प्रांत लिखते हैं, जो उड़ीसा के दक्षिण का गोदावरी नदी तक का देश हो सकता है, जिसको उत्तरी सरकार भी कहते हैं। इस देश को कलिंग देश के क्षत्रियों के निवास से कलिंग देश कहते थे ।

(१७) कश्मीर:—

अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है, जिसको काश्मीर कहते हैं ।

(१८) कामरूप:—

इस देश को इस समय कांगरू देश कहते हैं, जिसकी राजधानी प्राग्-ज्योतिष थी । अब यह देश आसाम में गिना जाता है ।

(१९) कालवन:—

(२०) कुन्तल:—

।।श्लोक।। कामगिरिं समारभ्य द्वारकान्तं महेश्वरि ।
श्री कुन्तलाभिधो देशो वर्णितःशक्ति संगमे ।।१।।

अर्थ—कामगिरि से लेकर द्वारिका तक, हे पार्वती ! कुन्तल नामका देश शक्ति संगम तन्त्र में कहा है ।।१।।

अंग्रेजी पुस्तकों में महाराष्ट्र को दक्षिणी हिस्सा लिखा है, जिसकी राजधानी प्रतिष्ठानपुरी (पैठण) थी । पीछे से कल्याणी (कल्याण) में राज्य करने वाले चौलुक्य अपने को कुन्तल देश के राजा मानते थे ।*

सम्पादकीय टिप्पण

बतलाया गया है, कितनी आय वाला 'राजा' कहलाता था और कितनी आय वाला 'सामन्त' आदि । बरदा तन्त्र की रचना के समय सम्भव है, राज्यों की गणना इस प्रकार से करते हों; परन्तु अधिकांशतः इसके अनुसार राज्यों की गणना रहना प्रतीत नहीं होता है ।

* वर्तमान निज़ाम हैदराबाद राज्य का कुछ हिस्सा 'कुन्तल देश' का एक भाग हो सकता है । एवं बम्बई का सारा इलाक़ा 'कल्याण' कहलाता था ।

(२१) कुरु:—

।।श्लोक।। हस्तिनापुरमारभ्य कुरुक्षेत्राञ्च दक्षिणे ।।
पान्चाल पूर्व भागेतु कुरुदेश प्रकीर्त्तितः ।।१।।

अर्थ—हस्तिनापुर से लेकर कुरुक्षेत्र के दक्षिण और पान्चाल देश के पूर्व भाग को कुरुक्षेत्र कहते हैं । यह थानेश्वर के आस-पास है, जिसमें कुरुदेश प्रसिद्ध है । ¶

(२२) कुलात:—

यवन देश विशेष, जो किलात के नाम से प्रसिद्ध है ।

(२३) केतुक:—

(२४) केरल:—

इसी देश को 'उग्र' भी कहते थे, 'उग्रा केरल पर्यायाः' इति हेमचन्द्रः वर्तमान कनाड़ा (कानड़ा, कन्नड़ प्रदेश) और उससे मिले हुए कुछ अंश मलावार का नाम केरल देश था (कावेरी से पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच का प्रदेश) ।‡

(२५) कौशल:—

यह उत्तर कौशल और दक्षिण कौशल नाम के दो देश थे, जिनमें उत्तर कौशल अयोध्या के राज्य को कहते थे और दक्षिण कौशल उड़ीसा से दक्षिण-पश्चिम में विंध्य के निकट था ।

(२६) खुरासान:—

यवन देश विशेष, एक सूबे का नाम है और अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

(२७) ख्वारजम:—

यवन देश विशेष, एक सूबे का नाम है और अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

(२८) गक्खर:—

सम्पादकीय टिप्पण

¶ भारत की वर्तमान राजधानी दिल्ली और उसका समीपवर्ती भूभाग भी कुरु प्रदेश के अन्तर्गत माना जाता था ।

‡ इस प्रदेश के नाम से वहां के निवासियों की भाषा कन्नड़ी कहलाती है, जो अब भी प्रयोग में आती है। वर्तमान समय में यह प्रदेश मद्रास सूबे में है ।

यवन देश विशेष, जो इसी नाम से प्रसिद्ध है और वहां के रहनेवाले 'गक्खरी' कहलाते हैं ।†

(२९) गान्धार:—

पञ्जाब का कुछ पश्चिमी हिस्सा और अफगानिस्तान का पूर्वी हिस्सा मिलकर पहले गान्धार देश कहलाता था, जिसकी सीमा पश्चिम में लमगान और जलालाबाद, उत्तर में स्वात और बुनेर की पहाड़ियां, पूर्व में सिन्धु नदी और दक्षिण में काला बाग के पहाड़ होने चाहिये । शब्दार्थ चिन्तामणि कोष में कन्दहार को गान्धार लिखा है; परन्तु अंग्रेज विद्वानों के मत से यह विरुद्ध है ।

(३०) गोनर्द:—

वराहमिहर के अनुसार गोनर्द दक्षिण के किसी देश का नाम होना चाहिये; परन्तु इसका ठीक पता नहीं लगता । गोनर्द एक वंश का भी नाम था, जिसने कश्मीर पर राज्य किया था—तथा दक्षिण में गोनर्द नाम का एक पर्वत भी है, उसके नाम से देश का नाम भी होना सम्भव है ।

(३१) चीन:—

प्रसिद्ध चीन देश, जो इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

(३२) चौल:—

।।श्लोक।। द्रविड़ तैलंगयोर्मध्ये चौलदेश:प्रकीर्तितः ।।

अर्थ—द्रविड़ और तिलंगाना के बीच के देश को चोल कहते थे। जॉन डासन् अपनी पुस्तक 'हिंदू मॉइथालौजी' में इस देश को हिंदुस्थान के दक्षिण में तन्जोर के निकट होना लिखते हैं, जहां से कारोमण्डल शुरू होता है ।

(३३) जंगल:—

बीकानेर राज्य में जंगल* नामक नगर था, जिससे बीकानेर के

सम्पादकीय टिप्पण

† झेलम और चिनाब नदियों के बीच के प्रदेश को मध्यकाल में गक्खर देश कहते थे ।

* महाभारत में भी इसका उल्लेख है और कुरुदेश से मिला हुआ बतलाया है । वर्तमान बीकानेर राज्य की स्थापना के पूर्व यह प्रदेश 'जांगलू' कहलाता था, इसके भी पूर्व यह भूप्रदेश अजमेर के चाहमानों के आधीन था और इसीलिये उनकी एक उपाधि गांगलेश की भी थी । जहां परमारों

राजा अबतक 'जंगलधरा के बादशाह' कहलाते हैं। अथवा वन प्रदेश में बीकानेर का राज्य जमाया गया, जिससे 'जंगलधरा के बादशाह' कहलाते हों।

(३४) जालंधर:-

व्यास और सतलज नदियों के बीच का प्रदेश।

(३५) टक:-

पञ्जाब का एक हिस्सा जो कश्मीर से दक्षिण-पश्चिम को है। राजा अलखान ने यह देश कश्मीर के राजा को दिया था।

(३६) डाहल:-

चेदि देश का यह दूसरा नाम है। जबलपुर के आस-पास को चेदि कहते थे, जिसकी राजधानी (त्रिपुर) तेवर थी।

(३७) तंगण:-

वराहमिहर ने हिन्दुस्तान के उत्तरी-पूर्वी विभाग में रहने वाली तंगण नाम की जाति लिखी है। यदि यह शब्द तंगण के लिये होवे तो दक्षिण में वह एक देश का नाम है।

(३८) तर्जिक:-

जिसको तापिक भी लिखा है और इसका आधुनिक नाम ताजिक है। प्राचीन काल में अरबों को ताजिक कहते थे, इस कारण से अरब स्थान का नाम 'तर्जिक' होना सम्भव है। आर्यावर्त में इस नाम का देश होना पाया नहीं जाता।

(३९) ताम्रलिप्त:-

वर्तमान 'तमलक' प्रदेश, जो सेलाई नदी और हुगली नदी के संगम के पास है।

(४०) तुषार:-

तुखार नामक म्लेच्छदेश। वराहमिहिर के अनुसार 'तुषार' हिन्दुस्तान के उत्तर पश्चिमी हिस्से के एक देश का नाम था। इस देश के राज्यकर्ता 'तुषार' जाति के थे, इससे यह नाम प्रसिद्ध हुआ।

(४१) तूर्ण:-

की एक शाखा सांखला वंश का अधिकार था और उन्हीं की सहायता से विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभिक भाग में जोधपुर के राठोड़ वंशी राव जोधा के एक पुत्र बीका ने उधर का भूभाग प्राप्त कर अपने नाम से बीकानेर के नवीन राज्य की स्थापना की थी।

(४२) तैलंग:-

।।श्लोक।। श्रीशैलंतुसमारभ्य चोलेशान मध्यभागतः ।
तैलंग देशो देवेशि ! ध्यानाऽध्ययन तत्परः ।। १ ।।

अर्थ---श्री शैल से लेकर चोल देश के मध्यभाग तक, हे पार्वती ! तैलंग देश है, जहाँ के निवासी ध्यान और पढ़ने में तत्पर रहते हैं ।।१।।

इसका प्राचीन नाम आन्ध्र देश था ।

(४३) त्रिगर्त:-

सुशर्मा राजा का देश, जिसको इस समय जालन्धर कहते हैं। पंजाब का पूर्वी हिस्सा, जिसमें अधिकतर सतलज और सरस्वती नदियों के बीच का प्रदेश होना चाहिये । इस देश में तीन नदियों और तीन शहर (जालन्धर, धोव और कांगड़ा) होने के कारण इसको 'त्रिगर्त' कहते हैं ।

(४४) दशेरक:-

वराहमिहर के अनुसार तो 'दशेरक' या 'दाशेरक' हिन्दुस्तान के उत्तर में रहने वाली एक जाति का नाम था । यदि देश का नाम हो तो जिस देश में वह जाति निवास करती थी, उसी देश का नाम 'दशेरक' होना चाहिये; परन्तु शब्दार्थ चिन्तामणि कोष में मरु देश का नाम 'दशेरक' लिखा है ।

(४५) दार्व:-

वराहमिहर हिन्दुस्तान के उत्तर-पूर्वी विभाग में रहने वाली एक जाति का नाम 'दर्व' लिखते हैं, जिनके निवास से यदि यह कोई देश का नाम होवे तो वह देश हिन्दुस्तान के ईशान कोण में चीन के पूर्व भाग में होना चाहिये ।

(४६) द्रविड:-

।।श्लोक।। कर्णाटाश्चैव तैलङ्गा गुर्ज्जरा राष्ट्रवासिनः ।।
आन्ध्राश्च द्राविडाः पञ्च विन्ध्यदक्षिण वासिनः ।। १ ।।
इति स्कन्दपुराणम् ।।

अर्थ---'कर्णाट,' 'तैलङ्ग,' 'गुर्ज्जर,' † 'राष्ट्र' (महाराष्ट्र) और 'आन्ध्र' विंध्याचल से दक्षिण दिशा में इन पाँच देशों में निवास करनेवालोंको 'पञ्चद्राविड' कहते हैं । इससे तो उन पाँचों देशों की द्रविड संज्ञा पाई जाती है, जो मद्रास से लेकर कन्या कुमारी तक फैला हुआ है ।

(४७) धाटि:-

इसका अपभ्रंश 'धाट्' मालूम होता है, जो भारतवर्ष के पश्चिमी भाग में

सम्पादकीय टिप्पण

† गुर्ज्जर---गुजरात ।

वाढमेर से आगे पाया जाता है, जहाँ के घोड़ों का उत्तम होना प्रसिद्ध है।

(४८) नेपाल:–

अव भी इसी नाम से प्रसिद्ध है।

(४९) पञ्चनद:–

पञ्जाव।

(५०) पञ्चाल:–

पञ्चालक्षत्रियों के निवास से इस देश का नाम पञ्चाल प्रसिद्ध है और विष्णुपुराण के चौथे अंश में १६वें अध्याय के मत से राजा हर्यश्व के-मुद्गल, सृन्जय, वृहदिपु, प्रवीर और काम्पील नामक पाँच पुत्र हुए। पिता ने कहा कि मेरे आधीन पाँचों देशों की रक्षा करेंगे। इसी से उन पाँचों का नाम 'पाञ्चाल' हुआ, जिससे यह पाञ्चाल देश प्रसिद्ध है। इसकी सीमा तंत्रशास्त्र में इस प्रकार लिखी है।

कुरुक्षेत्रात् पश्चिमेतु तथा चोत्तरभागतः॥
इन्द्रप्रस्थान्महेशानि! दशयोजन जनकद्वये ॥१॥
पञ्चालदेशोदेवेशि! सौन्दर्य गर्वभूषितः ॥२॥

अर्थ—कुरुक्षेत्र से पश्चिम तथा उत्तर के भाग में हे पार्वती! दिल्ली से १२ योजन पर सुन्दरता के गर्व से भूषित ऐसा पाञ्चाल देश है और राजशेखर के कथनानुसार गङ्गा और यमुना के वीच का देश 'दुआव'* का नाम पाञ्चाल होना चाहिये।

(५१) पांड्य:–

॥श्लोक॥ कम्वोजाद्दक्षभागेतु इन्द्रप्रस्थांच पश्चिमे।
पाण्ड्यदेशो महेशानि! महाशूरत्व कारकः ॥१॥

सम्पादकीय टिप्पण

* गङ्गा और यमुना के वीच का देश 'दुआव,' 'पाञ्चाल' कहलाता हो, ऐसा पाया नहीं जाता। दुआव का नाम अन्तर वेद तो लिखा हुआ मिलता है। राजशेखर कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार नरेश महेन्द्रपाल का समकालीन था। यही नहीं, वह महेन्द्रपाल का शिक्षागुरु था। उसने काव्यमीमांसा, कर्पूरमंजरी, वाल रामायण, वालमहाभारत विद्धशालभंजिका नाटिका आदि ग्रंथों की रचना की थी। महेन्द्रपाल का राज्य समय वि० सं० ९५०–९६४-ई० सं० ८९३–९०७ निश्चित है। अनुमान से राजशेखर का भी यही समय स्थिर होता है। संभव है कि उसके समय (वि० सं० की दसवीं शताब्दी) में दुआव पाञ्चाल कहलाता हो।

अर्थ—कम्बोज से दक्षिण भाग में और दिल्ली से पश्चिम में हे पार्वती ! बहुत शूरवीरों वाला पांड्य देश है।

जॉन डॉनसन् का मत इससे विरुद्ध है; क्योंकि वह इस देश को हिन्दुस्तान के दक्षिण में लिखता है जिसकी राजधानी 'मदुरा' थी।

(५२) पेशोरः—

यह पिशावर शहर का नाम है, जो भारतवर्ष के उत्तरी भाग में विद्यमान है।

(५३) प्रस्थलः—

(५४) प्राग्ज्योतिपः—

एक शहर का नाम है, जो कांगरू देश में नरकासुर की राजधानी थी, जिस (नरकासुर) को श्रीकृष्ण ने मारा था।

।।श्लोक।। तत्रैवहिस्थितो ब्रह्मा प्राङ्नक्षत्रससर्जह ।।
ततः प्राक्ज्योतिपाख्येयं पुरी शक्रपुरीसमा ।।१।।

अर्थ—वहाँ स्थित होकर ब्रह्मा ने पहले नक्षत्र बनाये थे, इस कारण से उस नगर का नाम प्राग्ज्योतिध हुआ, जो इन्द्र की पुरी अमरावती के समान है।

(५५) प्राच्यः—

शरावती नदी की सीमा से पूर्व और दक्षिण का देश।

(५६) फारसः—

पारस देश, जिसको इस समय 'परशिया' कहते हैं। वहाँ घोड़े बहुत अच्छे होते हैं।

(५६) वग्गडः—

यह प्रान्त इस समय 'डूंगरपुर-बांसवाड़ा' के राज्यों में बटा हुआ है; जिसको इस समय 'वागड़' कहते हैं।

(५८) वङ्गः—

।।श्लोक।। रत्नाकरंसमारभ्य ब्रह्मपुत्रान्दागं शिवे ।।
वङ्गदेशोमया प्रोक्तः सर्व सिद्धि प्रदर्शक ।।१।।

अर्थ—समुद्र से लेकर ब्रह्मपुत्र नदी तक हे पार्वती ! मैंने बंग देश कहा है, वह सर्वसिद्धियों को दिखाने वाला है (बङ्गालका पूर्वी हिस्सा)।

(५९) वदक्शाः—

यवन देश विशेष, जो अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है।

देश विशेष, जहाँ के घोड़े उत्तम होते हैं।

(७७) वाल्हीक:-

।।श्लोक।। कंबोजदेशमारभ्यमहाम्लेच्छात्तुपूर्वगे ।।
वाल्हीक देशोदेवेशि ! अश्वोत्पत्ति परायण: ।।१।।

अर्थ—कम्बोज देश से लेकर फ़ारस से पूर्व में, हे पार्वती ! घोड़ों की उत्पत्ति में श्रेष्ठ वाल्हीक देश है ।। १ ।। इसको इस समय 'बलख' कहते हैं ।

(७८) वासक:-

(७९) विदर्भ:-

।।श्लोक।। भद्रकाली महापूर्वे रामदुर्गाच्चपश्चिमे ।।
श्री विदर्भाभिधो देशो वैदर्भीतत्रतिष्ठति ।।१।।

अर्थ—महाभद्रकाली से पूर्व, रामदुर्गा से पश्चिम में श्रीविदर्भ नामक देश है, जहाँ वैदर्भीदेवी स्थित है ।।१।।

इसको इस समय 'बरार' कहते हैं, जो हैदराबाद के नवाब ने गवर्नमेंट को फौज खर्च में दिया है । इसकी प्राचीन राजधानी कुण्डिनपुर (कुण्डपुर)थी ।

(८०) विन्ध्य:-

विन्ध्याचल का प्रदेश ।

(८१) विराट्:-

।।श्लोक।। वैदर्भदेशादूर्द्धञ्च इन्द्रप्रस्थाच्चदक्षिणे ।।
मरूदेशात्पूर्वभागे विराट: परिकीर्तित ! ।।

अर्थ—विदर्भ देश से ऊपर, दिल्ली से दक्षिण और मरूदेश (मारवाड़) से पूर्व में विराट्देश है ।।१।।

इसकी राजधानी विराट् नगर होने से विराट् देश प्रसिद्ध हुआ था, जिसको मत्स्य देश भी कहते थे। यह 'विराटपुर' वैराट् देश के नाम से इस समय जैपुर में है ।*

सम्पादकीय टिप्पण

* विराट् नाम के कुछ और भी स्थान हैं, जिसमें एक उदयपुर राज्य के अन्तर्गत विराट् नामक प्रदेश है, जो अजमेर-मेरवाड़ा के जिले से मिला हुआ है । यह अब भी वैराट् नाम से प्रसिद्ध है । जिसका मुख्य स्थान बधनोर है, जिसका नाम वर्द्धनपुर लिखा हुआ मिलता है । पन्द्रहवीं शताब्दी में चित्तौड़ के महाराणा लक्षसिंह (लाखा) ने वहाँ पर बसने वाले मेरों का जो उपद्रव और लूटमार करते थे, दमन कर वैराट् का गढ़ तोड़ दिया और उसके स्थान

(८२) शतद्रू:–

सतलज नदी अथवा उसके किनारे का देश।

(८३) शाल्व:–

महाभारत में एक देश का नाम लिखा है, परन्तु इसका पता नहीं लगता।

(८४) सगर:–

(८५) संचोर:–

जो इस समय 'साँचोर' के नाम से जोधपुर का एक परगना प्रसिद्ध है।

(८६) समस्थली:–

यह अन्तर्वेद देश, जिसकी राजधानी मेनपुरी थी।

(८७) सार्वर:–

यह देश का नाम नहीं पाया जाता, किन्तु गाँव का नाम हो सकता है अथवा 'सौवीर' का 'सावर' लिखा हो तो उत्तरी सिन्धू का नाम होना चाहिये।

(८८) सुमील:–

(८९) सूकर (क्षेत्र)

सोरम नामक गंगाघाट तथा सोरम प्रान्त का नाम सूकर है।

(९०) सूर्यारक:–

(९१) सौराष्ट्र:–

॥श्लोक॥ कोंकणात्पश्चिमेतीर्थ समुद्र प्रान्त गोचरं ॥
हिंगुला जान्तको देवि ! दशयोजन देशक: ॥
सौराष्ट्र देशोदेवेशि ! तस्मात्तुगुर्जराभिध: ॥१॥

अर्थ—कोंकण से पश्चिम का तीर्थ जो समुद्र प्रांत तक मालूम होता है और जिसका अन्त हिंगुलाज तक है, ऐसा दस योजन में फैला हुआ, हे देवि ! सौराष्ट्र नामक देश है, उसके आगे गुर्जर नामक देश है; यह काठियावाड़ के दक्षिणी भाग का नाम है।

सम्पादकीय टिप्पण

में बधनोर बसाया। बधनोर के रेवत दर्वाजे बाहर एक चट्टान पर गुप्त कालीन लेख भी खुदा हुआ है, जो अभी तक विद्वानों की दृष्टि में नहीं आया है।

(९२) स्तवकारः—

(९३) स्वर्णगिरिः—

यह मारवाड़ के एक प्रान्त 'जालोर' के पर्वत का नाम है । इसी पर्वत के नाम से चहुवाणों की एक शाखा 'सोनिगरा' प्रसिद्ध हुई है ।

२–राजपूताने के भिन्न-भिन्न विभागों के प्राचीन नाम—

'राजपूताना' नाम अंग्रेजों का रक्खा हुआ है। जिस समय उनका सम्बन्ध इस देश के साथ हुआ, उस समय बहुधा यह सारा देश, भरतपुर राज्य को छोड़कर, राजपूत राजाओं के अधीन था, जिससे उन्होंने गोंडवाना, तिलिंगाना के ढङ्ग पर इसका नाम 'राजपूताना' अर्थात् 'राजपूतों का देश' रक्खा। राजपूताना के प्रथम और प्रसिद्ध इतिहास-लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने इस देश का नाम 'राजस्थान' या 'रायथान' रक्खा जो राजाओं या उनके राज्यों के स्थान का सूचक है, परन्तु अंग्रेजों के पहले यह सारा देश उक्त नाम से कभी प्रसिद्ध रहा हो, ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। अतएव वह नाम भी कल्पित ही है क्योंकि 'राजस्थान या उसके प्राकृत (लौकिक) रूप 'रायथान' का प्रयोग प्रत्येक राज्य के लिये हो सकता हैं। सारे राजपूताना के लिये पहले किसी एक नाम का प्रयोग होना पाया नहीं जाता, उसके कितने एक अंशों के तो प्राचीन काल में समय-समय पर भिन्न-भिन्न नाम थे और कुछ विभाग अन्य बाहरी प्रदेशों के अन्तर्गत थे।

जांगलदेश[1]

वर्तमान सारा बीकानेर राज्य तथा मारवाड़ (जोधपुर राज्य) का उत्तरी हिस्सा, जिसमें नागौर आदि परगने हैं, प्राचीन काल में 'जांगल देश' कहलाता था।

---

1 जांगल देश के लक्षण ये बतलाए जाते हैं कि जिस देश में जल और घास कम होती हो, वायु और धूप की प्रबलता हो और अन्न आदि बहुत होता हो, उसको जांगल देश जानना चाहिये' (स्वल्पोदकतृणो यस्तु प्रवातः प्रचुरातपः। संज्ञेयो जांगलो देशो बहुधान्यादिसंयुतः—शब्दकल्पद्रुम, काण्ड २, पृ० ५२९)। भाव प्रकाश में लिखा है कि 'जहाँ आकाश स्वच्छ और उन्नत हो, जल और वृक्षों की कमी हो और शमी, कैर, बिल्व, आक, पीलु और बेर के वृक्ष हों उसको जांगलदेश कहते हैं। (आकाश शुभ्र उच्चश्च स्वल्पपानीय पादमः। शमीकरीर बिल्वार्कपीलु कर्कंधुसंकुलः।। . देशो वातालो जांगलः स्मृतः (वही पृ० ५२९)।

इन लक्षणों से राजपूताना के वालूवाले किसी प्रदेश का नाम जांगलदेश होना अनुमान किया जा सकता है।

महाभारत में कहीं देश या वहां के निवासियों[1] का सूचक 'जांगल' नाम अकेला (जांगल:[2]) मिलता है तो कहीं 'कुरु' और 'मद्र' देशों (निवासियों) के साथ जुड़ा हुआ ('कुरुजांगला'[3] 'माद्रेयजांगला:'[4])मिलता है। महाभारत में वहुधा ऐसे देशों के नाम समास में दिए हुए पाये जाते हैं, जो परस्पर मिले हुए होते हैं। जैसे, 'कुरुपांचाला:' आदि। अतएव माद्रेयजांगला:' और 'कुरुजांगला:' का आशय यही है कि 'मद्र[5]। और 'कुरु[6]' देशों से जुड़ा हुआ 'जांगल देश'। मद्र और कुरु दोनों जांगल के उत्तर में थे, इसलिये उनसे दक्षिण में जांगल देश होना चाहिये।

वीकानेर के राजा जांगल देश के स्वामी होने के कारण अपने को

---

(1) संस्कृत में देशों के नामों के साथ जव 'देश' या उसका पर्यायसूचक कोई दूसरा शब्द नहीं रहता,तव वे वहुधा वहुवचन में मिलते हैं जैसे कि 'पांचाला:, 'जांगला': 'दशार्णा': आदि। इसका कारण यह है कि देशों के नाम वहुधा उनके निवासियों के नाम पर रखे गए हैं।

(2) कच्छा गोपालकक्षाश्च जांङ्गला: कुरुवर्णका: (महाभारत, भीष्मपर्व; अध्याय ६, श्लोक ५६—कुंभकोणं संस्करण। पैत्र्यं राज्यं महाराज कुरुवस्ते स जाङ्गला:. वही; उद्योगपर्व, अध्याय ५४, श्लो०७)।

(3) तीर्थयात्रामनुक्रामन्प्राप्तोस्मि कुरुजांगलान् (वही वनपर्व, अ०१०, श्लो०११)। ततः कुरुश्रेष्ठमुपेत्य पौरा: प्रदक्षिणं चक्रुरदीनसत्वा:। तं ब्राह्मणा श्चाभ्यवदन्प्रसन्ना मुख्याश्च सर्वे कुरुजांगलानाम्। स चापि तानभ्यवदत्प्रसन्न: सहैव तैर्भ्रातृभि र्धर्म राजः तस्थौ च तत्राधिपतिर्महात्मा दृष्ट्वा जनौघं कुरुजांगलानाम् (वही; वनपर्व, अ०२३, श्लो०५-६)

(4) तत्रेमे कुरुपाञ्चाला: शाल्वा माद्रेयजाङ्गला: वही; वनपर्व, अ० ६, श्लोक० ३६।

(5) पंजाव का वह हिस्सा जो चिनाव और सतलज नदियों के वीच में है। इंडि० एंटि०, जि, ४०, पृ० २८।

इस समय वीकानेर राज्य (जांगल) का उत्तरी हिस्सा मद्र देश से नहीं मिलता; परन्तु संभव है कि प्राचीन काल में या तो मद्र की सीमा दक्षिण में अधिक दूर तक हो, या जांगल की उत्तरी सीमा उत्तर में मद्र से जा मिलती हो।

(6) 'कुरु' के लिये देखो आगे पृ० ३३२। (ना०प्र०पत्रिका, काशी; नवीन संस्करण, भाग २ सं० ३, सं. ९७८)

'जांगलधर (जांगल देश) के बादशाह' कहते हैं जैसा कि उनके राज्यचिह्न में लिखा रहता है ।[1]

जांगल देश की राजधानी 'अहिछत्रपुर'[2] थी जिसको इस समय नागौर[3] कहते हैं और जो जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग में है ।

---

(1) बीकानेर राज्य के राज्यचिह्न में 'जय जंगलधर बादशाह' लिखा रहता है ।

(2) 'अहिछत्रपुर नाम के एक से अधिक नगरों का होना हिन्दुस्तान में पाया जाता है । उत्तरी पांचाल देश की राजधानी अहिछत्र थी जिसका वर्णन चीनी यात्री हुएन्संग ने अपनी यात्रा की पुस्तक 'सी-यु-की' में किया है (बील; बुद्धिस्ट रेकर्ड्स ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड, जि० १, पृ०२००)। जैन लेखक जांगल देश की राजधानी अहिछत्र बतलाते हैं (इंडि० एंटि०; जि०४०, पृ०२८)। कर्नल टॉड के गुरु यति ज्ञानचन्द्र के संग्रह (मांडल मेवाड़ में) में मुझे एक सूची २५ देशों तथा उनकी राजधानियों की मिली, जिसमें भी जांगल देश की राजधानी 'अहिछत्र' लिखी है । भैरणमत्ति के शिलालेख में सिंधुदेश में अहिछत्रपुर नामक नगर का होना लिखा है (एपि०इंडि०; जि०३,पृ० २३५) इसी तरह और भी 'अहिछत्र' नाम के नगरों का उल्लेख मिलता है (बंबई गॅजेटिअर; जि०१, भाग २ पृ० ५६०, टिप्पण ११)।

(3) जोधपुर राज्य के नागौर नगर को जांगल देश की राजधानी अहिछत्रपुर मानने का पहला कारण यह है कि नागौर 'नागपुर' का प्राकृतरूप है । नागपुर का अर्थ 'नाग का नगर' और 'अहिछत्रपुर' का अर्थ 'नाग है छत्र जिस नगर का' है । नाग और अहि दोनों एक ही आशय (सांप) के सूचक हैं । संस्कृत के लेखक नामों का उल्लेख करने में उनके पर्याय शब्दों का प्रयोग सामान्य रूप से करते हैं । पुराणों में विशेषकर 'हस्तिनापुर' नाम मिलता है परन्तु भागवत में उसके स्थान में 'गजसाह्वयपुर' (भागवत, १।८।४५; ४।३१। ३०; १०।५७।८) या 'गजाह्वय' पुर (भागवत, १।६।४८;१।१५।३८) नाम भी हैं । महाभारत में हस्तिनापुर के लिये नागसाह्वयपुर (७।१।८१४।६५।२०) और नागपुर (५।१४।७।५) नामों का प्रयोग भी मिलता है क्योंकि हस्ती, नाग और गज तीनों एक ही के सूचक हैं । दूसरा कारण यह है कि चौहान राजा सोमेश्वर के समय वि०सं० १२२६ फाल्गुन वदि तीज के बीजोलियां (उदयपुर राज्य में) के चट्टान पर के लेख में चौहान राजा सामन्त का अहिछत्रपुर में राज करना लिखा है (विप्रश्रीवत्सगोत्रे भूदहिछत्रपुरे पुरा । सायंतोनंतसामंत, पूर्णतल्ले

सपादलक्ष

जांगल देश की राजधानी अहिछत्रपुर (नागौर) के आसपास के छोटे से प्रदेश का प्राचीन नाम सपादलक्ष[1] था। राजपूताने में चौहानों का प्रथम अधिकार उसी प्रदेश पर रहा, जिससे वे 'सपादलक्षीयनृपति' (सपादलक्ष के राजा) कहलाए। फिर उनकी राजधानी शाकंभरी (सांभर) नगर हुई, जिससे वे 'शाकंभरीश्वर' (संभरी नरेश)' भी कहलाते हैं। उनकी तीसरी राजथानी अजमेर हुई। समय पाकर उनके राज्य का विस्तार बढ़ता गया। और विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे के समय से तो राजपूताने के बाहर के कितने एक प्रदेश (देहली, हांसी आदि) भी उनके राज्य के अधीन हो गये थे, परन्तु सामान्य रूप से जितना देश उनके अधिकार में रहा, वह सारा ही-सपादलक्ष[2] कहलानें लगा। उसके अन्तर्गत जांगल (जोधपुर राज्य के उत्तरी

नृपस्तत: (श्लोक १२)। पृथ्वीराज विजय महाकाव्य सें पाया जाता है कि वासुदेव (सामन्त का पूर्वज) शिकार को गया, जहाँ एक विद्याधर की कृपा से शाकंभरी (सांभर) की झील उसको नज़र आई" (सर्ग ४)। इससे पाया जाता है कि सांभर की झील चौहानों की मूल राजधानी 'अहिछत्रपुर' से बहुत दूर न थी, ऐसी दशा में नागौर ही 'अहिछत्रपुर' हो सकता है।

(1) नागौर के आस पास के इलाके (नागौर पट्टी) को वहाँ के लोग अब तक 'स्वाज़क' या 'सवाज़क' कहते हैं, जो सपादलक्ष का ही अलौकिक रूप है। तीन भिन्न-भिन्न देशों के नाम सपादलक्ष मिलते हैं, जिनमें से एक तो गढ़वाल, कुमाऊँ आदि प्रदेशों का, जैसा कि गया से मिले हुए राजा अशोकचल्ल के छोटे भाई कुमार दशरथ के समय के गया के लेख से पाया जाता है (इंडि० एंटि०; जि०१०, पृ० ३४६) एपि० इंडि०; जि० १२, पृ० ३०।) दूसरा सांभर और अजमेर के चौहानों के अधीन के सारे देश का नाम जो उनके शिलालेखों तथा ऐतिहासिक पुस्तकों में मिलता है (देखो आगे पृ० ३३१, टिप्पण १-५) और तीसरा दक्षिण में था जिसका उल्लेख केवल कनड़ी भाषा के प्रसिद्ध कवि पंप के रचे हुए 'विक्रमार्जुन विजय' (पंपभारत नामक 'कनड़ी काव्य में जो शक संवत् ८६३ (वि० सं. ९९८) के आस पास बना था; मिलता है (गौरीशंकर हीराचन्द ओझा–सोलंकियों का प्राचीन इतिहास; प्रथम भाग, पृ२०६)।

(2) देवं सोमेश्वरं द्रष्टुं राज श्री रुद्रकंठत। आत्मजाभ्यामिव [यश: प्रतापाभ्यामिवान्वित:। सपादलक्षमानिन्ये महामात्यैर्महीपति: (पृथ्वीराज विजय; सर्ग ८, श्लो०५७५८)। सपादलक्षमामर्थ नमृद्गत भया (नृपा?)नक: (सोलंकी कुमारपाल का चित्तौड़ का शिलालेख, (एपि० इंडि० जि० २ पृ० ४२३)।

विभाग सहित), जयपुर राज्य[1] का शेखावाटी से लगाकर रणथंभोर से कुछ दक्षिण तक का प्रदेश जिसमें कोटा रियासत का उत्तरी भाग भी है, मेवाड़ का मांडलगढ़[2] (मंडल कर दुर्ग) से लगाकर सारा पूर्वी हिस्सा[3], बूंदी राज्य का पश्चमी अंश, किशनगढ़ का राज्य तथा अजमेर का सारा प्रदेश था। गुजरात के सोलंकी (चौलुक्य) राजाओं के समय के शिलालेखों तथा ऐतिहासिक संस्कृत पुस्तकों में अजमेर के चौहानों को कहीं सपादलक्ष[4] और कहीं जांगल देश[5] का राजा कहा है, जिससे पाया जाता है कि–प्राचीन जांगल देश चौहानों के विस्तृत राज्य के अन्तर्गत हो जाने के कारण पीछे से सपादलक्ष में गिना जाने लगा।

---

(1) संवत् १२४४ श्रावणपूर्व सपादलक्षे.. (जयपुर राज्य के बीसलपुर का शिलालेख, अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज के समय का–कनिंगहाम, आर्कियालाजिकल सर्वे, रिपोर्ट, जि० ६, प्लेट २१)।

(2) श्रीमानस्ति सपादलक्षविषय:शाकंभरीभूपणस्तत्रश्रीरतिवाममण्डलकरं नामास्ति दुर्गमहत्....।१।....म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तेक्षतित्रासाविन्ध्यनरेन्द्रदो: परिमल स्फुर्जन्त्रिवर्गोजसि। प्राप्तो मालवमंडले वहुपरीवार: पुरीमावसद्यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक् शास्त्रं महावीरत: ।।५।। (जैन विद्वान् आशाधर रचित 'धर्मामृतशास्त्र।)

(3) ओं सं० १२२५ ज्येष्ठ वदि १३ अद्येह श्रीसपादलक्षमंडले महाराजा विराज परमेश्वर......शाकंभरीभूपालश्रीप्तिथिम्विदेव विजयराज्य (मेवाड़ के पूर्वी हिस्से के घौड़ गाँव के रूठी राणी के मंदिर के स्तम्भ पर खुदा हुआ चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीदेव, पृथ्वीभट) के समय का शिलालेख)।

(4) सपादलक्षमामर्थ (ऊपर टिप्पण १)। सपादलक्ष: सहभूरलक्षैराना-कभूपाय नतायदत्त: (प्रवन्धचिन्तामणि, पृ० १९०)।

(5) किमङ्ग? जांगलपते: सौप्तिकप्रस्तावोपश्लोकमनाकार्णतवान् भवान् प्रल्हादनदेव विरचित 'पार्थपराक्रमव्यायोग,' पृ०३)। दण्डे मण्डपिका हैमी सहमत्तैर्मतंगजै:। दत्वा पादं गले येन जाङ्गलेशादगृह्यत (कीर्ति कौमुदी, सर्ग २, श्लो०५३)। हृदिप्रविष्टयद्वाण क्लिष्टेनाघूर्णितं शिर:। जांगलक्षोणिपालेन व्याचक्षाणै: परैरपि—

(वही स०२, श्लो०४६)। गूर्जरेश्वरपुरोहित सोमेश्वर ने अपनी 'कीर्ति कौमुदी' में गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल और अजमेर के चौहान राजा आना (अर्णोराज, आनाक, आनल्लदेव) के बीच की लड़ाई के प्रसंग में चौहान राजा को जांगलक्षोणिपाल अर्थात् 'जांगल देश का राजा' कहा है (सर्ग २, श्लो०४६)। परन्तु उसी ग्रन्थकार ने अपने 'सुरथोत्सवकाव्य' में गुजरात के चौलुक्य राजा

कुरु

महाभारत में कुरु देश का नाम कभी अकेला[1] मिलता है और कभी उसके साथ जांगल[2] और पांचाल[3] के नाम जुड़े हुए मिलते हैं। जांगल दक्षिण में और पांचाल पूर्व में उससे जुड़ा-हुआ था और वे दोनों कभी कभी कुरुराज्य के अधीन[4] भी रहे थे। कुरु देश में पटियाला राज्य के पूर्वी (आधे, हिस्से से लगाकर यमुना के पूर्व तक के और थानेश्वर के कुछ उत्तर से लगाकर देहली से कुछ दक्षिण तक के प्रदेश का

जयसिंह (सिद्धराज) के और चौहान आना के युद्ध प्रसंग में आना को सपादलक्ष का राजा कहा है (दृप्त:सोऽपि सपादलक्षनृपति: पादानतिं शिक्षित:-सर्ग १५, श्लोक २२) मेरूतुंग ने बहुत जगह सपादलक्ष ही नाम दिया है; जांगल कहीं नहीं।

(1) देखो. (पृ. टि.-) पृ० ३२८ टिप्पण २ (ना. प्र. प., नवीन संस्करण, काशी भाग २ संख्या ३, सं. १९७८)।

(2) देखो (पृ. टि.) पृ० ३२८ टिप्पण ३ („ „)।

(3) तत्रेमे कुरूपाञ्चाला: शाल्वा माद्रेयजांगला: (महाभारत, भीष्मपर्व, अ० ९, श्लो० ३९)।

पांचाल अंतर्वेद (गंगा और यमुना के बीच के प्रदेश) के बड़े हिस्से का नाम था(आर्य? अदूरवर्त्तिनी भगवत्ययोध्या। इसे अन्तर्वेदीभूषणं पांचाला:-राजशेखर बालरामायण, अंक १०)। पांचाल के दो विभाग थे, जो उत्तरी और दक्षिणी पांचाल कहलाते थे। उत्तरी पांचाल की राजधानी अहिछत्रपुर थी, जिसके खंडहर बरेली से २० मील पश्चिम में पाए जाते हैं। दक्षिणी पांचाल की राजधानी कांपिल्य नगर गंगा के तट पर था, जिसको इस समय कंपिल कहते हैं और जो करीब२ बदाऊं के सामने है (देखो खड्गविलास प्रेस का छपा टॉड राजस्थान, प्रथम खंड, पृ० ४५)।

कोई-कोई पांचाल को पंजाब का प्राचीन नाम मानते हैं; परन्तु वह भ्रम ही है। पंजाब कभी पांचाल नहीं कहलाया। उसका प्राचीन नाम पंचनद मिलता है। (कृत्स्नंपञ्चनदं चैव तथैवामरपर्वतम्-महाभा०; सभापर्व, अ०३५, श्लो० ११)। अथपञ्चनदं गत्वा नियतो नियताशन:। (वही, वन प०; अ०८० श्लो०८४)।

(4) देखो (पृ. टि.) पृ० ३२८, टिप्पण २। (ना.प्र.प.; नवीन संस्करण काशी भाग२, सं. १९७८)। (मैकडॉनल और कीथ, वैदिक इंडेक्स, जि० १, पृ० १६६)।

समावेश होता था[1]। उसकी प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर गंगा के तट पर मेरठ जिले में (मेरठ से २२ मील उत्तर-पूर्व में) थी। यह नगर गंगा के प्रवाह से नष्ट हो गया। जिससे परीक्षित के सातवें वंशधर निचक्षु ने कौशांबी को अपनी राजधानी बनाया[2] उसकी दूसरी राजधानी इंद्रप्रस्थ (पुरानी देहली) पांडवों के समय में स्थिर हुई थी। राजपूताने का केवल अलवर राज्य का उत्तरी हिस्सा जिसमें तहसील तिजारा आदि हैं, कुरु देश के अन्तर्गत था।

कुरु देश को कुरुक्षेत्र[3] भी कहते हैं। कौरव-पांडवों का प्रसिद्ध महाभारत का युद्ध इसी धर्म क्षेत्र में हुआ था।

मत्स्य

मत्स्य देश कुरुक्षेत्र से दक्षिण और शूरसेन से पश्चिम में था। उसमें अलवर राज्य की तहसील अलवर, राजगढ़, टहला आदि उक्त राज्य के पश्चिमी और दक्षिणी हिस्से तथा अलवर से मिला हुआ जयपुर राज्य का बहुत-सा अंश था। महाभारत के समय उक्त देश का राजा 'विराट्' था, जिसके नाम से उक्त देश की राजधानी विराट् या विराट् नगर कहलाई हो। विराट नगर को इस समय वैराट् कहते हैं और वह जयपुर राज्य के अंतर्गत उक्त नाम की तहसील का मुख्य स्थान है। वह राजपूताने के प्राचीन नगरों में से एक है जहां मौर्यवंशी राजा अशोक के लेख मिले हैं[4]।

शूरसेन

मत्स्य देश से पूर्व में 'शूरसेन देश' था। उसके अन्तर्गत मथुरा के आस-पास का प्रदेश (मथुरामंडल, व्रज), अलवर राज्य का पूर्वी हिस्सा जिसमें तहसील रामगढ़, गोविन्दगढ़ आदि हैं, भरतपुर और धौलपुर के राज्य तथा करौली राज्य का बहुत सा अंश (उत्तरी) था। उसकी राजधानी मथुरा (मधुपुरी) थी।

---

(1) तैत्तिरीय आरण्यक में कुरु (कुरुक्षेत्र) की सीमा दक्षिण में खांडव (वन), उत्तर में तूर्घ्न और पश्चिम में परीणह का होना लिखा है (वही, जि. १, पृ० १७०)।

(2) विष्णु पुराण, अंश ४, अध्याय २१।

(3) कुरुक्षेत्र को समंतपंचक भी कहते थे जिसका कारण ऐसा माना जाता है कि वहीं परशुराम ने क्षत्रियों को मारकर उनके रुधिर से पाँच खड्डे भरे थे (महाभारत, आदि प०; अ०२, श्लो० १-७)।

(4) कनिंगहाम, कॉर्पस् इंक्रिपशन इंडिकेरम्, जि० १, पृ०९६-९७।

राजन्य देश

मथुरा के आस-पास के प्रदेश से कुछ सिक्के ऐसे मिले हैं जिन पर खरोष्ठी या ब्राह्मी लिपि में 'राजञ्ञजनपदस' (राजन्यजनपदस्य–राजन्य देश का–सिक्का) लेख है[1]। ये सिक्के मथुरा के (उत्तरी) क्षत्रपों के सिक्कों की शैली के हैं और उन पर के खरोष्ठी लिपि के लेख से पाया जाता है कि वे विदेशी राजाओं के चलाए हुए हों। सम्भव है कि मथुरा के आस-पास के प्रदेश अर्थात् शूरसेन देश पर क्षत्रपों का अधिकार होने से पूर्व वहाँ के स्वामी राजन्य अर्थात् क्षत्रिय (राजपूत) थे जिससे उस देश का नाम राजन्य देश भी रहा हो। 'राजन्य देश' शूरसेन या उसके एक विभाग का नाम होना चाहिए।

शिवि

चित्तौड़ के प्रसिद्ध किले से ७ मील उत्तर में 'मध्यमिका' नामक प्राचीन नगरी के खंडहर हैं। उसको इस समय 'नगरी' कहते हैं। वहाँ से मिले हुए कई एक ताँबे के सिक्कों पर ई० सं० पूर्व की दूसरी शताब्दी के आस-पास की ब्राह्मी लिपि में–'मझिमिकाय शिविजनपदस, (मध्यमिकायाः शिविजनपदस्य—शिवि देश की मध्यमिका का–सिक्का) लेख है,[2] इस पर से अनुमान होता है कि उस समय मेवाड़ या उसका चित्तौड़ के आसपास का अंश 'शिवि[3] नाम से प्रसिद्ध था। पीछे से वह देश मेवाड़ (मेदपाट) के अन्तर्गत हो गया या उस नाम से प्रख्यात हुआ और उसका मूल नाम तक लोग भूल गए।

मेदपाट

उदयपुर राज्य के शिलालेखों तथा ऐतिहासिक पुस्तकों में उस राज्य या देश का नाम 'मेदपाट'[4] मिलता है और लोग उसको 'मेवाड़' कहते

---

(1) वी० ए० स्मिथ, कैटलॉग् ऑफ दी कॉईंस इन् दी इंडिअन् म्यूज़िअम, कलकत्ता पृ० १६४–६५,१७६–८०।

(2) कनिंगहाम आर्किआलॉजिकल सर्वे, रिपोर्ट जि० ६, पृ० २०३।

(3) हिन्दुस्तान में शिवि नाम के एक से अधिक देश पाए जाते हैं, शिवि नाम का एक देश लाहौर और मुलतान के बीच था (वही, जि० १४, पृ० १४५)। वराहमिहिर ने भारत के दक्षिणी विभाग में शिविक (शिवि) नाम देश भी बतलाया है (कंकटटंकणवनवासिसि शिवि कफणिकार कोंकणाभीराः—बृहत्संहिता अध्याय १४, कूर्म विभाग, श्लो० १२)।

(4) नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण), भाग १, पृ० २६८, टिप्पण ५२।

हैं । उस देश पर पहले मेद (संस्कृत में) अर्थात् मेव या मेर जाति का अधिकार रहने से उसका नाम मेदपाट (मेवाड़) पड़ा। मेवाड़ का एक हिस्सा अब तक 'मेवल' कहलाता है तथा मेवों के राज्य का स्मरण दिलाता है । मेवाड़ के देवगढ़ की तरफ़ के इलाके में और अजमेर-मेरवाड़ा के मेरवाड़ा प्रदेश में, जिसका अधिकतर अंश मेवाड़ से ही लिया गया है, अब तक मेरों की आबादी अधिक है । कितने एक विद्वान् मेर (मेव, मेद) लोगों की गणना हूणों में करते हैं, परन्तु मेरलोग शाकद्वीपी ब्राह्मणों की नांई अपना निकास ईरान की तरफ से बतलाते हैं और मेर (मिहिर) नाम भी वही सूचित करता है, जिससे सम्भव है कि वे पश्चिमी क्षत्रपों के अनुयायी या वंशज हों ।

प्राग्वाट्

करनवेल (जबलपुर के निकट) के एक शिलालेख में प्रसंगवशात् मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा हंसपाल, वैरिसिंह और विजयसिंह का वर्णन मिलता है जिसमें उनको 'प्राग्वाट'[1] का राजा कहा है । अतएव प्राग्वाट् मेवाड़ (मेदपाट) का ही दूसरा नाम होना चाहिये । संस्कृत के शिलालेखों[2] तथा पुस्तकों[3] में 'पोरवाड़' महाजनों के लिये 'प्राग्वाट' नाम का प्रयोग मिलता है । वे लोग अपना निकास मेवाड़ के 'पुर' कसबे से बतलाते हैं जिससे सम्भव है कि प्राग्वाट देश के नाम पर से वे अपने को प्राग्वाट् वंशी कहते रहे हों ।

वागड़[4]

डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों से मिलने वाले शिला-लेखों में उक्त राज्यों

---

(1) प्राग्वाटेवनिपालभालतिलकः श्रीहंसपालोभवत्तस्मादभूमृदसूत सत्य-समिति; श्रीवैरिसिंहाभिधः । इंडि० एंटि०, जि० १८ पृ० २१७ ।

(2) प्राग्वाटान्वयमुकुलं कुटजप्रसूनविशदयशाः (एपि० इंडि०, जि० ८, पृ० २०६) श्रीमदणहिलपुरवास्तव्य श्रीप्राग्वाटज्ञातीय ठ० श्रीचण्डपसुत (वही, पृ० २१६) ।

(3) प्रांशुः प्राग्वाटवंशो भूत्पुरे गुर्जरभूभुजाम (सोमेश्वररचित कीर्ति-कौमुदी, सर्ग ३, श्लोक १) ।

(4) वागड़ के स्थान पर 'वागट' और 'वार्गट' पाठ भी मिलते हैं (जयति श्रीवागट संघः—राजपूताना म्यूज़ियम (अजमेर) में रक्खी हुई एक जैन मूर्ति के आसन पर खुदा हुआ वि० सं० १०५१ का लेख—अप्रकाशित) वार्गटिकान्वयोद्भूतसद्विप्र कुलसंभवः (हर्षनाथ का लेख, एपि० इंडि० जिल्द

का सम्मिलित नाम 'वागड़[1]' मिलता है और वहाँ के लोगों में वे दोनों राज्य अब तक 'वागड़' नाम से ही प्रसिद्ध हैं। मेवाड़ का छप्पन ज़िला भी जो डूंगरपुर राज्य की सीमा से मिला हुआ है, पहले 'वागड़' के अन्तर्गत था[2]। 'वागड़' नाम की उत्पत्ति का ठीक पता नहीं मिलता। डूंगरपुर और बाँसवाड़ा के ब्राह्मणों का कथन है कि वागड़ शब्द 'वाक्‌जड़' शब्द का अपभ्रंश है क्योंकि वहाँ की भाषा जड़ अर्थात् कठोर है परन्तु उनका यह कथन कल्पित सा प्रतीत होता है। वागड़ की भाषा गुजराती है, जिसको जड़ नहीं कह सकते। उसमें वागड़ से मिलता हुआ 'वगड़ा' शब्द जंगल के अर्थ में प्रचलित है। सम्भव है कि 'वागड़' नाम 'वगड़ा' (वग्गल–जंगल) शब्द से निकला हो। राजपूताने का वागड़ देश पहाड़ों तथा जंगलों से भरा हुआ है। कच्छ राज्य का एक हिस्सा तथा बीकानेर राज्य का एक अंश भी वागड़ कहलाता है। सम्भव है कि वे भी पहले वहाँ जंगल होने से ही उक्त नाम से प्रसिद्ध हुए हों।

मरू

संस्कृत में मरू और धन्व[3] (धन्वन्) दोनों शब्द मरूस्थली अर्थात् रेगिस्तान के सूचक मिलते हैं। सामान्य रूप से मरू शब्द राजपूताना के तथा उससे मिले हुए सारे रेगिस्तान का सूचक हो सकता है।

इस रेगिस्तान के स्थान में पहले सागर (समुद्र) था[4]; परन्तु भूकम्प आदि प्राकृतिक कारणों से भूमि ऊँची हो जाने से सागर का जल दक्षिण में हटकर समुद्र में मिल गया और रेते का पुंजमात्र रह गया, जिसको 'मरूकांतार' भी कहते थे। यह भी कहा जाता है कि दक्षिण सागर के सेतु बँधवाने को राजी हो जाने पर रामचंद्र ने उसे डराने के लिये खेंचा

२, पृ० १२२), राजपूताने में बहुत से ब्राह्मण वागड़िये या वागड़े कहलाते हैं।

(1) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० ३१, टिप्पण ३०–३१।

(2) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० २८–२९।

(3) समानौ मरुधन्वानौ (अमरकोश, कांड २, भूमिवर्ग, श्लोक ५)। देशांस्तान्धन्वशैलद्रुमस (ग) हनसरिद्वीर, बाहूपगूढान (फ्लीट, गुप्त इन्सक्रिप-शंस, पृ० १४६)।

(4) राजपूताना के रेगिस्तान में सीप, शंख, कौड़ी आदि परिवर्तित पाषाण रूप में (Fossil) मिलते हैं, जो पहले वहां जल का होना बतलाते हैं। रेगिस्तान बन जाने के पीछे भी सिन्धु की सहायक नदी

हुआ अपना अमोघ वाण इधर फेंका, जिससे समुद्र सूख गया[1]। व्यवहारिक संकेत में 'मरु' नाम 'मारवाड़' (जोधपुर राज्य) का सूचक माना जाता है। परन्तु जयसिंह सूरि अपने हमीरमदमर्दन नाटक में आबू के परमार राजा धारावर्ष और जालौर के सोनगरा (चौहान) उदयसिंह आदि

घग्गर की एक धारा, जिसको राजपूताने में हाकड़ा कहते हैं, बीकानेर और जोधपुर राज्यों में बहती हुई सिंध में जाकर सिंधु नदी में मिल जाती थी। जोधपुर, मालानी आदि परगनों में कई गांवों में ईख पेरने के पत्थर के कोल्हू अब तक पड़े हुए मिलते हैं जिनके विषय में यह कहा जाता है कि पहले यहां हाकड़ा नदी बहती थी, उसके तट पर गन्नों की खेती होती थी, जिनसे गुड़ बनाया जाता था। यदि उक्त नदी का प्रवाह वहाँ न होता तो उन रेतीले प्रदेशों में ऐसे बड़े घाणों (कोल्हूओं) की सम्भावना ही कैसे होती। पीछे जमीन ऊँची हो जाने के कारण हाकड़ा का बहना बन्द हो गया, इतना ही नहीं किंतु मूल घग्गर नदी ही रेगिस्तान में लुप्त हो गई। अब केवल उसके प्राचीन बहाव के मार्ग के चिह्न ही दृष्टिगोचर होते हैं और उसका थोड़ासा जल बीकानेर राज्य के हनुमानगढ़ इलाके तक ही आता है जिससे गेहूं आदि पैदा होते हैं। उसको वहां वाले कग्गर नदी कहते हैं। इस नदी के सूख जाने के विषय में लोकोक्ति है कि 'वे पानी मुलतान गए' जो समय चूककर पछताने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। उसकी रोचक और उपदेशपूर्ण कथा यह प्रसिद्ध है कि किसी समय उस प्रदेश के किसी राजा ने एक लक्खी वणजारे (लाख बैलों पर माल ढो ले जानेवाले व्यापारी) की स्त्री हर ली और उसके पति के बहुत प्रार्थना करने पर भी न लौटाई। वणजारा इस अत्याचार का बदला लेने की प्रतिज्ञा करके गया और जहाँ नदी का मोड़ इधर था; वहीं कई वर्षों तक उसने अपने लाखों बैल इसी काम पर लगा दिए कि नदी के प्रवाह में बालू डालकर इधर की भूमि ऊँची करदी जाय। उसका परिश्रम सफल हुआ और जल का प्रवाह दक्षिण न होकर पश्चिम की तरफ हो गया।

इस पर अपने देश को उजड़ता देख राजा बहुत गिड़गिड़ाया और उसकी स्त्री को लौटाने लगा, किन्तु वणजारे ने यही उत्तर दिया कि वे "पानी मुलतान गये।"

(1) तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागरस्य महात्मनः। मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात् ॥३२॥ तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां किल विश्रुतम्।

तीन राजाओं को 'मरुदेश' का राजा बतलाता है[1]। अतएव 'मरुदेश' की सीमा आबू के राज्य (अर्वुद देश) तक होनी चाहिये । इस समय खास 'मरु (मारवाड़)' में जोधपुर राज्य के शिव, मालाणी और पचपद्रा के परगने ही माने जाते हैं। मरु के स्थान में 'मरुस्थल,'[2] 'मरुस्थली', 'मरुमंडल'[3], तथा 'माख'[4] शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

अर्वुद

यह प्राचीन मरुदेश का एक अंश था । परमारों के राज्य के समय उसमें सिरोही राज्य, जोधपुर राज्य का कितना एक अंश, दांता राज्य[5] और पालनपुर[6] राज्यों का समावेश होता था । अर्वुद देश की राजधानी चन्द्रावती आबू के नीचे थी ।

माड

राजपूताना के शिलालेखों में माड[7] नाम जेसलमेर राज्य का सूचक मिलता है और वहां वाले अबतक अपने देश को 'माड' ही कहते हैं ।

निपातितः शरोयत्र वज्राशनिसमप्रभः ।।३३।। (वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग २२)

(1) श्रीसोमसिंहोदय सिंहधारा वर्षेरमीभिर्मरुदेशनाथैः । दिशोऽष्ट जेतुं स्फुटमष्टवाहुस्त्रिभिः समेतैरभवत्प्रभुर्न्नः (हमीरमदमर्दन, पृ० ११)

(2) मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः (महाभारत) ।

(3) प्रबन्ध चिन्तामणि पृ० २७५ ।

(4) वही पृ० २४३ ।

(5) दांता राज्य इस समय गुजरात में गिना जाता है, परन्तु पहले वह आबू के राज्य का ही अंश था । दांता आबू के नीचे है और उसकी सीमा सिरोही राज्य से मिली हुई है । वहां के राणा आबू के परमार राजा धारावर्ष के ही वंशज हैं ।

(6) पालनपुर का राज्य भी इस समय गुजरात में गिना जाता है परन्तु पहले आबू के परमारों के राज्य के अन्तर्गत था । इतना ही नहीं किन्तु पालनपुर शहर आबू के राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रल्हादनदेव ने बसाया था । उसका प्राचीन नाम 'प्रल्हादनपुर' था जिसका अपभ्रंश 'पालनपुर' है । (प्रल्हादन क्षितिपतिर्युपतिर्महोभिः श्री अर्वुदाचलविभुः स बभूव पूर्वम् । तेन स्वनामविदितं दलितपापतापम् संस्थापितं पुरमिदं मुदित प्रजाढ्यं) (हरिसौभाग्यकाव्य, १३) ।

(7) येन प्राप्ता महख्यातिस्त्रवण्यां वल्लमाडयोः (प्रतिहारवंशी राजा कक्कुक का घटियाले का शिलालेख—एपि० इंडि०, जि० ९, पृ० २८०)

वहाँ की स्त्रियाँ विशेषकर 'मांड' राग गाती हैं जिससे सम्भव है कि उक्त राग का नाम 'माड देश' के नाम पर से पड़ा हो।

वल्ल

'माड' के सम्बन्ध में उद्धृत किये हुए घटिआले के वि० सं० ९१८ के शिलालेख के अवतरण में 'वल्लमाड्यो;' पद में वल्ल और माड देशों के नाम समासरूप में दिये हैं जिससे अनुमान होता है कि ये दोनों देश एक दूसरे से मिले हुए थे। जैसलमेर के राज्य का प्राचीन नाम 'माड' था यह ऊपर बतलाया जा चुका है। जैसलमेर के राजाओं के पूर्वज भट्टिक (भाटी) देवराज का पहले इस देश पर राज्य था, ऐसा नीचे त्रवणी देश के वृतान्त में बतलाया जायगा। इसलिये अनुमान होता है कि वल्ल देश, जैसलमेर राज्य से मिले हुए उसके दक्षिण अथवा पूर्व के जोधपुर राज्य के किसी हिस्से का नाम होना चाहिये। अबतक ऐसे साधन उपस्थित नहीं हुए, जिनसे इस देश के ठीक स्थान का सन्तोष-जनक निर्णय हो सके।

त्रवणी

जोधपुर से मिले हुए मण्डोर के प्रतिहार [पढ़िहार, परिहार] राजा बाउक के वि० सं० ८९४ के शिलालेख में 'त्रवणीवल्लदेशयोः' समासान्त पद है जिससे पाया जाता है कि त्रवणी और वल्ल देश भी परस्पर मिले हुए थे। उस लेख में उक्त राजा के पूर्वज शिलुक के वर्णन में लिखा है कि 'उसने त्रवणी और वल्ल देशों में (अपनी) सीमा स्थिर की (अर्थात् उनको अपने राज्य में मिला लिया) और वल्ल मण्डल (देश) के राजा भट्टिक देवराज को पृथ्वी पर पछाड़कर उसका छत्र छीन लिया'[1]। काव्य-मीमांसा आदि अनेक ग्रंथों का कर्ता प्रसिद्ध कवि राजशेखर, जो वि० सं० ९३७ और ९७७ के बीच विद्यमान था, अपनी काव्यमीमांसा में त्रवण

---

(1) ततः श्रीशिलुको जातःपुत्तो दुर्व्वारिविक्रमः।
येन सीमा कृता नित्यास्य (त्र) वणीवल्लदेशयोः ॥ [१८]
भट्टिकं देवराजं यो वल्लमण्डलपालकं।
निपात्य तत्क्षणं भूमौ प्राप्तवान् छ (० त्रांश्च) त्रचिह्नकं ॥ [१९]
रायल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, ई० सं० १८९४, पृ० ६। उक्त जर्नल में उस लेख का जो संवत् छपा है वह अशुद्ध है। ऊपर दिया हुआ संवत् राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में रक्खे हुए मूल लेख से दिया गया है।

देश की गणना भारत के पश्चिमी विभाग के देशों में[1] करता है और भिन्न-भिन्न देशों के लोगों से बोली जाने वाली भिन्न-भिन्न भाषाओं का वर्णन करते हुए सुराष्ट्र और त्रवण आदि के लोगों का सुन्दरता के साथ अपभ्रंश और संस्कृत का बोलना बतलाता है[2]। इसलिये त्रवणी या त्रवण देश, वल्ल से मिला हुआ, जोधपुर राज्य के दक्षिण-पश्चिमी हिस्से में, जो सुराष्ट्र (सोरठ, काठियावाड़) से उत्तर में है, होना चाहिये। यद्यपि त्रवणी देश के स्थान का निश्चयात्मक निर्णय नहीं हो सका, तो भी सम्भव है कि जोधपुर राज्य के मालाणी जिले या उससे मिले हुए किसी विभाग का वह सूचक हो।

गुर्जर या गुर्जरत्रा

इस समय राजपूताने के दक्षिण का देश ही, जहाँ गुजराती भाषा बोली जाती है गुजरात (गुर्जर) कहलाता है जो संस्कृत गुर्जरत्रा से मिलता है, परन्तु प्राचीन काल में गुर्जर या गुर्जरत्रा देश में केवल वर्तमान गुजरात का ही नहीं; किन्तु जोधपुर राज्य के उत्तर से दक्षिण तक के सारे पूर्वी हिस्से का भी समावेश होता था। गुर्जरत्रा नाम का अर्थ 'गुर्जरों (गूजरों) से रक्षित' होता है इसलिये यह नाम उक्त देश पर पहले किसी समय गुर्जर (गूजर) जाति का राज्य रहने से पड़ा होगा (जैसे मेद या मेव से मेदपाट या मेवाड़)। परन्तु वहाँ पर गुर्जर जाति का राज्य कब हुआ और कब तक रहा इसका अब तक कोई पता नहीं लगा। प्राचीन शोध के विद्वानों ने इस विषय में जो कुछ लिखा है, वह केवल कपोल कल्पना ही है। चीनी यात्री हुएन्सांग ने अपनी यात्रा की पुस्तक 'सि-यु-कि' में मालवे (१) के पीछे क्रमशः ओचलि (१), कच्छ, वलभी आनंदपुर, सुराष्ट्र (सोरठ) और गुर्जर देशों का वर्णन किया है। गुर्जर देश के विषय में उसने लिखा है कि 'वलभी के देश से १८०० ली (३०० मील) के करीब उत्तर में जाने पर गुर्जर राज्य में पहुँचते हैं। यह देश अनुमान ५००० ली (८३३ मील) के घेरे में है। उसकी राजधानी—जिसको 'भीनमाल' कहते हैं, ३०ली (५ मील) के घेरे में है। जमीन की पैदावार और लोगों की रीत-भांत सुराष्ट्र (सोरठ) वालों से मिलती हुई

---

(1) देवसभाया परतः पश्चाद्देशः। तत्र देवसभसुराष्ट्रदशेरकत्रवण भृगुकच्छ कच्छीयानर्तार्बुदब्राह्मणवाह यवन प्रभृतयो जनपदाः (काव्यमीमांसा पृ० ९४)।

(2) सुराष्ट्रत्रवणाद्या ये पठन्त्यर्पितसौष्ठवम्।
अपभ्रंशावदंशानि ते संस्कृतवचांस्यपि ॥ (वही, पृ० ३४)।

हैं । आबादी घनी है । लोग धनाढ्य और सम्पन्न हैं । वे बहुधा नास्तिक (बौद्ध धर्म को न मानने, वैदिक धर्म को माननेवाले) हैं । बौद्ध धर्म के अनुयायी थोड़े ही हैं । यहाँ एक संघाराम (बौद्धों का मठ) है, जिसमें अनुमान १०० श्रवण (बौद्ध साधु) रहते हैं, जो हीनयान[1] और सर्वास्तिवाद[2] निकाय के माननेवाले हैं । यहाँ कई दहाई देव-मन्दिर हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के लोग रहते हैं । राजा क्षत्रिय जाति का है । उसकी अवस्था २० वर्ष की है । वह बुद्धिमान और साहसी है । उसकी बौद्ध धर्म पर दृढ़ आस्था है और वह बुद्धिमानों का बड़ा आदर करता है[3] ।

हुएन्सांग गुर्जर देश की परिधि ८३३ मील बतलाता है जिससे पाया जाता है कि वह देश बहुत बड़ा था और उसकी लम्बाई अनुमान ३०० मील होनी चाहिये । उसकी राजधानी भीनमाल (भिल्लमाल, श्रीमाल) जोधपुर राज्य के दक्षिण में है जो गुजरात से मिला हुआ है । हुएन्सांग वहाँ के राजा को क्षत्रिय लिखता है परन्तु उसके नाम या जाति का परिचय नहीं देता । वह ई० सन् ६४१ (वि० सं० ६९८) के आसपास भीनमाल आया था, जहाँ के रहनेवाले[4] (भिल्लमालकाचार्य) ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने शक सं० ५५० (वि० सं० ६८५) में अर्थात् हुएन्सांग के वहाँ आने से १३ वर्ष पूर्व ब्राह्मण (ब्रह्म) स्फुट [सिद्धान्त] नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें उसने वहाँ के राजा का नाम व्याघ्रमुख और उसका वंश

---

(1) जैनों में जैसे दो फिर्के दिगंबरी और श्वेतांबरी हैं, वैसे ही बौद्धों में महायान, हीनयान और मध्यमयान नाम के तीन फिर्के थे । मध्यमयान के अनुयायी बहुत कम थे और अब तो कहीं कोई नहीं रहा ।

(2) बौद्ध धर्म में कर्मकांड के विचार से चार सम्प्रदाय या शाखा भेद हैं, जिनको निकाय कहते हैं । ये सम्प्रदाय आर्यसंघिक, आर्यस्थविर, आर्य संमति और सर्वास्तिवाद कहलाते हैं इनमें से प्रत्येक के अवांतर भेद कई एक हैं ।

(3) सेम्यूअल बील; 'बुद्धिस्ट रेकर्डज़ आफ़ दी वेस्टर्न वर्ल्ड' जि० २० पृ० २६९-७० ।

(4) इंडि. एंटि०; जि० १७, पृ० १९२ । शंकर बालकृष्ण दीक्षित । भारतीय ज्योतिषा चा प्राचीन आणि अर्वाचीन इतिहास (मराठी), पृ० १२७ ।

चाप[1] (चापोत्कट, चावड़ा) बतलाया गया है। हुएन्सांग के समय भीनमाल का राजा व्याघ्रमुख या उसका पत्र हो। चावड़ों का राज्य भीनमाल पर कब तक रहा, इसका ठीक-ठीक अनुसंधान अब तक नहीं हुआ, परन्तु वि० सं० ७९६[2] के आसपास तक तो वे ही वहाँ के राजा थे यह

---

(1) श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणां ।
पंचाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पंचभिरतीतैः (५५०) ॥७॥
ब्राह्मः स्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितगोलविप्रीत्यै ।
त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ॥८॥
(ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त, अध्याय २४)

(2) लाट के सोलंकी सामन्त पुलकेशी (च्यवनिजनाश्रय) का एक दानपत्र कलचुरि संवत् ४९० (वि० सं० ७९६) का मिला है (विएना ओरिएँटल कांग्रेस का कार्य-विवरण, आर्यन् सेक्शन, पृ० २३०) जिसमें उसके विषय में लिखा है कि 'ताजिकों' (अरबों, मुसलमानों) ने तलवार के बल से सैंधव (सिन्ध), कच्छेल्ल (कच्छ), सौराष्ट्र (सौरठ), चावोटक (चापोत्कट, चाप, चावड़े), मौर्य (मोरी), गुर्जर आदि के राज्यों को नष्ट कर दक्षिण के समस्त राजाओं को जीतने की इच्छा से प्रथम नवसारिका (नवसारी) पर आक्रमण किया, उस समय घोर संग्राम कर उस (पुलकेशी) ने ताजिकों को विजय किया। उस पर शौर्य के अनुरागी राजा वल्लभ (उसके स्वामी) ने उसको चार खिताब दिए। अब तक के शोध से चावड़ों (चावटोक, चापोत्कट चाप) का तीन जगह अधिकार होने का पता चलता हैं। पहला भीनमाल में, दूसरा अनहिलवाड़े (पाटण) पर और वढ़वाण (काठियावाड़ में) पर। भीनमाल पर तो चावड़ों का अधिकार वि० सं० ६८५ के पूर्व से चला आता था जैसा कि ब्रह्मगुप्त के कथन से पाया जाता है। अनहिलवाड़े (पाटण) का राज्य चावड़ा वनराज ने वि० सं० ८२१ में अनहिलवाड़ा बसाकर स्थापित किया। वढ़वाण के चाप (चावड़ा) वंशी सामन्त धरणीवराह का हड्डाला से मिला हुआ दानपत्र शक संवत् ८३६ (वि० सं० ९७१) का है जिसमें उक्त राजा के पूर्व के चार नाम और हैं। उनमें से सब से पहले (विक्रमार्क) का वि० सं० ८९१ के आसपास विद्यमान होना स्थिर होता है। पुलकेशी के ताम्रपत्र के चावोटक (चावड़ों) का संबंध इन सौराष्ट्र के चावड़ों से है भी नहीं, क्योंकि उसमें सौराष्ट्र की विजय के बाद चावड़ों के राज्य का नष्ट करना लिखा है। मुसलमानों की ऊपर लिखी हुई चढ़ाई वि० सं० ७८८–७९६ के बीच किसी समय हुई थी क्योंकि पुलकेशी अपने बड़े भाई मंगलराज्य के पीछे उसकी जागीर का

निश्चित है। वि० सं० ७९६ और ८९५ के बीच किसी समय चावड़ों से रघुवन्शी प्रतिहारों (पड़िहारों, परिहारों) ने गुर्जर देश का राज्य छीन लिया। फिर उन्होंने अपने बाहुबल से कन्नौज का प्रबल राज्य अपने राज्य में मिला लिया जिसके पीछे उनकी राजधानी कन्नौज हो गई। इससे उनको कन्नौज के प्रतिहार भी कहते हैं। चावड़ों के समय गुर्जर देश कहाँ से कहाँ तक था, इसका कोई उल्लेख (सिवाय हुएन्तसंग के उपर्युक्त कथन के) नहीं मिलता। प्रतिहार राजा भोजदेव (पहले) के वि० सं० ९०० के दानपत्र में लिखा है कि 'उसने गुर्जरत्राभूमि (देश) के डेंड्वानक विषय (जिले) का सिवा गांव[1] दान किया'। यह दानपत्र जोधपुर राज्य के डीडवाना जिले के सिवा गाँव के एक टूटे हुए मंदिर से मिला था। इस ताम्रपत्र का डेंडवानक जिला, जोधपुर राज्य के उत्तरी-पूर्वी हिस्से का नाम डींडवाना है और सीवा गांव डींडवाना से ७ मील पर का सेवा गाँव है। कालिंजर से मिले हुए नवीं शताब्दी के आसपास के एक शिलालेख में गुर्जरत्रा मण्डल (देश) के मंगलानक (गाँव) से निकले हुए[2] जेंदुक के बेटे देद्दक की बनाई हुई मंडपिका के प्रसंग में उसकी स्त्री लक्ष्मी के द्वारा उमा महेश्वर के पट्ट की प्रतिष्ठा किए जाने का उल्लेख है। मंगलानक जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग का मंगलाना गांव है जो मारोठ से १९ मील पश्चिम में और डींडवाने से कुछ ही दूरी पर है। इन दोनों लेखों से पाया जाता है कि गुर्जरत्रा या गुर्जर देश की उत्तरी सीमा जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा के पास तक थी।

जिस समय प्रतिहारों का राज्य गुर्जर देश तथा कन्नौज पर रहा

स्वामी हुआ था और मंगलराज का दानपत्र शक संवत् ६५३ (वि० सं० ७८८) का मिला है (इंडि० एंटि०, जि० १३, पृ० ७५)। ऐसी दशा में मुसलमानों की उक्त चढ़ाई के समय चावड़े भीनमाल के अतिरिक्त और कहीं नहीं थे।

(1) गुर्ज्जरत्राभूमौ डेण्ड्वानकविषयसम्ब(म्ब)द्धसिवाग्रामाग्रहारे० (एपि० इंडि०, जि० ५, पृ० २११)। मूल में संवत् अशुद्ध छपा है। हमने राजपूताना म्यूज़िअम् (अजमेर) में रक्खे हुए मूल ताम्रपत्र से ऊपर संवत् दिया है।

(2) श्रीमद्गुर्ज्जरत्रामण्डलान्तःपातिमंगलानकविनिर्गत० (वही, पृ० २१०)

उस समय दक्षिण (कोंकन) पर राष्ट्रकूटों (राठौड़ों) का राज्य था। राठौड़ों के राज्य की उत्तरी सीमा गुर्जर देश की दक्षिणी सीमा से मिली हुई थी और ये दोनों पड़ोसी एक दूसरे से बराबर लड़ते रहे[1]।

---

(1) दक्षिण के राठौड़ राजा ध्रुवराज के पुत्र गोविन्दराज (तीसरे) के गांव (नासिक ज़िले के डिंडोरी तालुके में) से मिले हुए शक संवत् ७३० (वि० सं० ८६५) के दानपत्र में उसके पिता ध्रुवराज के विषय में लिखा है कि 'गौडराज्य की लक्ष्मी को सहसा अपने हाथ करने पर मत्त बने हुए वत्सराज को उस (ध्रुवराज) ने अपने अजेय सैन्य से मरु (मारवाड़) के मध्य में भगाया और गौड़ के राजा से जो दो श्वेत छत्र उस (वत्सराज) ने छीने थे, वे उससे छीन लिये, इतना ही नहीं किन्तु साथ ही उसके दिगंतव्यापी यश को भी, (हेलास्वीकृतगौडराज्यकमलामत्तं-प्रवेश्याचिराद्दुर्मार्गं मरुमध्यमप्रतिव(ब)लैर्यो वत्सरो(रा)जं व(ब)लैः। गौडीयं शरदिन्दुपादधवलं छत्रद्वयं को(के)वलं तस्मान्नाहृत तद्य-शोपि ककुभां प्रांते स्थितं तत्क्षणात्-इंडि० एंटि०, जि० ११, पृ० १५७। यही श्लोक उक्त गोविंदराज तीसरे के राधनपुर से मिले हुए शक सं० ७३० (वि० सं० ८६५) के दानपत्र में उसके पिता ध्रुवराज के संबंध में मिलता है-एपि० इंडि०, जि० ६, पृ० २४३। लाट देश पर शासन करने वाले राठौड़ सामन्त कर्कराज के बड़ोदा से मिले हुए शक सं० ७३४ (वि० सं० ८६९) के दानपत्र में उक्त कर्कराज के विषय में लिखा है कि-उसका भुज पिटे हुए मालव (मालवा के राजा) की रक्षा के निमित्त गौड़ (बिहार) और बंग (बंगाल) के राजाओं को जीतकर दुष्ट बने हुए गुर्जरेश्वर (गुर्जर देश के राजा) के लिये अर्गल (रोक, आड) सा हो गया' अर्थात् उसने मालवा के राजा को गुर्जर देश के राजा से बचाया (गौडेन्द्रवंगपतिनिर्जयदुर्व्विदग्धसद्गुर्जरेश्वरदिगर्गलतां च यस्य। नीत्वा-भुजं विहतमालवरक्षणार्थं स्वामी तथान्यमपि राज्यछ(फ)लानि भुंक्ते-इंडि० एंटि०, जि० १२, पृ० १२ पृ० १६०)। ऊपर के दोनों ताम्रपत्रों में गौड़देश की राज्यलक्ष्मी छीननेवाले राजा का नाम वत्सराज दिया है और उसका मारवाड़ में भागना लिखा है, जिससे पाया जाता है कि वह मारवाड़ का राजा था। तीसरे ताम्रपत्र में उसका गौड़ और बंग के राजाओं को जीतकर दुष्ट बनना लिखने के साथ उसको गुर्जरेश्वर अर्थात् गुर्जर देश का राजा कहा है। वत्सराज प्रतिहार वंश का राजा और गुर्जर देश का स्वामी था और संभव है कि उसीने चावड़ों से भीनमाल का राज्य छीना हो। ग्वालियर से मिले हुए प्रतिहार राजा भोज के समय के शिलालेख

राठोड़ों का राज्य लाट देश तक ही था,इसलिये गुर्जर देश के प्रति- हारों के राज्य की दक्षिणी सीमा लाट[1] की उत्तरी सीमा अर्थात् सेढ़ी नदी तक होनी चाहिये । ऐसी दशा में जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा से लगाकर दक्षिणी सीमा तक का सारा पूर्वी हिस्सा तथा उसके दक्षिण का सेढ़ी नदी तक का वर्तमान गुजरात का हिस्सा गुर्जर देश कहलाता था, परन्तु अव जोधपुर का कोई भी अंश गुजरात में नहीं गिना जाता। अब तो राजपूताने के दक्षिण के पालनपुर राज्य की उत्तरी सीमा से लगाकर दमण (पुर्तगालवालों का) तक का सारा प्रदेश, तथा काठिया- वाड़ और कच्छ, गुजरात में गिना जाता है, जहां गुजराती भाषा बोली जाती है ।

मालव (मालवा)

मालव जाति के लोगों ने प्राचीन अवंती[2] और आकर[3] देशों पर अपना अधिकार जमाया, तब से उनके अधीन के उक्त देशों का सम्मिलित

में वत्सराज का वलपूर्वक भिंडी के वंश का साम्राज्य छीनना लिखा है (आर्किआलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिआ, ई० सं० १६०३-४, पृ० २८०-१)। शायद भिंडी गुर्जर देश के चावड़ों का मूल पुरुष हो। इसी तरह दक्षिण के राठोड़ों तथा प्रतिहारों के परस्पर लड़ने के और भी उदाहरण मिलते हैं ।

(1) लाट देश की उत्तरी सीमा वम्बई हाते के खेड़ा जिले में वहनेवाली सेढ़ी नदी तक और दक्षिणी सीमा तापी नदी से कुछ दक्षिण तक होना ताम्रपत्रादि से पाया जाता है । सामान्य रूप से मही और तापी नदियों के बीच का देश लाट माना जाता है (देशों की सीमाएं वढती घटती रही हैं) ।

(2) मालवे का पश्चिमी हिस्सा जिसकी राजधानी उज्जैन (उज्ज- यिनी थी) ।

(3) मालवे का पूर्वी हिस्सा । महाक्षत्रप रुद्रदामन् के शक संवत ७२ (वि० संवत् २०७) से कुछ ही वाद के जूनागढ़ (काठियावाड़ में) के लेख में 'पूर्वापराकरावंती' लिखा है । कालिदास अपने मेघदूत में अवंती से पूर्व के देश को दशार्ण कहता है और उसकी राजधानी विदिशा (भेलसा-ग्वालियर राज्य में) होना वतलाता है। सम्भव है कि आकर के अन्तर्गत दशार्ण देश हो ।

नाम मालव (मालवा) हुआ। राजपूताने के परतावगढ़, कोटा और झालावाड़ राज्य तथा टोंक[1] राज्य के छवड़ा, पिरावा और सीरोंज[2] के इलाके पहले मालव देश के अन्तर्गत थे; जैसा कि वहां से मिलने-वाले शिलालेखों से पाया जाता है।

ना. प्र. प., काशी, (नवीन संस्करण), भाग २, संख्या ३, सं० १९७८वि०

---

(1) राजपूताने में केवल टोंक का राज्य ही ऐसा है जिसके अलग अलग हिस्से एक दूसरे से मिले हुए नहीं हैं। टोंक (खास) और अलीगढ़ के जिले तो प्राचीन काल में सपादलक्ष के अन्तर्गत थे। नींबाहेड़ा मेदपाट (मेवाड़) का हिस्सा था और छवड़ा, पिरावा आदि मालव के अन्तर्गत थे।

(2) परतावगढ़, कोटा और झालावाड़ के राज्यों से जो शिलालेख मिलते हैं, उनसे उन राज्यों का पहले मालवे के अन्तर्गत होना पाया जाता है। कोटे का थोड़ा सा उत्तरी हिस्सा मालवा के परमारों के पड़ोसी चौहानों के अधिकार में था और सपादलक्ष में गिना जाता था।

प्रकरण दूसरा

इतिहास और पुरातत्त्व

१-भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास[1] की सामग्री।

यह कहना अनुचित न होगा कि शृङ्खलाबद्ध लिखा हुआ भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास नहीं मिलता, और ईसवी सन् की १८वीं शताब्दी के मध्य तक उसके लिये सामग्री एकत्रित करने का उद्योग भी हुआ हो-ऐसा पाया नहीं जाता। ई० स० १७८४ में सर विलिअम जोन्स के यत्न से एशिया खण्ड के इतिहास, साहित्य आदि विषयों की शोध के लिये 'एशिआटिक् सोसाइटी' नाम की सभा कलकत्ते में क़ायम हुई, तभी से हमारे यहां के प्राचीन इतिहास की सामग्री की खोज और उसके संग्रह का काम शुरू हुआ, और अब तक अनेक विद्वानों के श्रम तथा गवर्नमेंण्ट की उदार सहायता से बहुत कुछ सामग्री उपलब्ध हो गई। वह किस प्रकार की है और यहां के प्राचीन इतिहास के लिये कहां तक उपयोगी हो सकती है यह बात बतलाने का प्रयत्न इस लेख में किया जाता है।

उक्त सामग्री को हम नीचे लिखे हुए चार मुख्य विभागों में बांट सकते हैं;-

(क)-हमारे यहां की प्राचीन पुस्तकें।

(ख)-यूरोप, चीन, तिब्बत, और सीलोन वालों की तथा मुसलमानों की लिखी हुई प्राचीन पुस्तकें।

(ग)-प्राचीन शिला लेख और ताम्रपत्र।

(घ)-प्राचीन सिक्के मुद्रा तथा शिल्प।

(क) हमारे यहाँ की प्राचीन पुस्तकें।

(अ)—पुराण-जिन प्राचीन राजाओं के नाम, आज तक के मिले हुए प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के या विदेशियों के लिखे हुए प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलते, उनकी शृंखलाबद्ध वंशावलियां कितने एक पुराणों में मिल जाती हैं, अतएव हमारे यहां के विशेष प्राचीन इतिहास के लिये तो केवल

---

(1) 'प्राचीन इतिहास' से हमारा अभिप्राय बहुत प्राचीन काल से लगाकर मुसलमानों के हाथ से हिन्दुराज्यों के अस्त होने, अथवा उनकी स्वतंत्रता नष्ट होने के समय तक के इतिहास से है।

पुराण ही सहायक हो सकते हैं। १८ पुराणों में से वायु, मत्स्य, विष्णु, ब्रह्मांड और श्रीमद्भागवत ये पाँच इतिहास के लिये विशेष उपयोगी हैं[1] क्योंकि इनमें सूर्य, चन्द्र, यादव, शिशुनाग, नंद, मौर्य, सुंग, काण्व, आंध्रभृत्य आदि वंशों के राजाओं की शृङ्खलाबद्ध वंशावलियाँ तथा किसी-किसी का कुछ चरित्र भी मिल जाता है; और शिशुनाग, नंद, मौर्य, सुंग, कण्व तथा आंध्रभृत्य वंश के राजाओं में से बहुधा प्रत्येक का राजत्वकाल तथा ई० स० की चौथी-शताब्दी में राज्य करने वाले प्रतापी गुप्तवंश तक के राजवंशों का पता भी इनसे लगता है, परन्तु बड़ी त्रुटि यह है कि कोई साल-संवत् इनमें नहीं दिया और भिन्न२ प्रदेशों पर राज्य करने वाले कई समकालीन राजवंशों का एक दूसरे के बाद होना लिख दिया है, ऐसी स्थिति में पुराणों में दिये हुए समस्त राजाओं का राज्य-समय ठीक-ठीक निश्चय करना अशक्य है। ये सब पुराण कई बार छप चुके हैं, परन्तु उत्तमता के साथ छपे हुए थोड़े ही हैं, इसलिये 'हार्वर्ड ओरीएंटल् सीरीज' में छपे हुए संस्कृत ग्रन्थों की शैली पर इनका संपादन होना इतिहास के लिये बहुत आवश्यक है।

(आ)—रामायण और महाभारत—इनमें रघु और कुरु वंशों का वृत्तान्त, जो उपर्युक्त पुराणों में संक्षेप से लिखा हुआ है, विस्तार से मिलता है, और इनके लिखे जाने के समय की इस देश की दशा, लोगों की सामान्य स्थित, युद्ध-प्रणाली आदि कई आवश्यकीय बातों का पता भी इनसे भली भाँति लगता है। ये कई बार छप चुके हैं।

(इ)—राजतरंगिणी—ठीक ऐतिहासिक रीति से लिखा हुआ हमारे यहाँ केवल यही एक ग्रन्थ है, जिसमें काश्मीर का इतिहास है। इसका प्रथम खण्ड अमात्य चंपक के पुत्र कल्हण पंडित ने ई० स० ११४८ में लिखा था, जिसमें गोमंद (प्रथम) से लगाकर सुस्सल के पुत्र जयसिंह तक का वृत्तान्त है। यह पुस्तक इतिहास के लिये बड़ी ही उपयोगी है। कल्हण ने वहाँ के प्रथम राजा गोनंद का भारत युद्ध के समय अर्थात् कलियुग संवत् ६५३ (ई० सं० से २४४८ वर्ष पूर्व) में विद्यमान होना मान लिया है (जो वास्तव में उस समय से बहुत पीछे हुआ था), जिससे समय की पूर्ति के लिये उस (कल्हण) को कितने ही राजाओं का राज्य समय मनमाना अधिक धरना पड़ा, यहाँ तक कि रणादित्य (तुंजीन तीसरे) का तो उसने ३०० वर्ष राज्य करना लिखदिया है। कल्हण के लेखानुसार प्रसिद्ध मौर्य वंशी राजा अशोक का समय उसके वास्तविक समय से करीब १००० वर्ष पूर्व और मिहिरकुल (हूण) का ११०० से अधिक वर्ष पूर्व

---

(1) ई० स० १८९७ के बम्बई (वेंकटेश्वर प्रेस) के छपे हुए भविष्य महापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलकत्ते में अंग्रेजों का राज्य स्थापित होने और

मानना पड़ता है। ऐसी दशा में कर्कोटक वंश के पूर्व के राजाओं का जो राजत्वकाल उसने माना है, वह विश्वास योग्य नहीं माना जा सकता। भारतवर्ष के दूसरे प्रदेश वालों की अपेक्षा काश्मीर वालों में इतिहास का प्रेम विशेष रहा, जिससे उन्होंने अपने देश का शृङ्खलाबद्ध इतिहास लिख रक्खा है। ई० स० ११४२ में जोनराजB नामक पंडित ने राजतरंगिणी का दूसरा खण्ड लिखा, जिसमें जहां से कल्हण ने छोड़ा था, वहां से प्रारम्भ कर अपने समय तक का उसने इतिहास दिया है। इस (दूसरे खण्ड) में जयसिंह से लगा कर कोटाराणी तक का (जिसके साथ कश्मीर के हिन्दू राज्य की समाप्ति हुई) हिन्दू राज कर्ताओं का और उसके बाद मुसलमानों का वृत्तान्त है। जोनराज के बाद उसके शिष्य श्रीवर पंडित ने ई०स० १४७७ में राजतरंगिणी का तीसरा खण्ड लिखा और उसके पीछे प्राज्यभट्ट ने चौथा खण्ड लिखकर अकबर के कश्मीर विजय के समय तक का वृत्तान्त पूर्ण कर दिया। राजतरंगिणी के ये चारों खण्ड प्रथम कलकत्ते में एशिआटिक् सोसाइटी ने छपवाए थे, जिसके बाद ई० स० १८९२ में डाक्टर स्टीन (M. A. Stein PH. D.) ने कल्हण रचित प्रथम खंड को बड़ी शुद्धता के साथ बम्बई में छपवाया; फिर पं०दुर्गाप्रसादजी (महामहोपाध्याय) जयपुर वाले ने तथा (उनके देहान्त के बाद) प्रोफेसर पीटर्सन ने ये चारों खण्ड बम्बई की संस्कृत सीरीज में प्रकाशित किए।

(ई) ऐतिहासिक काव्य आदि—पुराणों में ई० स० की तीसरी शताब्दी के करीब तक राज्य करने वाले राजवंशों की वंशावलियां मिलती हैं, जिसके पीछे ई० स० की छठीं शताब्दी तक के राजाओं का हमारे यहाँ कुछ भी लिखित इतिहास नहीं मिलता। फिर ई० स० की सातवीं शताब्दी में तथा उसके बाद समय-समय पर कितने एक ऐतिहासिक काव्य, नाटक, चरित आदि के ग्रन्थ लिखे गए जिनसे भी कुछ२ ऐतिहासिक वृत्तान्त संग्रह किया जा सकता है, ऐसी पुस्तकों में से नीचे लिखे हुए ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं:—

(१)—हर्ष चरित—यह एक गद्य काव्य है, जिसको प्रसिद्ध विद्वान बाणभट्ट ने, जो कन्नौज और थाणेश्वर के प्रसिद्ध बैशवंशी राजा हर्ष (हर्षवर्द्धन) का आश्रित था, ई० स० की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रचा था। इस में उक्त

अष्टकौशल्या (पार्ल्यामेंट) से राज्य प्रबन्ध होने का भी वर्णन दिया है, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो वह सारा पर्व थोड़े ही समय का बना हुआ प्रतीत होता है। उसके रचयिताने उपर्युक्त पुराणों से जो वृत्तान्त उद्धृत किया है, उसको भी अपनी तरफ से बढ़ा-घटाकर अविश्वसनीय बना दिया है। अतएव प्राचीन इतिहास के लिये वह सर्ग निरुपयोगी है।

वंश के राजा प्रभाकर उसके पुत्र राज्यवर्द्धन तथा हर्ष (हर्षवर्द्धन) और पुत्री राज्यश्री का वृत्तान्त है। यह पुस्तक मौखरी वंशियों के प्राचीन इतिहास में भी कुछ सहायता देती है, क्योंकि राज्यश्री का विवाह मौखरी राजा अवन्तिवर्मा के ज्येष्ठ पुत्र ग्रहवर्मा के साथ होने का तथा उस (ग्रहवर्मा) के मारे जाने का वृत्तान्त इसी पुस्तक से मिलता है। इस पुस्तक में बाणभट्ट ने सुनी हुई नहीं किन्तु अपने सामहने की घटनाओं का वर्णन किया है। इसमें हर्ष के जन्म का मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र, और समय तक दिया है, परन्तु संवत् नहीं दिया। यह पुस्तक बम्बई (निर्णयसागर प्रेस) में छप चुकी है।

(२) गौडवहो-यह प्राकृत भाषा का काव्य है, जिसकी रचना ई०स० की आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कवि वाक्पतिराज ने की थी, जो कन्नौज के (मौखरी) राजा यशोवर्मा का आश्रित था। इस पुस्तक में उपर्युक्त राजा यशोवर्मा के गौड देश पर चढ़ाई करने तथा वहाँ के राजा को मारने का वर्णन है। वाक्पतिराज ने ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करने में यहाँ तक बेपरवाही की है कि यशोवर्मा के पिता के वंश तक का भी नाम नहीं दिया। ऐसी दशा में यह काव्य बड़ा होने पर भी इतिहास में बहुत कम सहायता देता है। यह पुस्तक बम्बई की संस्कृत सीरीज में छपी है।

(३) मुद्रा राक्षस नाटक-इस नाटक में मौर्य वंशी राजा चन्द्रगुप्त के राज्य पाने का वृत्तान्त है। इसको ऐतिहासिक नाटक कहें तो अनुचित न होगा। कश्मीर के राजा अवंतिवर्मा के समय ई० स० ८६० के करीब विशाखदत्त पंडित ने गुणाढ्य रचित वृहत्कथा के आधार पर इसे रचा था। यह बम्बई की संस्कृत सीरीज में छपा है।

(४) नवसाहसांकचरित—इस काव्य में वाक्पतिराज (प्रथम) से सिन्धुराज तक के मालवा के परमार राजाओं की नामावली और थोड़ा-सा ऐतिहासिक वृतान्त है। सिन्धुराज (नवसाहसांक) के राज्य-समय में पद्मगुप्त परिमल कवि ने ई०स० १००० के क़रीब इस पुस्तक की रचना की थी। पुस्तक वृहत् होने पर भी इसमें ऐतिहासिक वृत्तान्त बहुत थोड़ा है। यह बम्बई की संस्कृत सीरीज में छप गई है।

(५) विक्रमाङ्कदेवचरित-इस काव्य में तैलप से लगाकर विक्रमादित्य (छठे) तक का कल्याण (निज़ाम राज्य में) के सोलंकियों का वृत्तान्त विस्तार के साथ मिलता है। ई०स० की ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त के आस-पास प्रसिद्ध कश्मीरी पंडित कल्हण ने इसे रचा था। यह बम्बई की संस्कृत सीरीज में छपा है।

(६) राम चरित-इस काव्य में बंगाल के पालवंशी राजा रामपाल का

वृत्तान्त है। ई० स० की बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के आस-पास उक्त रामपाल के सांधिविग्रहिक प्रजापतिनंदी के पुत्र संध्याकरनंदी ने इसको बनाया था। यह काव्य द्वयर्थी है, जिससे उसका आशय रामपाल एवं रघुकुलतिलक रामचन्द्र इन दोनों के सम्बन्ध में घट सकता है। अब तक यह छपा नहीं है।

(७) द्वयाश्रयकाव्य-प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्र (हेमाचार्य) ने ई० स० ११६० के आसपास यह काव्य रचा था जिसमें उक्त आचार्य के रचे हुए सिद्ध हैम नामक संस्कृत व्याकरण के सूत्रों के क्रमशः उदाहरण और गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज से लगाकर सिद्धराज (जयसिंह) तक का इतिहास ये दोनों आशय होने से ही इसका नाम द्वयाश्रय रक्खा गया है। यह भट्टी काव्य की शैली की पुस्तक है और अब तक छपी नहीं है।

(८) कुमारपाल चरित्र—यह प्राकृत भाषा का काव्य है, जिसकी रचना उपर्युक्त हेमचन्द्र ने ई० सं० ११६० के करीब की थी। इसमें उसके रचे हुए प्राकृत व्याकरण के सूत्रों के उदाहरण और गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल का इतिहास है। यह बंबई की संस्कृत सीरीज में छप चुका है।

(९) पृथ्वीराज विजय-अजमेर और दिल्ली के प्रसिद्ध चौहान राजा पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गोरी पर विजय प्राप्त की, जिसके स्मरणार्थ यह काव्य उसके राजपंडित जयानक ने ई०स० ११९० में रचा था। चौहानों के प्राचीन इतिहास के लिये यह काव्य बहुत उपयोगी है। क्योंकि इसमें चाहमान से लगाकर पृथ्वीराज तक की शुद्धवंशावली (जो चौहानों के भिन्न-भिन्न शिलालेखों से मिलने वाली वंशावली के अनुसार ही है) तथा कुछ-कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त भी है। राजतरंगिणी के द्वितीय खंड के कर्त्ता जोनराज की इस पर टीका भी है, यह पुस्तक अभी छपी नहीं है।

(१०) कीर्त्तिकौमुदी—इस काव्य को गुजरात के सोलंकियों के पुरोहित सोमेश्वर ने ई० स० १२२५ के करीब रचा था, जिसमें अणहिलवाड़े (अणहिलपुर-पाटण) में राज्य करने वाले सोलंकियों का मूलराज से लगाकर भीमदेव (दूसरे) तक का, तथा धोलका में राज्य करने वाले अर्णोराज से वीर धवल तक के बघेल शाखा के सोलंकियों का संक्षिप्त वृत्तान्त और वीर धवल के प्रसिद्ध मन्त्री वस्तुपाल का विस्तृतचरित है। यह काव्य बंबई की संस्कृत सीरीज में छपा है।

(११) सुकृत संकीर्तन—इस काव्य को ई० स० १२२८ के करीब लवणसिंह के पुत्र अरिसिंह ने बनाया था, जिसमें अणहिलवाड़े को बसाने वाले राजा वनराज से भूभट (सामंतसिंह) तक के चावड़ों की वंशावली,

एवं मूलराज से भीमदेव (दूसरे) तक का अणहिलवाड़े के सोलंकियों का तथा अर्णोराज से वीरधवल तक घोलका के बघेलों (सोलंकियों) का संक्षिप्त चरित है, यह काव्य अब तक छपा नहीं है ।

(१२) प्रबंधचिंतामणि---ई० स० १३०५ में जैन आचार्य मेरूतुंग ने इस पुस्तक को गद्य[1] में रचना की थी, जिसमें गुजरात पर राज्य करने वाले चावड़ों तथा सोलंकियों के इतिहास के अतिरिक्त विक्रम, कालिदास, सिद्धसेन-दिवाकर, सालिवाहन, लाखाक (कच्छ [का] राजा लाखा फूलाड़ी [णी]), मुंज, भोज, राजशेखर, माघ, धनपाल, सीतापंडिता, मानतुंगाचार्य, मंत्री साँतू, देवसूरि, आभड़, माँगू, झाला, जयचन्द्र, वाहड़ (वाग्भट), सोलाक, आंवड़, हेमचन्द्र, आम्रभट, उदयचन्द्र, बृहस्पतिगंड, वामराशि, रामचन्द्र, वस्तुपाल, तेजपाल, नन्द, शीलादित्य, रंक, मल्लवादी, गोवर्द्धन, लक्ष्मणसेन, उमापतिधर, जगद्देव (परमर्दि), पृथ्वीराज, वराहमिहिर, नागार्जुन भर्तृ-हरी, वाग्भट वैद्य आदि के प्रवन्ध हैं । मेरूतुंग ने विशेषकर सुनी हुई बातें लिखी हैं, अतएव कई स्थलों में उनका लिखना स्वीकार योग्य नहीं है । गुजरात के चावड़ा राजाओं का जो राजत्वकाल, उसने इस पुस्तक में दिया था, वह पीछे से उसको भी अशुद्ध प्रतीत हुआ, जिससे कुछ समय के पश्चात् जब उसने विचार श्रेणी नामक दूसरी छोटी-सी पुस्तक रची, उस समय उसको शुद्ध किया । शुद्ध इतिहास के अभाव की दशा में यह पुस्तक कुछ उपयोगी हो सकती है, परन्तु इसमें कितने ही स्थलों पर आधुनिक शोध के अनुसार नवीन टिप्पण करने की बड़ी आवश्यकता है, यह पुस्तक बंबई में छपी है ।

(१३) चतुर्विंशति प्रबन्ध (प्रबन्ध कोश)---ई० स० १२४० में राजशेखर सूरि ने इस गद्य ग्रन्थ को देहली में रचा था, जिसमें भद्रबाहु, आर्यनंदिल, जीवदेवसूरि, खपुटाचार्य, पादलिप्ताचार्य, वृद्धवादी और सिद्धसेन, मल्लवादी, हरिभद्र, बप्पभट्टि, हेमसूरि (हेमचन्द्र), हर्षकवि, हरिहरि (र) कवि, अमर कवि, मदनकीर्ति, सातवाहन वंकचूल, विक्रमा-दित्य, नागार्जुन, वत्सराज (उदयन), लक्ष्मणसेन, मदनवर्मा, रत्नश्रावक, आभड़ और वस्तुपाल-ये २४ प्रबन्ध हैं । राजशेखर ने भी मेरूतुंग की नाईं विशेष कर सुनी हुई बातें ही लिखी हैं, जिनसे भी कुछ-कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल आता है । यह पुस्तक अब तक छपी नहीं है ।

---

(1) प्रबन्ध चिंतामणि पुस्तक अधिकतर गद्य ही में है, परन्तु बीच में प्रसंगवशात् कहीं-कहीं पद्य भी आ गया है ।

(१४) कुमारपाल चरित—इस गद्य ग्रन्थ को ई० स० १४३५ में जिन मंडनोपाध्याय ने रचा था, जिसमें ३६ राजवंशों की नामावली (जैसी कि उसको मिल सकी), वनराज से सामन्तसिंह तक के गुजरात के चावड़ाओं की वंशावली और मूलराज से कुमारपाल तक का गुजरात के सोलंकियों का इतिहास है। इसमें कुमारपाल का वृत्तान्त बहुत विस्तार के साथ लिखा है; जो अतिशयोक्ति तथा धर्म संबंधी विशेष आग्रह से खाली नहीं है। यह पुस्तक अब तक छपी नहीं है।

(१५) कुमारपाल चरित—जयसिंह सूरि ने ई० स० १३६५ में इस काव्य की रचना की थी, जिसमें मूलराज से कुमारपाल तक का वृतांत है। यह काव्य छपा नहीं है।

(१६) कुमारपाल चरित—इस काव्य का रचयिता रत्नसेन सूरि का शिष्य चारित्रसुन्दर गणि है इसमें मूलराज से लगाकर कुमारपाल तक का सोलंकियों का इतिहास है। इसकी रचना का समय ज्ञात नहीं हुआ, परन्तु ई० स० की १४वीं शताब्दी के आस-पास इसका बनना अनुमान किया जा सकता है। अब तक यह पुस्तक छपी नहीं है।

(१७) वस्तुपाल चरित्र—इस काव्य को ई० स० १४४० में जिन-हर्ष गणि ने बनाया था, जिसमें मूलराज से भीमदेव (दूसरे) तक तथा अर्णोराज से वीरधवल तक का सोलंकियों का इतिहास, एवं मंत्री वस्तुपाल का विस्तृत वृतान्त है। यह काव्य अब तक छपा नहीं है।

(१८) हंमीर महाकाव्य—इस काव्य में चाहमान से लगाकर प्रसिद्ध हंमीर (रणथंभोर के राजा) तक की चौहानों की वंशावली तथा कुछ ऐतिहासिक वृतान्त है। यह काव्य चौहानों के इतिहास के लिये पृथ्वीराज विजय जैसा तो उपयोगी नहीं है, तो भी इसमें बहुत से नाम शुद्ध हैं और कितना एक वृतान्त भी सही है। ग्वालियर के तंवरवंशी राजा वीरम के दरबार में रहनेवाले जैन कवि नयचन्द्र सूरि ने ई० स० की १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ के आस-पास इसको रचा था, यह बम्बई में छप चुका है।

(१९) बल्लाल चरित—इस काव्य में बंगाल के सेनवंशी राजाओं की उत्पत्ति, हेमन्तसेन से बल्लालसेन तक वंशावली तथा बल्लालसेन का वृत्तान्त है। इस पुस्तक को बल्लालसेन के आश्रित अनंतभट्ट के वंशज आनन्दभट्ट ने नवद्वीप (नदिया) के राजा बुद्धिमंतखां के समय में ई० सं० १५११ में रचा था। उसने सुनी हुई बातों के आधार पर

नहीं, किन्तु सिंहगिरि रचित व्यास पुराण,[1] शरणदत्त कृत वल्लाल-चरित तथा काजीदास नंदी की जय मंगल गाथा के आधार पर इस काव्य की रचना की थी। यह पुस्तक एशियाटिक सोसाइटी बंगाल की बिबलिआथिक इंडिका नामक सीरीज़ में छप चुकी है।

(२०) मंडलीक काव्य—इसमें गिरनार (काठियावाड़) के चूड़ासमा (यादव) राजा मंडलीक का चरित तथा उसके पूर्व पुरुषों में से खंगार, जयसिंह, मोकलसिंह, मिलिग, महीपाल आदि का कुछ-कुछ वृत्तान्त है। ई० स० की १५वीं शताब्दी के अन्त के आस-पास गंगाधर कवि ने इसे बनाया था। अब तक यह छपा नहीं है।

(उ) प्रासंगिक वृत्तान्त—भिन्न-भिन्न विषयों के कितने ही प्राचीन पुस्तकों में कहीं प्रसंगवशात् और कहीं उदाहरण के निमित्त के कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल जाते हैं, और कई काव्य, कथा आदि की पुस्तकों में ऐतिहासिक पुरुषों के नाम तथा उनका कुछ हाल भी मि जाता है। ऐसे साधनों में से प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक घटनाओं का ब्योरा इस छोटे से लेख में देना अशक्य है, तो भी उनसे कैसी-कैसी उपयोगी बातों का पता लगता है, यह बतलाने के लिए थोड़े से उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

पतंजलि के महाभाष्य से द्रव्य की लालसा के कारण मौर्यों द्वारा प्रतिमा बनाने और साकेत (अयोध्या) तथा मध्यमिका[2] पर यवनों (यूनानियों) के आक्रमण करने का पता लगता है। वात्स्यायन काम सूत्र में कुंतलदेश के राजा शातकर्णि शातवाहन के हाथ से क्रीड़ा प्रसंग में उसकी राणी मलयवती की मृत्यु होना लिखा मिलता है। मृच्छकटिक नाटक का कर्त्ता, शूद्रक राजा का १०० वर्ष की अवस्था में आग में बैठकर जल मरना बतलाता है। अद्भुतसागर में बंगाल के सेनवंशी राजा बल्लाल सेन का अपनी रानी सहित गंगा-यमुना के संगम में डूबकर (वृद्धावस्था में) शरीरान्त करना पाया जाता है। लेख-पंचाशिका के कर्ता ने अपनी पुस्तक में उस संधिपत्र की पूरी नकल दी है, जो वि० सं० १२८८ और

---

(१) ये तीनों पुस्तकें बल्लालसेन के समय बनी थीं।

(२) मध्यमिका नगरी मेवाड़ में प्रसिद्ध चित्तौड़ के किले से करीब ६ मील उत्तर में है। बाक्ट्रियन यूनानी राजाओं में से मिनेंडर का गुजरात राजपूताना आदि देशों को विजय करना, वहां से मिलने वाले उसके अनेक सिक्कों से अनुमान किया जा सकता है, अतएव मध्यमिका पर आक्रमण करने वाला यूनानी राजा मिनेंडर ही होना संभव है।

१२३२ में दक्षिण के यादव राजा सिंहण (सिंघण) और धोलका के बघेल (सोलंकी) राणा लावण्यप्रसाद (लवणप्रसाद) के बीच (युद्ध के बाद) लिखा गया था। पिंगल सूत्रवृत्ति में हलायुध पंडित ने मालवा के परमार राजा मुंज की प्रशंसा लिखी है। परमार राजा अर्जुनवर्मा ने अमरुशतक की टीका में जगद्देव (जगदेव परमार) को अपना पूर्व पुरुष कहकर उसकी प्रशंसा का पद्य उद्धृत किया है। जिनप्रभ सूरि रचित तीर्थ कल्प के सत्यपुर (सांचोर, मारवाड़ में) कल्प से वि० सं० १३५६ (ई० स० १३००) में अलाउद्दीन (खिलजी) के छोटे भाई उलगखाँ की मेवाड़ पर चढ़ाई होना तथा चित्तौड़ के स्वामी समरसिंह (रावल) का उक्त देश को बचाना पाया जाता है। प्राकृत पिंगल सूत्र की टीका में लक्ष्मीनाथ भट्ट ने हम्मीर (चौहान), कर्ण आदि राजाओं की प्रशंसा के श्लोक उदाहरणार्थ उद्धृत किये हैं। अशोक अवदान नाम की पुस्तक में शिशुनाग वंश के राजाओं की नामावली एवं हेमचन्द्र (हेमाचार्य रचित त्रिषष्टि पुरुष शलाका चरित) के परिशिष्ट पर्व में शिशुनाग तथा मौर्यवंश के राजाओं का कुछ वृत्तान्त दिया हुआ है। मेरुतुंग रचित विचार श्रेणी गुजरात के चावड़ों तथा सोलंकियों की पूरी वंशावली, प्रत्येक राजा का राजत्वकाल तथा कई अन्य ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है। धर्म-सागर ने प्रवचनपरीक्षा में गुजरात के चावड़ों तथा सोलंकियों की पूरी वंशावली और राज्य समय दिया है। महाकवि कालिदास के मालविका-ग्नि मित्र नाटक में सुंग वंश के संस्थापक राजा पुष्यमित्र के समय में उसके पुत्र अग्निमित्र का विदिशा (भेलसा) में शासन करना, विदर्भ (बरार) देश का राज्य के लिए यज्ञसेन और माधवसेन के बीच विरोध चलना, माधवसेन का विदिशा जाने के निमित्त भागना तथा यज्ञसेन के सेनापति द्वारा कैद होना, माधवसेन को छुड़ाने के लिए अग्निमित्र का यज्ञसेन से लड़ना तथा विदर्भ के दो विभाग कर एक उसको और दूसरा माधवसेन को देना, पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े का सिंध (सिंधु-राजपूताने में) नदी के दक्षिण तटपर यवनों (यूनानियों) द्वारा पकड़ा जाना, वसुमित्र का यवनों से लड़कर घोड़े का छुड़ा लाना और पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ का पूर्ण होना आदि वृत्तान्त मिलता है। अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज (वीसलदेव) के राजकवि सोमेश्वर रचित ललित विग्रहराज नाटक में वीसलदेव और मुसलमानों के बीच की लड़ाई का हाल है। मालवा के परमार राजा अर्जुनवर्मा के राजगुरु मदन की बनाई हुई पारिजातमंजरी नाटिका में अर्जुनवर्मा और गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंह

(जिसने भीमदेव दूसरे का राज्य छीन लिया था) के बीच पर्व पर्वत (पावागढ़-गुजरात में) के पास लड़ाई होने तथा उसमें हार कर जयसिंह के भागने का उल्लेख है। कृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय नाटक से पाया जाता है कि चेदी देश के हृदय (कलचुरी) वंशी राजा कर्ण ने कालिंजर के चंदेल राजा कीर्तिवर्मा का राज्य छीन लिया था, परन्तु उस (कीर्तिवर्मा) के ब्राह्मण सेनापति गोपाल ने कर्ण को परास्त कर उसको फिर राज सिंहासन पर बिठलाया था। गुणाढ्य की बृहत्कथा (पैशाची भाषा में) के संस्कृत अनुवाद तथा कथा सरित्सागर में वररुचि, व्याड़ी, पाणिनि, नंदी, शकटाल, चाणक्य, सातवाहन, वत्सराज, चंड महासेन, विक्रमादित्य आदि की कथाएँ हैं और शिवसिंह देव के आश्रित विद्यापति पंडित रचित पुरुष परीक्षा में मिथिला के कर्णाट वंशी राजा नान्यदेव के पुत्र मल्लदेव, गौड़ के राजा लक्ष्मणसेन, धारानगरी के राजा भोज और काशी के राजा जयचन्द्र आदि का वृत्तान्त मिल जाता है।

इस प्रकार की सामग्री से ऐतिहासिक घटनाओं के संग्रह करने का आधार इतिहास लेखक की बहुश्रुतता पर ही निर्भर है।

पुस्तकों के प्रारम्भ और अन्त-विशेष कर ई० स० की पाँचवी शताब्दी के पीछे के ग्रन्थकारों में से किसी ने अपनी पुस्तक के प्रारम्भ या अन्त में अपना और अपने आश्रयदाता राजा का कुछ-कुछ परिचय दिया है, किसी ने अपनी पुस्तक की रचना का सं० तथा उस समय राज्य करने वाले राजा का नाम, और किसी ने अपने आश्रयदाता के वंश का विशेष वर्णन लिखा है। इसी तरह प्राचीन काल के कई विद्वान् नक़ल करने वालों ने कितनी ही पुस्तकों के अन्त में नक़ल करनें का संवत् तथा उस समय के राजा का नाम भी दिया है ऐसे साधनों से भी इतिहास में कुछ सहायता मिलती है, जिसके थोड़े से उदाहरण यहाँ पर दिये जाते हैं।

जल्हण पंडित ने अपनी सूक्ति मुक्तावलि के प्रारम्भ में अपने पूर्वजों के वृत्तान्त में देवगिरि (दौलतवाद) के कितने एक यादव राजाओं का परिचय दिया है। प्रसिद्ध हेमाद्रि पंडित ने, जो देवगिरि के यादव राजा महादेव का प्रधानमंत्री था, अपनी चतुर्वर्ग चिंतामणि के व्रत खंड के अन्त की राजप्रशस्ति में पुराण प्रसिद्ध कितने ही यदुवंशी राजाओं की नामावली के अतिरिक्त दक्षिण में यादवों के राज्य स्थापन करने वाले राजा द्रढ़-प्रहार से लगाकर महादेव तक की पूरी वंशावली तथा कई राजाओं का कुछ-कुछ हाल भी दिया है। गुजरात के सोलंकियों के पुरोहित सोमेश्वर ने अपने रचे हुए सुरथोत्सव काव्य के १५वें सर्ग में अपने पूर्वजों के वर्णन

के प्रसंग में गुजरात के सोलंकियों का कुछ-कुछ वृत्तान्त दिया है। धनपाल पंडित ने तिलकमंजरी के प्रारंभ में परमारों की उत्पत्ति तथा वैरिसिंह से भोज तक की वंशावली दी है। ब्रह्मगुप्त ने श० सं० ५५० (वि० सं० ६८५–ई० स० ६२८) में (भीनमाल में जो जोधपुर राज्य में है) ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त रचा। उस समय वहाँ का राजा चाप (चावड़ा) वंशी व्याघ्रमुख था, ऐसा उसी के लेख से पाया जाता है। ई० स० की सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रसिद्ध माघ कवि ने (जो भीनमाल नगर का रहने वाला था) शिशुपालवध काव्य रचा, जिसमें वह अपने दादा सुप्रभदेव को वहाँ के राजा वर्मलात का सर्वाधिकारी बतलाता है। जिनेश्वर ने शक सं० ७०५ (वि० सं० ८४०–ई० स० ७८३) में जैन हरिवंश पुराण लिखा। उस समय उत्तर में इन्द्रायुध, दक्षिण में वल्लभ, पूर्व में वत्सराज और पश्चिम में वेहार (जयवराह) का राज्य करना उक्त पुस्तक से पाया जाता है। अमितगति ने वि० सं० १०५० (ई० स० ९९३) में सुभाषित-रत्नसंदोह नामक पुस्तक बनाई उस समय (मालवा का) राजा मुंज (परमार) था। वज्रट के पुत्र उवट ने उज्जैन में रहकर यजुर्वेद (शुक्ल) पर भाष्य लिखा। उस वक्त वहाँ का राजा भोज (परमार) था। प्राग्वाट (पोरवाड़) महाजन धवल की पुत्री ने वि० सं० १२६१ (ई० स० १२०५) के आश्विन मास में मुंजाल पंडित से जयंतीवृत्ति की नक़ल करवा कर अजितदेव सूरि को भेट की। उस समय अणहिलवाड़े का राजा भीमदेव (सोलंकी [दूसरा-भोला भीम]) था, तथा वि० सं० १२८४ ई० स० १२२८) के फागुन मास में सेठ हेमचन्द्र ने ऊध निर्युक्ति की नक़ल कर-वाई, उस समय आघाट दुर्ग (अहाड़–मेवाड़ की पुरानी राजधानी) में जैत्रसिंह (रावल) का राज्य था और उसका महामात्य (मुख्यमंत्री) जगतसिंह था–ऐसा उक्त दोनों पुस्तकों की नक़ल करने वालों के लेख से पाया जाता है।

इस प्रकार की सामग्री से कई ऐतिहासिक बातों का पता लगता है, यदि उनका संग्रह किया जावे तो एक छोटी सी पुस्तक बन जावे। प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकों की कई रिपोर्टें तथा कई पुस्तकालयों की सूचियाँ ऐसी बन चुकी हैं कि जिनमें अनेक पुस्तकों के प्रारम्भ और अन्त का कुछ-कुछ आवश्यकीय अंश उद्धृत किया हुआ है। उनके द्वारा थोड़े से श्रम से कई ऐतिहासिक बातें मालूम हो सकती हैं। ऐसी पुस्तकों में डाक्टर किलहार्न, हुल्श, भंडारकर, पीटर्सन, तथा शेषगिरि शास्त्री की रिपोर्टें, डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र तथा हरप्रसाद शास्त्री संगृहित 'नोटिसेज

ऑफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स' तथा बनारस संस्कृत कॉलेज, काश्मीर, अलवर, बीकानेर, नेपाल, कलकत्ता संस्कृत कॉलेज, इंडिया ऑफिस, ब्रिटिश म्युज़िअम, कॅम्ब्रिज युनिवर्सिटी आदि संस्कृत पुस्तक संग्रहों की सूचियाँ मुख्य हैं। डाक्टर ऑफ रेच की केटो लोगस केटे लोगरम्[1] नामक पुस्तक (जिसके तीन भाग छप चुके हैं) इस विषय का अपूर्व ग्रंथ है।

(ऊ) वंशावलियों की पुस्तक-भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न विभागों से राजाओं तथा धर्माचार्यों की वंश परम्परा की पुस्तकें मिल जाती हैं, जिनसे भी प्राचीन इतिहास में कुछ-कुछ सहायता मिल सकती है। ऐसी पुस्तकों में से मुख्य-मुख्य के नाम नीचे लिखे हैं—

(१) प्रसिद्ध काश्मीरी पंडित क्षेमेन्द्र रचित नृपावलि (राजावली)। इसमें काश्मीर के राजाओं की वंशावली है, जिसका समावेश कल्हण की राजतरंगिणी में हो गया।

(२–३) जैन पंडित विद्याधर संगृहित राजतरंगिणी तथा रघुनाथ रचित राजावली—ये दोनों पुस्तकें जयपुर बसाने वाला राजा जयसिंह के समय में जयपुर में बनी थीं, जिनमें भारत युद्ध से लगा कर विक्रमादित्य तक के राजाओं की नामावली देने का यत्न किया गया है। हमने ये दोनों पुस्तकें देखी नहीं हैं, परन्तु कर्नल टॉड् ने राजस्थान नामक पुस्तक में इनके विषय में जो कुछ लिखा है। उसी के आधार पर इनका यहाँ पर उल्लेख किया जाता है। कर्नल टॉड ने राजावली के अनुसार परीक्षित से लगा कर राजपाल तक के चार वंशों की वंशावलियाँ दी हैं, जिनमें से पहिले वंश के २८ राजाओं के नामों का विष्णुपुराण तथा भागवत में दिए हुए (उसी वंश के) राजाओं के नामों से मिलान किया तो केवल चार राजाओं के नाम परस्पर मिले, अतएव उनके द्वारा प्राचीन इतिहास में बहुत ही कम सहायता मिलने की संभावना है।

(४) नेपाल की वंशावली—पार्वतीय वंशावली नामक एक पुस्तक नेपाल से मिली है, जिसमें कलियुग के प्रारम्भ से लगाकर ई० स १८वीं शताब्दी तक उक्त देश पर राज्य करनेवाले भिन्न-भिन्न वंशों के राजाओं की नामावली तथा प्रत्येक राजा का राजत्वकाल दिया है। परन्तु वहीं से मिले हुए प्राचीन शिलालेखों तथा पुस्तकों में दिए हुए वहाँ के राजाओं

---

(1) ई० स० १९०३ के जुलाई तक संस्कृत (हस्तलिखित) पुस्तकों के शोध के विषय में जितनी रिपोर्टें तथा भिन्न-भिन्न संस्कृत पुस्तक-संग्रहों की जितनी सूचियां छपीं, उनका पूरा पता इस अमूल्य पुस्तक से लग सकता है। हमने उसमें मुख्य-मुख्य के ही नाम ऊपर दिए हैं।

के नाम तथा संवतों के साथ उक्त वंशावली का मिलान करने पर उसकी शुद्धता सिद्ध नहीं होती। उदाहरणार्थ–देखिये कि ठाकुरी वंश के राजा अंशुवर्मा के शिलालेखों से उसका ई० स० की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में होना पाया जाता है। चीनी यात्री हुएनसंग ई० स० ६३७ के करीब नेपाल में पहुँचा। उससे थोड़े ही समय पूर्व वह (अंशुवर्मा) मर चुका था। ऐसा उक्त यात्री के लेख से पाया जाता है। परन्तु उपर्युक्त वंशावली के अनुसार उसका ई० स० पूर्व की सातवीं शताब्दी में होना मानना पड़ता है। ऐसी दशा में वह वंशावली प्राचीन इतिहास के लिये विशेष उपयोगी नहीं हो सकती। प्राचीन समय के राजाओं के नामों में से कितने एक सही हैं, परन्तु सबके सब नहीं। यह वंशावली इंडियन एंटीक्वेरी की जिल्द १३वीं (पृ० ४१०–२८) में छपी है।

(५) उड़ीसा की वंशावली—नेपाल की नाईं उड़ीसा–राजाओं की वंशावली जगन्नाथ (पुरी) से ताड़पत्र पर लिखी (खुदी) हुई मिली है, जिसमें युधिष्टिर से लगाकर अब तक के उड़ीसा के राजाओं की नामावली तथा प्रत्येक का राज्य समय दिया हुआ है, परन्तु इसकी भी वही दशा है, जो नेपाल की वन्शावली की है। उदाहरण–के लिये प्रसिद्ध जगन्नाथ के मन्दिर के बनने का हाल ही देखिये। प्राचीन ताम्र-लेखादि से पाया जाता है कि जगन्नाथ का मन्दिर, जो इस समय विद्यमान है, गंगावंशी राजा अनन्तवर्म चोडगंग ने बनवाया था, परन्तु उक्त वंशावली में उससे पाँचवे राजा अनंग भीमदेव को उक्त मन्दिर का बनाने वाला लिखा है। अनंतवर्म चोडगंग का राज्याभिषेक श० सं० ९९९ (वि० सं० ११३४ = ई० सं० १०७८) में होना उसीके ताम्रपत्र से पाया जाता है, परन्तु उक्त वंशावली में उसके राज्य का प्रारम्भ ई० स० ११३२ में होना लिखा है। ई० स० की १२वीं शताब्दी के पूर्व के राजाओं की नामावली तो अधिक अशुद्ध है। यह वंशावली हंटर साहिब (W. W. Hunter) के ओरीसा (Orissa) नामक पुस्तक की दूसरी जिल्द (पृ० १८४–१९१) में छपी है।

(६) भाटों की वंशावलियां—भाट (बड़वा) लोग प्रत्येक राजवंश की वंश परम्परा लिखते हैं, परन्तु उनकी पुस्तकों का, शिलालेख ताम्रपत्रादि से मिलनेवाली भिन्न–भिन्न राजवंशों की नामावलियों के साथ मिलान करने पर ई० स० की तेरहवीं शताब्दी तक के नामों में से बहुत कम का शुद्ध होना सिद्ध होता है, और एक ही वन्श से संबंध रखने वाले भाटों की दो पुस्तकें भी परस्पर नहीं मिलतीं। सिरोही के चौहान राजाओं के भाटों (बड़वों)

की पुस्तक में उक्त वंश के प्रारम्भ से लगा कर प्रसिद्ध पृथ्वीराज तक २२७ नाम हैं और बूंदी के भाटों (वड्वों) की पुस्तक में (वंश) भास्कर के अनुसार १७७ हैं, जिनमें से केवल ७ नाम परस्पर मिलते हैं। भाटों की वंशावलियाँ ई० स० की तेरहवीं शताब्दी तक के इतिहास के लिये विशेष उपयोगी नहीं हैं, क्योंकि उक्त समय के पूर्व के नामों में से अधिकतर कृत्रिम ही उनमें धरे हुए हैं।

(७) पट्टावलियाँ—जैनों के प्रत्येक गच्छ के आचार्यों की क्रम परंपरा की पुस्तकें मिलती हैं, जिनको पट्टावलियाँ कहते हैं। उनमें महावीर स्वामी से लगा कर उनके लिखे जाने के समय तक की (किसी में अब तक की) प्रत्येक गच्छ के आचार्यों की नामावली, उनका जन्म-संवत् जन्म-स्थान, दीक्षा का संवत्, आचार्य पद पाने का संवत् तथा धर्म प्रचार आदि का वृत्तान्त होता है। इनसे भी कई ऐतिहासिक घटनाओं का पता लगता है। ये पट्टावलियाँ ई० स० की १० वीं शताब्दी के बाद लिखी जाने लगीं हों, ऐसा अनुमान होता है।

(ए) भाषा की ऐतिहासिक पुस्तकें-संस्कृत तथा प्राकृत के अतिरिक्त हिन्दी तथा तामिल आदि भाषाओं में लिखे हुए कितने एक ऐतिहासिक ग्रंथ भी मिलते हैं, जिनमें भी कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल जाता है। ऐसी पुस्तकों में लिखी हुई मुख्य हैं—

(१) रत्नमाला—हिंदी भाषा की पुस्तकों में सबसे उत्तम रत्नमाला है, जिसकी रचना ई० स० की १४वीं शताब्दी के आसपास कृष्ण कवि ने की थी। इसमें १०८ रत्न (अध्याय) थे, जिनमें से ११ अब तक उपलब्ध हुए हैं। उसमें गुजरात के चावड़ा वंशी राजाओं की नामावली तथा मूलराज से भीमदेव (दूसरे) तक के सोलंकी राजाओं का कुछ-कुछ वृत्तान्त है, इसके ८ रत्न अहमदाबाद में गुजराती भाषान्तर सहित छप चुके हैं।

(२) पृथ्वीराजरासो—इसमें चौहान वंश के प्रतापी राजा पृथ्वीराज का इतिहास मुख्य है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस हिंदी (राजस्थानी) भाषा के काव्य की रचना उक्त पृथ्वीराज के समय में अर्थात् ई० स० की १२वीं शताब्दी के अन्त में चंदबरदाई नामक भाट ने की थी। यदि यह पुस्तक उक्त समय की बनी होती तो उपर्युक्त पृथ्वीराज विजय के समान इतिहास के लिये अमूल्य होती। परन्तु चौहानों के प्राचीन शिला-लेख, ताम्रपत्र तथा पृथ्वीराज विजय आदि ऐतिहासिक पुस्तकों के साथ उसका मिलान करने से इसमें दी हुई चौहानों की वंशावली, ऐतिहासिक

वृत्तान्त और साल संवतों का बहुधा कृत्रिम होना प्रतीत होता है, अतएव हम उसका ई० स० की १५वीं शताब्दी के आसपास बनना अनुमान कर सकते हैं। प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी नहीं है। नागरीप्रचारिणी सभा (बनारस) इसको छपवा रही है E।

(३) खुम्माण रासा—यह हिंदी काव्य ई० स० की १७वीं शताब्दी में उदयपुर के एक जैन साधु ने बनाया था, जिसमें मेवाड़ के प्रसिद्ध राजा खुम्माण का इतिहास है, जो बहुधा कल्पित है। प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक बहुत ही कम उपयोगी है। यह अब तक छपी नहीं है।

उपर्युक्त हिंदी पुस्तकों के अतिरिक्त वीसलदेव रासा, हंमीर रासा, राणा रासा, रायमल रासा, राजविलास आदि पुस्तकें भी मिलती हैं, परन्तु प्राचीन इतिहास के लिये उनसे विशेष सहायता नहीं मिल सकती।

(४) कलवलिनाडपट्टु—यह तामिल भाषा का छोटा-सा काव्य है, जिसको पोइकयार नामक कवि ने ई०स० की सातवीं शताब्दी के करीब रचा था। इसमें चोल देश के राजा चेंकण और चेर (गंगवाड़ी-माइसोर राज्य में) के राजा कणेकाइरुवीड़े के बीच के युद्ध का (जिस में चेर का राजा क़ैद हुआ था।) वर्णन है। यह काव्य अंग्रेजी अनुवाद सहित इंडिअन् ऐंटिक्वेरी की १८ वीं जिल्द (पृ० २५८-६५) में छपा है।

(५) कलिंगत्तु परणी—ई०स० की ११ वीं शताब्दी के अंत के आस-पास जय कौंडान् नामक कवि ने इस तामिल काव्य की रचना की थी, जिस में चोल देश के सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोडदेव (प्रथम) के कलिंग देश विजय करने का वृत्तान्त है। इसका सारांश अंग्रेजी अनुवाद सहित इंडिअन् ऐंटीक्वेरी की १९वीं जिल्द (पृ०३२९-४५) में छपा है।

(६) विक्रम शोलनुला—ई०स० की बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बने हुए इस तामिल काव्य में चोल देश पर राज्य करने वाले राजा शेंगल (चेंकण) चोल से विक्रम चोल तक के राजाओं की नामावली तथा विक्रम चोल की सवारी का हूबहू वर्णन है। इसका सारांश अंग्रेजी अनुवाद सहित इंडियन् ऐंटिक्वेरी की जिल्द २२वीं (पृ०१४१-१५०) में छपा है।

(७) राज राजनुत्ला—यह भी उपर्युक्त विक्रम शोलनुला की शैली का तामिल काव्य है, जिसमें चोल देश के सोलंकी राजा राज राज (दूसरे) का वृत्तान्त है। यह काव्य ई०स० की १२वीं शताब्दी में बना था। अब तक यह छपा नहीं है। उपर्युक्त चारों (नं. ४—७) तामिल काव्य प्राचीन इतिहास के लिये उपयोगी हैं।

(८) कोंगु देश राजाक्कल-यह भी तामिल भाषा की पुस्तक है, जिसमें

कोंगु देश (गंगराड़ी-माइसोर राज्य में) के गंगावंशी राजाओं की वंशावली तथा उनका राजत्वकाल दिया है, जो बहुधा कल्पित है। अलबत्ताह् राजाओं के नामों में से कितने एक शुद्ध हैं। प्राचीन इतिहास के लिये यह विशेष उपयोगी नहीं हैं।

उपर्युक्त सामग्री अर्थात् हमारे यहाँ की प्राचीन पुस्तकों से ई०स० की तीसरी शताब्दी से लगाकर मुसलमानों के हाथ से भिन्न-भिन्न हिन्दू राज्यों के अस्त होने तक इस देश के भिन्न-भिन्न विभागों पर राज्य करने वाले अनेक राजवंशों में से केवल अणहिलवाड़े; तथा सोलंकियों के अतिरिक्त किसी दूसरे वंश की पूरी वंशावली तय्यार नहीं हो सकती और न ईरानी, यूनानी, शक, कुशन, (तुर्क) हूण आदि विदेशी विजेताओं की वंशावली अथवा उनका विशेष वृत्तान्त मिलता है। तो भी कितने ही राजवंशों के प्राचीन इतिहास में बहुत कुछ सहायता मिलती है, एवम् लोगों की धार्मिक [तथा सामाजिक स्थिति उनके रीति रिवाज, व्यापार, साहित्य आदि अनेक प्रयोगी बातों का पता लगता है।

(ख) यूरोप, चीन, तिब्बत और सीलोन वालों की तथा मुसलमानों की लिखी हुई प्राचीन पुस्तकें।

(अ) यूरोप वालों की प्राचीन पुस्तकें—यूनान के प्रसिद्ध बादशाह सिकंदर (अलेक्जेंडर दी ग्रेट) ने ई०स० पूर्व ३२७ में भारतवर्ष पर चढ़ाई की, जिसका कुछ भी वृत्तान्त हमारे यहां लिखा हुआ नहीं है, परन्तु उसका सविस्तर वृत्तान्त यूरोप अन् लेखकों की पुस्तकों में मिल जाता है, एवं हमारे इतिहास से संबंध रखने वाली दूसरी भी कई बातें उनकी पुस्तकों में मिल जाती हैं। उनमें मुख्य नीचे लिखे हुए विद्वानों की पुस्तकें हैं।

(१) हिरोडोटस्—प्रसिद्ध यूनानी इतिहास लेखक हिरोडोटस् ने ई०स० पूर्वकी पांचवीं शताब्दी में इतिहास की वृहत् पुस्तक लिखी, जिसमें ईरान के बादशाह दारा (प्रथम) ने ई०स० पूर्व ५०० के करीब हिन्दुस्थान पर चढ़ाई कर पंजाब का पश्चिमी हिस्सा जो अपने आधीन किया, उसका वृत्तान्त मिलता है। एवम् हमारे इतिहास से संबंध रखनेवाली दूसरी भी कई घटनाओं का उल्लेख उक्त पुस्तक में पाया जाता है। उसके लेख से यह भी पाया जाता है कि उस समय वह देश बड़ा ही धनाढ्य था और दारा के साम्राज्य के २० सूबों में से केवल पश्चिमी पंजाब का खिराज़ सुवर्ण में पहुँचता था (बाकी के सब सूबों का चांदी में)। हिरोडोटस् की पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद छप चुका है।

(२) क्टेसीअस (Ktesias)—यह ईरान के बादशाह अर्तज़र्क सीस (Artax erxes Memon) का वैद्य था। इसने ई०स० पूर्व ४०० के क़रीब भारतवर्ष के

विषय में 'इंडिका' नामक पुस्तक लिखी थी, जो इस समय उपलब्ध नहीं है, परन्तु ई०स० की नवीं शताब्दी के मध्य फोटिअस नामक विद्वान ने उसका संक्षेप किया था वह, तथा अन्य प्राचीन लेखकों ने उस (इंडिका) का जो अंश अपनी पुस्तकों में उद्धृत किया, वह मिलता है, (जिसके नाम का पता नहीं लगा) ई० स० की पहली शताब्दी में यह पुस्तक लिखाई जिससे भारतवर्ष का व्यापार संबंधी कुछ-कुछ हाल मालूम होता है। उक्त ग्रन्थ के कर्त्ता ने भारतवर्ष के सारे समुद्र-तट की यात्रा की हो; ऐसा पाया जाता है। इसका अंग्रेजी अनुवाद मैक क्रिडल साहब ने इंडियन ऐंटीक्वेरी की जिसका अंग्रेजी अनुवाद मैक् क्रिडल् (Mc Crindle) साहब ने इंडिअन् ऐंटिक्वेरी की जिल्द १०वीं (पृ०२५६-३१४) में छपवाया है। उक्त लेखक ने बहुधा सुनी हुई बातें लिखी हैं, जिससे उसकी पुस्तक विशेष उपयोगी नहीं है।

(३) मैगेस्थेनीज सिरिआ के यूनानी बादशाह सेल्यूकस ने मैगेस्थिनीज नामक विद्वान को मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्त के दरबार में अपना राजदूत नियत किया था। जिसने पाटलीपुत्र (पटना) में रहकर भारतवर्ष के विषय में 'इंडिका' नामक पुस्तक ई०स० पूर्व चौथी शताब्दी के अंत के आस-पास लिखी, जो इस देश के उस समय की हालत जानने के लिए अपूर्व पुस्तक थी, परन्तु इस समय का उसका थोड़ा-सा अंश ही (जो अन्य लेखकों ने अपनी पुस्तकों में उद्धृत किया था) उपलब्ध है। वह भी हमारे यहां के प्राचीन इतिहास के लिये बहुत उपयोगी है। उसका हिन्दी अनुवाद 'इतिहास छप' चुका है।

(४-८) ऐरिअन, कर्टिअस, रूफस्, प्लूटार्क, डायोडारस और फ्रोंटिनस-सिकन्दर बादशाह का वृत्तान्त भिन्न-भिन्न १६ विद्वानों ने लिखा था, जिनकी पुस्तकों के आधार पर इन पांच इतिहास लेखकों ने उसकी भारतवर्ष पर की चढ़ाई का विस्तृत हाल लिखा था, वह उपलब्ध है और हमारे इतिहास के लिये बड़ा ही उपयोगी है। इन पांचों विद्वानों की पुस्तकों में भी ऐरिअन की पुस्तक सर्वोत्तम मानी जाती है। ऐरिअन ने 'इंडिका' नामक भारतवर्ष के संबंध में एक छोटी-सी पुस्तक और भी लिखी है, वह भी उपयोगी है। मैक क्रिडल साहब ने उक्त पांचों विद्वानों के लिखे हुए सिकंदर की भारत पर की चढ़ाई के वृतांत का अंग्रेजी अनुवाद 'दी इन्वेजन' ऑफ इंडिआ, बाइ अलेकजैंडर दी ग्रेट' नामक पुस्तक में छापा है।

(६) पेरिप्लस् ऑफ दी इरीथ्रिअन् सी[1] एक यूनानी व्यापारी ने जिल्द ८वीं (नृ०१०७-५१) में छपवाया है।

(1) उस समय अफ्रीका के किनारे से पूर्व का सारा समुद्र 'इरीथ्रिअन सी (Zrythrean Sea) के नाम से प्रसिद्ध था।

(१०) टॉलमी-ई०स० की दूसरी शताब्दी के मध्य मिश्र देश के अलेक्जेंड्रिआ नगर के रहने वाले यूनानी विद्वान् टॉलमी ने भूगोल की बड़ी पुस्तक लिखी, जिसमें हिन्दुस्तान के कई नगर, नदी आदि के नाम तथा उनका अक्षांश आदि दिए हुए हैं, एवम् क्षत्रिय वंश के राजा चष्टन्, सातवाहन (आंध्रभृत्य) वंशी पुलुमाई आदि उस समय के राजाओं के नामों का उल्लेख किया है, परन्तु उसने अलैक्जेंड्रिआ में बैठे ही बैठे हिन्दुस्तान का भूगोल यात्रियों तथा नाविकों द्वारा सुनी हुई बातों तथा पहिले की पुस्तकों के आधार पर लिखा था, जिससे उसके नियत किए स्थानों में बहुत ही अन्तर पड़ता है। यदि उसके लेखानुसार नक्शा तय्यार किया जाय तो महानदी को स्याम में; हिमालय को तिब्बत के उत्तर में तथा गंगा को चीन तक ले जाना होगा। इस पर भी उसकी पुस्तक से हमारे प्राचीन इतिहास में कुछ सहायता मिल ही जाती है। उक्त पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद मैक्क्रिडल् साहब ने इंडिअन् ऐंटिकोरी की जिल्द १३वीं (पृ० ३१३-४११ में छपवाया है)।

(११) मार्कोपोलो—वेनेस नगर का प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ई०स० १२९४ के करीब दक्षिण में आया था। उसकी यात्रा की पुस्तक (जि० दूसरी) में वहाँ का जो वृत्तान्त मिलता है, वह भी उपयोगी है। क्योंकि उसने अपनी देखी हुई उक्त देश की दशा का वर्णन किया है। उसकी यात्रा की पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद कर्नल हेन्त्री यूल ने छपवाया है।

(१२) निकोलो डी काउंटी—इटली देश का निवासी निकोलो ई०स० १४२० के करीब विजयनगर में रहा था, उसने उक्त नगर का, तथा वहाँ के राजा देवराज (दूसरे) का जो वृत्तान्त लिखा है, वह विजय नगर के यादवों के इतिहास के लिये उपयोगी है। उसका अंग्रेजी अनुवाद राबर्ट सेवेल साहब की 'एफगार्टन एम्पायर' नामक पुस्तक में छपा है।

(१३) फर्नाओ नूनीज—इस पोरर्चुगेज इतिहास लेखक ने ई० स० की १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विजयनगर के यादव राज्य का इतिहास लिखा था। जो वहाँ के प्रथम राजवंश के इतिहास में बहुत कुछ सहायता देता है। उसका अंग्रेजी अनुवाद उपर्युक्त 'एफर्गाटन एम्पायर' नामक पुस्तक के अन्त में छपा है।

(१४) भिन्न-भिन्न लेखक—समय-समय पर अनेक यूरोपिअन् लेखकों ने अपनी पुस्तकों में इस देश के संबंध में जो कुछ लिखा था, उसका संग्रह मैक्क्रिडल साहब ने 'एनश्यंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई अदर क्लासिकल राइटर्स नामक अंग्रेजी पुस्तक में किया है जो बड़ा ही उपयोगी है।

ऊपर लिखे हुए युरोपिअन विद्वानों की पुस्तकों में एक बड़ी खामी यह है, कि उनमें लिखे हुए स्थान तथा पुरुषों के नामों में से कितनों ही का ठीक-ठीक पता लगाना बड़ा ही कठिन काम हो पड़ा है।

(आ) चीन वालों की पुस्तकें-चीन की प्राचीन काल से ही इतिहास लिखने की प्रथा होने के कारण उनके यहां इतिहास की अनेक पुस्तकें मिल जाती हैं, उनसे तथा यात्रार्थ भारतवर्ष में आए हुए चीनी यात्रियों के सफ़र नामों से एवं वहाँ की धर्म (बौद्ध) पुस्तकों से हमारे यहाँ की इतिहास संबंधी कई बातें मिल जाती हैं।

(१) ऐतिहासिक पुस्तकें—चीन की ऐतिहासिक पुस्तकों से मध्य एशिआ में राज्य करने वाली शक, कुशन (तुर्क) हूण आदि जातियों का, जिन्होंने भारतवर्ष पर अपना अधिकार बनाया था, विस्तृत वृत्तान्त मिल जाता है। एवं दूसरी भी कई एक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। चीन का इतिहास लिखने वालों में पहिला पुरुष सूमाचिन था, जिसने अपनी पुस्तक ई०स० पूर्व १०० के आस-पास लिखी थी, जिसका फ्रेंच अनुवाद एम. चैवन्निस (M. Chavannes) नामक फ़्रेंच विद्वान् ने किया है। उसी विद्वान ने 'मेमोयर' नामक फ्रेंच पुस्तक में चीन की और भी ऐतिहासिक पुस्तकों का सारांश दिया है। एशियाटिक् जर्नल नामक फ्रेंच पत्रिका में भी चीन की ऐतिहासिक पुस्तकों के आधार पर हिन्दुस्तान के प्राचीन इतिहास से संबंध रखने वाले विषयों पर कई एक लेख छपे हैं, पर उनमें से बहुत कम के अंग्रेजी अनुवाद हुए हैं।

(२) फाहियान—प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ई० स० ३९९ में चीन से यात्रार्थ निकला और गंगा के निकटवर्ती प्रदेशों तथा सीलोन में ठहरता हुआ ई० स० ४१४ में चीन को लौटा। उस समय उत्तरी हिन्दुस्तान (नर्मदा से उत्तर के समस्त देश) का राजा गुप्तवंशी चंद्रगुप्त (दूसरा) था, जिसका प्रसिद्ध खिताब विक्रमादित्य था। फाहियान उसके राज्य में ६ वर्ष के करीब रहा था। उसने अपनी यात्रा की 'फो-को-की' नामक पुस्तक में चंद्रगुप्त की मुख्य राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) का, वहाँ के औषधालय आदि का तथा उसके विस्तृत राज्य के अधीन के अनेक स्थानों का जो वृत्तान्त लिखा है। उससे उक्त राजा के राज्य की वास्तविक दशा प्रकट होती है। उक्त पुस्तक के दो अंग्रेजी अनुवाद छपे हैं, जिसमें प्रोफेसर जेम्स लग्गे (James Lugge) का अनुवाद विशेष उपयोगी है।

(३) संगयुन, और ह्वीसंग-ये दोनों यात्री ई० स० ५१८ के करीब इस

देश में आए थे। इनकी यात्रा की पुस्तक से भी कई उपयोगी बातें मिल जाती हैं। उसका अंग्रेजी अनुवाद सेम्युल बील साहब ने हुएन्तसांग की यात्रा की पुस्तक के उपोद्‌घात में छपवाया है।

(४) हुएन्तसांग—प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्तसांग ई०स० ६२९ और ६४५ के बीच करीब-करीब सारे भारतवर्ष में फिरा था और जहाँ-जहाँ वह गया, वहाँ का हाल उसने अपनी पुस्तक में लिखा है, जो 'सी-यु-की' नाम से प्रसिद्ध है। उस समय सारे भारतवर्ष में दो ही प्रबल राजा थे। नर्मदा से उत्तर में कन्नौज का वैस-वंशी राजा हर्ष (हर्षवर्द्धन) और दक्षिण में सोलंकी पुलुकेशी (दूसरा)। जिनमें से हर्ष के साथ तो वह कई मास तक रहा था। उक्त पुस्तक से उस समय की इस देश की दशा, लोगों के रीति-रिवाज, धर्माचरण आदि अनेक उपयोगी विषयों के अतिरिक्त अशोक, कनिष्क, मिहिरकुल, हर्ष (हर्षवर्द्धन) पुलुकेशी आदि कई राजाओं का, अनेक विद्वानों तथा उनकी पुस्तकों का एवं अनेक राज्यों का वृत्तान्त मिलता है। भारतवर्ष के प्राचीन भूगोल के लिये इससे बढ़कर कोई पुस्तक नहीं है। उक्त अमूल्य पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद सेम्युअल ,बील साहिब ने 'बुद्धिस्ट रेकर्ड ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड' नामक पुस्तक (दो जिल्दों) में किया है और वाटर्स (टी०) नामक विद्वान् ने उक्त विषय में दो जिल्दें और प्रकाशित की है, जो बहुत उत्तम हैं (Watter's On Yuan Chuang's travels)।

(५) हुएन्तसांग का जीवन चरित्र—हूली तथा येन्तसंग नामक दो श्रमणों (बौद्ध साधुओं ने मिलकर उपर्युक्त हुएन्त्सग का जीवन चरित्र लिखा है। उनमें से हूली तो उस (हुएन्त्सग) का शिष्य था। यह पुस्तक भी हमारे यहाँ के इतिहास के लिये बहुत उपयोगी है। इसका अंग्रेजी अनुवाद उपर्युक्त सैम्युअल बील साहब ने प्रकाशित किया है।

(६) इत्सिंग—यह चीनी यात्री ई० स० ६७१ से ६९५ तक हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों तथा मालय प्रायद्वीप में ठहरा था। इसकी 'नन-है-चि-कुइ-ने-फाचुअन्' नामक पुस्तक उस समय के हमारे यहाँ के बौद्धों के धर्माचरण का ज्ञान संपादन करने के लिए अपूर्व है, एवं उससे कई ऐतिहासिक घटनाओं का भी पता लगता है। उक्त पुस्तक का ३४वां प्रकरण, जिसमें यहाँ की पठन-पाठन शैली का वर्णन है, देखने योग्य है। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद जापानी विद्वान् टाकाकुसु ने छपवाया है।

उपर्युक्त यात्रियों के अतिरिक्त अनेक दूसरे चीनी यात्री भी इस देश

में आए थे, जिनके नाम आदि का उल्लेख मिलता है, परन्तु उनकी यात्रा संबंधी पुस्तकों के होने न होने का हाल मालूम नहीं हुआ।

चीनियों की धर्म संबंधी पुस्तकों से हमारे यहाँ की अनेक प्राचीन पुस्तकों का जो अब यहाँ पर नहीं मिलती; पता लगता है और अनेक ग्रंथ कर्ताओं तथा धर्माचार्यों का हाल मिलता है, एवं उन विद्वानों के नाम तथा समय मालूम होते हैं, जिन्होंने चीन में जाकर अनेक संस्कृत पुस्तकों का वहाँ की भाषा में अनुवाद किया, अथवा उस काम में सहायता दी थी। इस विषय में बन्युनंजिओ (Bunyin Nanjio) की 'कैटेलाग ऑफ दी बुद्धिस्ट त्रिपिटक' नामक पुस्तक बहुत उपयोगी है।

(इ) तिब्बतवालों की पुस्तकें–तिब्बत की पुस्तकों की अब तक विशेष खोज नहीं हुई, तथापि जिन पुस्तकों का पता लगा है, उससे हमारे यहाँ की कितनी ही प्राचीन पुस्तकों (जो अब यहाँ पर नहीं मिलतीं) तथा उनके कर्ताओं के नाम आदि मालूम होते हैं। कुन्संजिग (*Kunsnjing* तारानाथ) नामक तिब्बत के श्रमण (बौद्ध साधु) ने भारतवर्ष का बौद्ध धर्म नामक पुस्तक ई०स० १६०८ में लिखी, जिसमें हमारे यहाँ के इतिहास विषय की कई जानने योग्य घटनाओं का उल्लेख मिलता है। उक्त पुस्तक का जर्मन अनुवाद शिफनर (Schiefner) नामक जर्मन विद्वान् ने किया है।

(ई) सीलोन वालों की पुस्तकें–सीलोन के साथ भारतवर्ष का निकट का संबंध होने के कारण वहाँ की ऐतिहासिक तथा धर्म संबंधी पुस्तकों से हमारे यहाँ के इतिहास में कुछ सहायता मिलती है, ऐसी पुस्तकों में मुख्य निम्न लिखित हैं:–

(१) दीपवंश–सीलोन के इतिहास की यह पुस्तक ई० स० ३०० के करीब पाली भाषा में बनी थी, जिसमें भारतवर्ष के मौर्यवंशी राजाओं का तथा कुछ-कुछ दूसरा वृत्तान्त भी मिलता है। इसका अंग्रेजी अनुवाद ओल्डनबर्ग (Oldenberg) साहब ने प्रकाशित किया है।

(२) महावंश–पाली भाषा की इस पुस्तक में ई०स० पूर्व की छठी शताब्दी से ई०स० की १८वीं शताब्दी के मध्य तक का सीलोन का इतिहास है। यह पुस्तक भी राजतरंगिणी की नाईं समय-समय पर लिखी गई थी। इसका प्रथम खंड ई०स० ४५९ और ४७७ के बीच महानामन् नामक विद्वान् ने लिखा था। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक उपर्युक्त दीपवंश की अपेक्षा अधिक उपयोगी है; क्योंकि इसमें शिशुनाग तथा मौर्यवंशी राजाओं के समय का भी कुछ-कुछ हाल मिल जाता है। इसके प्रथम खंड का अंग्रेजी अनुवाद जार्ज टर्नर (George Turnour) ने तथा बाकी का

विजयसिंह मुडलिअर ने किया है।

(२) मलिंद पन्हो (मलिंद प्रश्न)—पाली भाषा की इस पुस्तक में प्रतापी यूनानी बादशाह मलिंद अर्थात् (मिनेंडर) और बौद्धस्थविर नागसेन के प्रश्नोत्तर हैं। इससे मलिंद (मिनेंडर) के जन्मस्थान, राजधानी, प्रताप, विद्वत्ता तथा बौद्ध धर्म ग्रहण करने आदि का बोध होता है। हिन्दुस्तान के यूनानी राजकर्त्ताओं का इतिहास लिखने में इस पुस्तक से कुछ-कुछ सहायता मिल सकती है। इसका अंग्रेजी अनुवाद 'सेक्रेट बुक्स ऑफ दी ईस्ट नामक सीरीज की ३५वीं जिल्द में छपा है।

(उ) मुसलमानों की पुस्तकें—भारतवर्ष के समस्त हिन्दू राज्यों की स्वतंत्रता क्रम-क्रम से मुसलमानों ने नष्ट की, जिनके यहाँ इतिहास लिखने की प्रथा थी, जिससे उनकी लिखी हुई अरबी तथा फ़ारसी भाषा की पुस्तकों में विशेष कर हमारे यहाँ के भिन्न-भिन्न हिन्दू राज्यों का पिछला वृत्तान्त मिल जाता है। उसकी पुस्तकें इतनी हैं कि उन सब का ब्यौरा इस लेख में देना आवश्यक है। अतएव हम यहाँ पर थोड़े से मुख्य-मुख्य और प्राचीन ग्रंथों का ही उल्लेख करते हैं—

(१) सिलिसलातुत्तवारीख़—यह पुस्तक सुलेमान नामक व्यापारी ने ई० स० ८५१ में अरबी भाषा में लिखी थी, जिसमें उसने हिंदुस्तान आदि की अपनी यात्रा का वृत्तान्त दिया है। उसके समय में दक्षिण के मान्य-खेट (मानखेर, निज़ाम के राज्य में) नगर में राठौड़ वंश का राजा अमोघ-वर्ष (प्रथम) और कन्नौज में पड़िहार वंश का राजा भोजदेव (प्रथम) राज करता था। सुलेमान ने उक्त दोनों के राज्यों का वृत्तान्त लिखा है। जिसमें राठौड़ के लिये उसने बलहरा शब्द का प्रयोग किया है, जो उनके प्रसिद्ध ख़िताब 'वल्लभराज' का प्राकृत रूप (बलहराय) है।

(२) मुरुजुलजहब—अलमसूदी ने ई० स० की दसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इस पुस्तक को बनाया था, जिसमें मान्यखेट, कन्नौज आदि के राज्यों का कुछ-कुछ वृत्तान्त है।

उपर्युक्त दोनों पुस्तकों का अंग्रेज़ी सारांश सर एच० एम० इलियट की 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया(The History of India as told by its own Historian)' की पहली जिल्द में छपा है।

(३) तहक़ीक़े हिन्द—प्रसिद्ध मुसलमान ज्योतिषी अबुरिहां अल्बेरुनी ने, जो सुलतान महमूद ग़ज़नवी के समय हिन्दुस्तान में आया और जिसने कई बरसों तक यहाँ रहकर संस्कृत पढ़ी थी, ई० स० १०३१ के क़रीब यह किताब अरबी में लिखी थी; जिसमें हिन्दुओं के धर्म संबंधी विचार तथा

भिन्न-भिन्न शास्त्रों के वर्णन के अतिरिक्त कई प्राचीन संवतों का हाल तथा कुछ-कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त भी मिल जाता है। डाक्टर ऐडवर्ड साचू (Dr. Edward Sachau) ने इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है।

(४) चचनामा—यह पुस्तक ई० स० की ८वीं शताब्दी के मध्य के करीब अरबी में बनी थी, जिसका फ़ारसी अनुवाद मुहम्मद अली बिन् हमीद ने ई० स० की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में किया था। इसमें मुसलमानों के पहिले सिंध पर राज्य करने वाले हिन्दू राजाओं का वृत्तान्त है (जो अन्य किसी प्रकार की सामग्री से नहीं मिल सकता)। सिंध पर से हिन्दू राज्य मिट जाने तथा मुसलमानों का आधिपत्य जमने का हाल अलिबलादुरी की बनाई हुई 'फ़ूतूहल्बुल्दान,' मीरमासूम की 'तारीखुस्सिंध' मीरताहिर मुहम्मद की 'तारीख ताहिरी,' 'बेगलर नामा' जो अमीर सय्यद कासिम के बेटे शाह क़ासिमखाँ ने बनवाया था (ग्रंथकर्ता ने अपना नाम नहीं दिया), सय्यद जमाल का तरखाँनामा (जिसको 'अरगूंनामा' भी कहते हैं), अलीशेरखानी की 'तुहफ़ेतुल्किराम' तथा 'मजमूआउतवारीख़' आदि किताबों से भी मिलता है, परन्तु इन सब में चचनामा पुरानी पुस्तक है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका के १२वें भाग में मुंशी देवीप्रसादजी का लिखा हुआ 'हिन्दुस्तान का इतिहास' नामक लेख जो छप रहा है, उसका दूसरा प्रकरण (सिंध में हिन्दू राज्य) इन्हीं पुस्तकों के आधार पर लिखा गया है। इन पुस्तकों का ऐतिहासिक सारांश उपर्युक्त इलियट साहिब की 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया' की पहली जिल्द में छप चुका है।

(५) तारीख़ यमीनी—यह अरबी पुस्तक अल्उत्बी ने ई० स० १०२० में रची थी, जिसमें मुसलमान महमूद ग़ज़नवी की उस समय तक की हिन्दुस्तान पर की गई चढ़ाईयों का वृत्तान्त है। उत्बी, उक्त सुल्तान का समकालीन लेखक होने से उसकी पुस्तक विशेष उपयोगी है।

(६) तारीखुस्सुबुक्तगीन—इस किताब को ख्वाजह अबुलफ़ज़ल ने ई० स० १०५६ में बनाया था, जिसमें ग़ज़नी के सुल्तान महमूद गजनवी के पुत्र सुलतान नासिरुद्दीन मसूद के समय बनारस, हांसी आदि पर मुसलमानों की जो चढ़ाइयाँ हुईं, उनका हाल है।

(७) जामेउल्हिकायत—यह पुस्तक मुहम्मदऊफ़ी ने ई० स० की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखी थी, जिसमें जयसिंह (सिद्धराज), कुमारपाल आदि का वृत्तान्त मिलता है।

(८) ताजुलमआसिर---ई० स० १२३० के आस-पास हसन निज़ामी ने इसकी रचना की थी । इसमें शहाबुद्दीन ग़ोरी और कुतुबुद्दीन ऐबक के समय देहली, अजमेर, मीरट, कोल, अस्नी, बनारस, ग्वालिअर, नेहरवाला (अणहिलवाड़ा) कालिंजर, जालौर आदि के हिन्दू राजाओं पर मुसलमानों ने जो चढाइयां की, उनका हाल है ।

(९) कामिलुत्तवारीख़---इब्न असर ने ई० स० १२३० के क़रीब इसको बनाया था । इसमें अब्दुलमलिक की अधीनता में (ई० स० ७७५ में) समुद्र मार्ग से हिन्दुस्तान (काठिआवाड़ पर) मुसलमानों की चढ़ाई होने, वलब (शायद प्रसिद्ध वल्लभीपुर हो) को विजय करने, तथा बनारस के राजा जयचन्द्र के मारे जाने का वृत्तान्त है ।

उपर्युक्त किताबों (नं० ५ से ९ तक) का अंग्रेजी सारांश इलियट साहिब की, 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया' की जिल्द दूसरी में छपा है ।

(१०) तवक़ाते नासिरी---मिन्हाजुस्सिराज ने ई० स० १२५९ में इस पुस्तक की रचना की थी । इसमें उक्त समय तक भिन्न-भिन्न हिन्दू राज्यों पर मुसलमानों की जो-जो चढ़ाइयाँ हुई, उनका विस्तृत वृत्तान्त है । यह पुस्तक इतिहास के लिए बहुत उपयोगी है । रावरटी (Ravarty) साहिब का किया हुआ इसका अंग्रेजी अनुवाद बंगाल ऐशिआटिक् सोसाइटी की बिब्लिओथिका इंडिका नामक सीरीज़ में छपा है ।

(११) तारीख़अलाई---प्रसिद्ध हिंदी कवि अमीर खुस्रो ने (जिसका देहांत ई० स० १३३५ में हुआ था) देहली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के समय यह किताब बनाई थी, जिसमें उक्त बादशाह की रणथंभोर, मालवा, चित्तौड़, देवगिरि, सिवाना, मलबार, मथुरा आदि पर की गई चढ़ाइयों का हाल है । अमीर खुसरो ने इस पुस्तक में अपने समय की घटनाओं का उल्लेख किया है, अतएव यह पुस्तक उस समय के इतिहास के लिये विशेष उपयोगी है । इसका अंग्रेजी सारांश इलियट साहब की 'हिस्ट्री ऑव इंडिया' की तीसरी जिल्द में छपा है ।

(१२) तारीख़ फरिश्ता---मुहम्मद क़ासिम (फरिश्ता) ने अकबर बादशाह के समय में यह किताब बनाई थी, जिसमें देहली, कुलबर्गा (गुलबर्गा) बीजापुर, अहमदनगर, गोलकोंडा (गोलकुंडा), बराड़, बीदर, गुजरात (अहमदाबाद), मालवा (माडू), खानदेश, बंगाल, बिहार, जौनपुर, मुलतान, सिंध और ठट्टा तथा काश्मीर के मुसलमान राज्यों का (उस समय तक का) वृत्तान्त अनेक पुस्तकों के आधार पर लिखा है । मुसलमानों के समय के इस देश के इतिहास की यह अपूर्व पुस्तक है और इस

एक ही पुस्तक से भिन्न-भिन्न हिंदू राज्यों के अस्त होने का बहुत कुछ वृत्तान्त मिल जाता है। इसके दो अंग्रेजी अनुवाद छप चुके हैं।

जिनसे हमारे यहाँ के इतिहास में कुछ सहायता मिल सके, ऐसी अरबी तथा फ़ारसी भाषा की और भी कितनी ही पुस्तकें हैं, जिनका स्थानाभाव के कारण हम यहाँ पर उल्लेख नहीं कर सके। उनमें से बहुतों का अंग्रेजी सारांश इलियट साहब की 'हिस्ट्री, ऑव इंडिया (जिल्दें ८)' तथा बेले साहिब (Sir E. C. Baylay) की 'हिस्ट्री ऑव गुजरात' में छपा है।

(ग) प्राचीन शिलालेख और ताम्रपत्र

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिये सब से अधिक सहायता देने वाले शिलालेख और ताम्रपत्र [दानपत्र] हैं। शिलालेख बहुधा चट्टानों, स्तम्भों मंदिर, मठ, स्तूप, तालाब, बावड़ी आदि में लगी हुई अथवा गावों और खेतों के बीच गड़ी हुई पत्थर की शिलाओं, मूर्तियों के आसनों तथा स्तूपों के अन्दर रखे हुए पाषाण के पात्रों पर (जिनमें बहुधा किसी धर्माचार्य की हड्डी आदि रक्खी जाती थी) खुदे हुए होते हैं और संस्कृत, प्राकृत, तामिल, कनाड़ी आदि भारतवर्ष की भिन्न-भिन्न भाषाओं में (गद्य तथा पद्य) दोनों में मिलते हैं। जिनमें राजा आदि की प्रशंसा होती है, उनको प्रशस्ति भी कहते हैं। शिलालेख पिशावर से कन्याकुमारी तक और द्वारिका से आसाम तक सर्वत्र मिलते हैं, कहीं कम कहीं अधिक। नर्मदा से उत्तर के प्रदेश की अपेक्षा दक्षिण में ये बहुत अधिक मिलते हैं, जिसका कारण यह है कि उधर मुसलमानों का अत्याचार उत्तर की अपेक्षा बहुत कम हुआ। अब तक कई हजार शिलालेख मिल चुके हैं। जिनमें सबसे पुराना ई० स० ४५० के आस-पास का शक्य जाति के क्षत्रियों के बनाए हुए पिप्रावा (नेपाल की तराई में) के स्तूप से निकले हुए पत्थर के पात्र पर (जिसमें बुद्धदेव की हड्डियाँ रक्खी गई थीं) खुदा हुआ है और सबसे पिछले ई० स० की १९वीं शताब्दी के कई एक मिले हैं। शिलालेखों में से अधिकतर धर्म संबंधी कामों अर्थात् मंदिर, मठ, स्तूप, गुफा, तालाब आदि के बनवाने या उनका जीर्णोद्धार कराने, मूर्तियों के स्थापन करने या किसी प्रकार का दान देने के सूचक होते हैं। जिसमें से कितने ही में उक्त धर्म कार्य से संबंध रखने वाले व्यक्ति के अतिरिक्त उस समय के वहाँ के राजा वा उस (राजा) के वंश का भी वृत्तान्त होता है। राजवंशियों के बनवाये हुए मंदिरादि के लेखों में कभी-कभी विशेष रूप से उनके वंश का वृत्तान्त मिलता है। दूसरे प्रकार के शिलालेखों (अर्थात् जिसका

धर्म कार्य से संबंध नहीं है) में से किसी में राजाज्ञा, किसी-किसी में विजय आदि, किसी प्रसिद्ध घटना का उल्लेख, किसी में एक या अनेक राजाओं की प्रशंसा या उनका कुछ-कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त और किसी में उनकी वंश-परम्परा मिलती है। कई शिलालेख ऐसे भी मिले हैं, कि जिनमें वीर पुरुषों के युद्ध में मारे जाने, स्त्रियों के अपने पति के साथ सती होने, शेर आदि हिंसक जानवरों द्वारा किसी की मृत्यु होने, पंचायत से फैसला होने, धर्म विरुद्ध किसी कार्य को न करने की प्रतिज्ञा करने, अपनी इच्छा से अग्नि में बैठ कर (पुरुषों) के शरीरान्त करने या भिन्न-भिन्न धर्मावलंबियों के बीच के बखेड़े की समाधानी होने का उल्लेख मिलता है। शिला पर लेख खुदवाने का मुख्य अभिप्राय यही है कि उक्त धर्म कार्य या घटना की एवं उससे संबंध रखने वाले व्यक्ति की यादगार चिर स्थायी रहे। इसी अभिप्राय से राजाओं तथा धनाढ्य पुरुषों ने कितनी पुस्तकों[1] को भी शिलाओं पर खुदवा डाला था।

राजाओं तथा सर्दारों की तरफ़ से ब्राह्मणों, साधुओं, धर्माचार्यों, देव-मंदिरों, मठों वगैरह को दी हुई भूमि (गांव, क्षेत्र) आदि की सनद अथवा दूसरी किसी प्रकार की सनद जो ताँबे के पत्रों पर खुदवा कर दी जाती है, उसको 'ताम्रपत्र' कहते हैं और जिसमें दान का उल्लेख होता है, उसको दानपत्र भी कहते हैं। ताम्रपत्र अक्सर खेतों में गड़े हुए अथवा मकानों की दीवारों या नींवों में गड़े हुए मिलते हैं और कभी-कभी कुंओं में से भी निकल आते

---

1 अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज (वीसलदेव) ने अपने रचे हुए "हरकेलि नाटक" को तथा अपने राजकवि सोमेश्वर पंडित के रचे हुए "ललित विग्रहराज नाटक" को शिलाओं पर खुदवा कर अपनी बनवाई हुई अजमेर की पाठशाला में (जिसको अब ढाई दिन का झौंपड़ा कहते हैं) रखवाया था। परमार राजा भोजदेव की बनवाई हुई धारा नगरी की "सरस्वती कंठा भरण" नामक पाठशाला से (जो अब कमलमौला नाम से प्रसिद्ध है) "कुमार शतक काव्य," "पारिजात मंजरी नाटिका" आदि पुस्तकें शिलाओं पर खुदी हुई मिली हैं। सेठ लोलाक ने "उन्नत शिखर पुराण" नामक जैन (दिगंबर) पुस्तक को बीजोल्यां (मेवाड़ में) के पास की एक चट्टान पर वि० सं० १२२६ (ई० स० ११७०) में खुदवाया था, जो अब तक सुरक्षित है और मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने "राजप्रशस्ति" नामक २५ सर्ग का काव्य बड़ी-बड़ी पच्चीस शिलाओं पर खुदवा कर अपने बनवाए हुए राजसमुद्र नामक बड़े तालाब की पाल पर लगवाया था, जो अब तक वहाँ पर विद्यमान है।

हैं। कितने एक ताम्रपत्र एक ही पत्रे पर खुदे होते हैं, परन्तु प्राचीन ताम्रपत्र बहुधा अधिक पत्रों पर खुदे हुए मिलते हैं. जिनमें से पहिला तथा अन्तिम पत्र एक ही (भीतर की) ओर खुदा रहता है, और सब पत्रे कड़ियों से जुड़े रहते हैं। ताम्रपत्र अधिकतर दान के ही सूचक होते हैं, जिनमें दान देने वाले और लेने वाले के नाम आदि के अतिरिक्त दान देने वाले (राजा, सामंत) के वंश का वृत्तान्त भी होता है। अब तक सैंकड़ों ताम्रपत्र मिल चुके हैं।

प्राचीन शिलालेख और ताम्रपत्र हमारे प्राचीन इतिहास के लिये बहुत ही उपयोगी हैं, क्योंकि इनसे मौर्य, शातकर्णी (आंध्रभृत्य), शक, क्षत्रप, कुशन, (तुर्क), अभीर, गुप्त, पल्लव, हूण, यौधेय, वैंश, लिच्छवि, मौखरी, मैत्रक, गुहिल, सोलंकी, पड़िहार, परमार, चौहान, राठौड़, कछवाहा, तंवर, कलचुरी (हैहयवन्शी), चन्देल, यादव, गुर्जर, पाल, सेन, कदम्ब, शिलारा, सेंद्रक, काकतीय, नाग, निकुम्भ, गंगा, बाण, चोल आदि कितने ही राज–वंशों का बहुत कुछ वृत्तान्त, उनकी वशावलियाँ तथा अनेक राजाओं के राज्याभिषेक तथा देहांत के निश्चित् संवत् मिलते हैं। इतना ही नहीं, किंतु अनेक विद्वान्, धर्माचार्य, धनाढ्य, दानी, वीर आदि प्रसिद्ध पुरुषों के नाम तथा उनके निश्चित समय आदि का भी पता चलता है एवम् अनेक प्राचीन संवतों के नाम तथा उनके प्रारम्भ का निर्णय होता है और कई दूसरी आवश्यकीय बातें जानी जाती हैं।

पत्थर और तांबे के पत्रों के अतिरिक्त लोह के स्तम्भों पर भी कुछ लेख खुदे हुए मिले हैं, जिनमें मुख्य देहली के प्रसिद्ध कुतुबमीनार के पास खड़े हुए लोह के स्तम्भ (कीली) पर खुदा हुआ गुप्तवंशी प्रतापी राजा चन्द्र (चन्द्रगुप्त दूसरे) का लेख है, जिसमें उक्त राजा की विजय (बंगाल से बलूचिस्तान तक) का उल्लेख है।

शिलालेख और ताम्रपत्र अनेक पुस्तकों में छपे हैं, जिनमें से मुख्य नीचे लिखी हुई हैं—

एपिग्राफिआ इंडिका (जिल्दें ६), साउथ इंडिअन् इन्स्क्रिपशन्स (जिल्द ३), एपिग्राफिआ कर्णाटिका (जिल्द १२), इंडिअन् एंटिक्वेरी, तामिल ऐंड संस्कृत इन्स्क्रिपशन्स (डा० बर्जेस और नटेश शास्त्री-संपादित), गुप्त इन्स्क्रिपशन्स (डा० फ्लीट सम्पादित), अशोक इन्स्क्रिपशन्स (जनरल कनिंगहाम सम्पादित), एशिआटिक सोसाइटी बंगाल, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी और बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल, वियाना ओरि–एंटल जर्नल, जर्नल एशियाटिक, अमेरिकन् ओरिएंटल सोसाइटी के

जर्नल, एशियाटिक रिसर्चेज, भावनगर इन्स्क्रिपशन्स, भावनगर प्राचीन शोध संग्रह (प्रथम भाग विजयशंकर गौरीशंकर ओझा सम्पादित), आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्टें (जनरल कनिंगहाम सम्पादित जिल्दें २३), आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्टें (डाक्टर वर्जेस सम्पादित जिल्दें ५), आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्टें (जिल्दें २–सन् १६०२–३ और १६०३–४ की), पाली, संस्कृत ऐंड ओल्ड कनड़ी इंस्क्रिपशन्स (डा० वर्जेस और फ्लीट सम्पादित), ट्रांसलेशंस ऑफ इंस्क्रिपशन्स फ्रॉम बेलगांव ऐंड कलाड्गी डिस्ट्रिक्टस (डॉ० फ्लीट और हरिवामन लिमया सम्पादित), इंस्क्रिपशन्स फ्रॉम दि केव टेम्पल्स ऑफ वेस्टर्न इंडिया (डा० भगवानलाल इंद्रजी और डा० बर्जेस सम्पादित) और आर्किआलोजिकल सर्वे की प्रोग्रेस रिपोर्टें आदि ।

(घ) प्राचीन सिक्के मुद्रा और शिल्प

(अ) प्राचीन सिक्के—भारतवर्ष में चलनेवाले सोने, चांदी और तांबे के हजारों प्राचीन सिक्के मिल चुके हैं, और समय२ पर मिलते ही रहते हैं । ये सिक्के भी हमारे इतिहास में बड़ा काम देते हैं । ई० स० पूर्व की चौथी शताब्दी के पहले समस्त भारतवर्ष में चलनेवाले सिक्कों पर (जो चतुरस्र और गोल दोनों प्रकार के होते थे) राजाओं के नाम नहीं, किंतु सूर्य, चन्द्र, धनुष, पशु, पक्षी, वृक्ष, स्तूप, तारे आदि अनेक भिन्न-भिन्न चिह्नों के ठप्पे ही लगाए जाते थे । ऐसे प्राचीन सिक्के इतिहास में कुछ भी सहायक नहीं हो सकते । सिकन्दर की चढ़ाई के पीछे और खासकर बाक्ट्रिया के यूनानियों का राज्य काबुल, पंजाब आदि पर होने के समय से हमारे सिक्कों में बहुत कुछ सुधार हुआ, और यूनानियों के सिक्कों का अनुकरण किया जाकर उनपर राजाओं के नाम आदि अंकित होने लगे । इस देश में सुन्दरता के साथ बने हुए सिक्के प्रथम बाकट्रिया के युनानी राजाओं ने चलाए, जिनकी एक तरफ प्राचीन यूनानी लिपि में यूनानी भाषा का लेख (जिसमें राजा का नाम तथा खिताब होता था) और दूसरी ओर खरोष्ठी (गांधार) लिपि में (जो फ़ारसी की नाईं उलटी पढ़ी जाती है), बहुधा उसी आशय का (संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा का लेख[1] मिलता है । यूनानियों के पीछे शकों ने भी इस

---

(1) इन सिक्कों पर लेख दोनों तरफ बहुधा किनारों के पास हैं । बीच में एक तरफ राजा का चेहरा पूरी तस्वीर या और कोई चिह्न, एवं दूसरी ओर किसी देवी-देवता या जानवर आदि की तस्वीर होती है ।

देश पर अपना आधिपत्य जमाया जिनके सिक्के[1] भी यूनानियों के सिक्के की शैली के बनते रहे। इसी तरह के कुशनवंशियों के सिक्के भी बनें, परन्तु उनके पिछले सिक्कों में दोनों तरफ ग्रीक लिपि के ही लेख हैं। पश्चिमी क्षत्रपों के सिक्कों[2] पर एक तरफ प्राचीन देवनागरी लिपि के और दूसरी ओर यूनानी लिपि के लेख मिलते हैं, परन्तु चष्टन के बाद के राजाओं के समय यहाँ वालों को यूनानी भाषा का ज्ञान रहा हो, ऐसा अनुमान नहीं होता; क्योंकि उन सिक्कों पर के यूनानी लेखों से यही पाया जाता है कि उन पर 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' की तरह लोग यूनानी अक्षरों की नक़ल बना देते थे, जिनसे कुछ भी आशय नहीं निकलता। ई० स० की चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में गुप्तों के प्रतापी राज्य का उदय हुआ, जिन्होंने कुशनवंशियों की शैली का अपने सिक्कों में अनुकरण किया, परन्तु यूनानी लेख को मिटाकर दोनों ओर प्राचीन देवनागरी लिपि का लेख रक्खा, एवम् युनानी, ईरानी आदि देवी-देवताओं की तस्वीरों के स्थान पर हिन्दुओं के देवी-देवताओं की तस्वीरें (उस पर) बनवाईं। गुप्तों के समय से हिंदू शैली के सुन्दर सिक्के बनने लगे, परन्तु उन (गुप्तों) के बाद समय के साथ सिक्कों की कारीगरी में फिर भद्दापन आने लगा। यह सब परिवर्तन बहुधा नर्मदा के उत्तर में चलनेवाले सिक्कों में हुआ। दक्षिण के सिक्कों पर विदेशियों के सिक्कों का प्रभाव बहुत ही कम पड़ा। जिससे बहुत अरसे तक वहाँ पर प्राचीन शैली के अर्थात् बिना लेख के सिक्के ही चलते रहे। (सातवाहनवन्शी राजाओं के सिक्कों में नवीन शैली का अनुकरण पाया जाता है) पीछे से वहाँ के सिक्कों पर भी राजाओं के नाम आदि अंकित होने लगे, परन्तु उनमें सुन्दरता कम पाई जाती है।

अबतक यूनानी, शक, क्षत्रप, कुशन, (तुर्क), आंध्र, मौखरी, मैत्रक, (वल्लभी के राजकर्ता), परिव्राजक (डाहलदेश के जोगिया राजा),

---

1 शकों के सिक्के यूनानियों के सिक्कों जैसे सुन्दर नहीं हैं। उनमें क्रम-क्रम से भद्दापन आता गया।

2 पश्चिमी क्षत्रपों के सिक्कों पर एक तरफ राजा का सिर तथा संवत् का अंक, और दूसरी तरफ बीच में चैत्य का चिह्न तथा किनारे के निकट प्राचीन नागरी लिपि का लेख है। जिसमें राजा का तथा उसके पिता का नाम और उनके खिताबों का उल्लेख मिलता है। अतएव सिक्कों के आधार पर क्षत्रपों का समय तथा राजक्रम निश्चित होता है।

हूण, चौहान, पड़िहार, परमार, सोलंकी, तंवर, राठौड़, पाल, कलचुरी (हैहय वन्शी), चन्देल, गुहिलोत, नाग, यादव, काकतीय आदि कई राजवन्शों के तथा काश्मीर, नेपाल, अफ़गानिस्तान पर राज्य करनेवाले राजवन्शों के सिक्के मिल चुके हैं। कितने एक प्राचीन सिक्के ऐसे भी मिले हैं, जिन पर राजा का नाम नहीं, किन्तु किसी जाति, देश या शहर का नाम मिलता है। जिन राजाओं के नाम प्राचीन पुस्तक, शिलालेख और ताम्रपत्रों में नहीं मिलते। उनमें से कई एक के नाम आदि का पता सिक्कों से लग जाता है। डिमिट्रिअस आदि २५ से अधिक यूनानी राजाओं ने अफ़गानिस्तान, पंजाब आदि देशों पर राज्य किया, जिनके नाम बहुधा उनके सिक्कों से ही मालूम होते हैं। इसी तरह शक, क्षत्रप आदि राजवन्शों के कितने ही राजाओं के नाम केवल सिक्कों से जाने जाते हैं।

प्राचीन सिक्के इतने बहुत और भिन्न-भिन्न प्रकार के मिले हैं, जिससे पाठकों को उनका कुछ परिचय कराने के लिए भी एक पुस्तक लिखने की आवश्यक्ता रहती है, इसलिए इस छोटे से लेख में केवल उनकी उपयोगिता प्रगट करने के अतिरिक्त उनके विषय में कुछ भी लिखना अशक्य है। हमारे यहाँ के प्राचीन सिक्कों का वृत्तान्त और उनके चित्र कितनी ही पुस्तकों में छपे हैं, जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं:—

'आरिआना ऐंटिका' (एच० एच० विलसन संगृहीत), जेम्सप्रिंसेप साहिब के 'एसेज ऑफ ऐंटिक्विटीज' (२ जिल्द, एडवर्ड थोमस संपादित), 'कैटेलाग आफ़ दी काइंस आफ़ दी इंडिअन म्यूजिअम' जिल्द पहली (वी० ए० स्मिथ, संपादित), कैटेलाग आफ़ दी काइन्स कलेक्टेड बाइ सी. जे० राजर्स एंड परचेज्ड बाइ दी गवर्नमेंट ऑफ दी पंजाब हिस्सा तीसरा (सी. जे. राजर्स संपादित), जनरल कनिंगहाम के 'कॉइंस ऑफ एन्श्यंट इंडिआ'-'काइन्स ऑफ मिडिएवल इंडिआ'—काइन्स ऑफ़ दी इन्डो सीथिअन्स' और 'लेटर इंडोसीथिअन्स,' सरवाल्टर इलिअट का 'काइन्स आंफ़ सदर्न इंडिआ,' 'कैटेलाग ऑफ़ इंडिअन काइन्स इन दी ब्रिटिश म्यूज़िअम, ग्रीक एंड सीदिक किंग्ज ऑफ बाक्ट्रिआ एंड इंडिआ' (पर्सीगार्डनर संगृहीत और आर० स्टुअर्टपुल संपादित), 'न्युमिस्मैटिक क्रानिकल,' 'इंटरनैशनल न्युमिस्माटा ओरिऐंटेलिआ,' जनरल कनिंगहाम की आर्किआलोजिकल सर्वे रिपोर्ट "इंडिअन् एंटिक्वेरी," रायल, बंगाल और बम्बई की एशिआटिक सोसाइटियों के जर्नल आदि।

(आ) प्राचीन मुद्रा—भारतवर्ष में मुद्रा अर्थात् मुहर लगाने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आती है। ताम्रपत्रों पर और कितने ही ताम्रपत्रों की

कड़ियों की संधि पर राजमुद्राएँ लगी हुई मिलती हैं। कितने ही मिट्टी के गोले ऐसे मिले हैं, जिन पर भिन्न-भिन्न पुरुषों की मुद्राएँ लगी हुई हैं। अंगूठियों तथा कीमती पत्थरों पर भी खुदी हुई कई मुद्राएँ मिली हैं। इन मुद्राओं से भी हमारे यहाँ के प्राचीन इतिहास में कुछ-कुछ सहायता मिल सकती है। कन्नौज के पड़िहार राजा भोजदेव के ताम्रपत्र की मुद्रा में देवशक्ति से भोजदेव तक की पूरी वंशावली तथा चार रानियों के नाम हैं। वहीं के राजा विनायकपाल के ताम्रपत्र की मुद्रा में देवशक्ति से विनायकपाल तक की वंशावली और ६ रानियों के नाम हैं। गुप्तवंश के राजा कुमारगुप्त (दूसरे) की मुद्रा में (जो लखनऊ के म्यूज़िअम में रक्खी हुई है) महाराजगुप्त से लगाकर कुमारगुप्त (दूसरे) तक वंशावली एवं छः राजमाताओं के नाम हैं। मौखरी सर्ववर्मा की मुद्रा में हरिवर्मा से सर्ववर्मा तक की वंशावली तथा चार रानियों के नाम हैं। गुप्तवंशी राजा चन्द्रगुप्त (दूसरे) के पुत्र गोविंदगुप्त के नाम का पता एक मिट्टी के गोले पर लगी हुई उस (गोविंदगुप्त) की माता ध्रुवस्वामिनी की मुद्रा से ही लगता है। ऐसे ही कई राजाओं, धर्माचार्यों, धनाढ्यों आदि के नाम उनकी मुद्राओं से मिल जाते हैं। अब तक २०० से अधिक मुद्राएँ मिल चुकी हैं, उनका वृत्तान्त एपिग्राफिआ इंडिका, रायल बंगाल, और बम्बई की एशिआटिक सोसाइटिओं के जर्नल, जनरल कनिंगहाम की आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्ट, इंडिअन एंटिक्वेरी तथा आर्किआलोजिकल सर्वे की एन्युअल रिपोर्ट (सन् १९०३–४ ई० की) आदि पुस्तकों में छपा है।

(इ) *शिल्प–प्राचीन चित्र, मंदिर, गुफ़ा आदि स्थान तथा प्राचीन* मूर्तियाँ भी इतिहास में कुछ सहायता देती हैं। चित्रों से पोशाक, जेवर आदि का हाल मालूम होने के अतिरिक्त उनके बनाने के समय की चित्र-विद्या की दशा का भी ज्ञान होता है। प्रसिद्ध अजंता की गुफ़ा की दीवार पर के सोलंकी राजा पुलकेशी (दूसरे) के दरबार के रंगीन चित्र से उसके दरबार के ढंग के अतिरिक्त उस समय की वहाँ की पोशाक आदि का हाल मालूम होता है। प्राचीन मंदिर, गुफ़ा आदि से भी उसके बनाने वालों के नाम आदि का लेखों से पता लगाने पर इतिहास लेखक को कुछ-कुछ सहायता मिल जाती है और उनमें खुदी हुई मूर्तियाँ वही काम देती हैं, जो प्राचीन चित्र देते हैं। परन्तु यह लिखना अनुचित नहीं होगा कि हमारे यहाँ की प्राचीन मूर्तियों में वास्तविकता लाने का यत्न किया गया हो, ऐसा पाया नहीं जाता, क्योंकि कई पुरुषों की प्राचीन मूर्तियाँ अब तक विद्यमान हैं, जिन सबके चेहरे एक से हैं। प्राचीन चित्र तथा मंदिरादि के फोटो कई पुस्तकों में

छपे हैं, जिनमें मुख्य 'दी पेंटिंग्ज ऑफ अजंटा' (दो जिल्दें, जानग्रिफिथ साहव की बनाई), आर्किआलोजिकल सर्वे की भिन्न-भिन्न पुस्तकें आदि हैं ।

उपर्युक्त समस्त सामग्री (क, ख, ग और घ) द्वारा भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास बनाने का यत्न कहाँ तक सफल हो सकता है ? यह जानने की आकांक्षा रखने वाले पाठकों को हम 'भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथमालाF' की पहिली जिल्द (जिसमें सोलंकियों का प्राचीन इतिहास छपा है) देखने का आग्रह करते हैं; क्योंकि वह केवल उपर्युक्त सामग्री के आधार पर तैयार की गई है ।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, बनारस (प्राचीन संस्करण)
ई० स० १६०८–६ भाग १३, पृ० ६१–१४१

सम्पादकीय टिप्पण

A पृ० ३७, 'भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री' । यह निवन्ध श्री ओझाजी द्वारा उपरोक्त पत्रिका, भाग १३,.......... में प्रकाशित हुआ था । इतिहास के विद्यार्थियों में इसकी मांग विशेष रहने से उक्त निबन्ध को फिर उन्होंने थोड़े वहुत परिवर्तन के साथ पुस्तकाकार रूप से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में छपवाकर ई० सन् १६११ (वि० सं० १६६८) में प्रकाशित किया । इस निवन्ध में उन्हीं पुस्तकों आदि के नामों का समावेश हुआ है, जिनका कि उस समय श्री ओझाजी को ज्ञान था । इसके बाद इतिहास के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई है और कितने ही शिलालेख, दानपत्र, सिक्के मुद्राएं, पुस्तकों आदि का पता लगा है । इतिहास के अज्ञात विषयों पर भी कितने ही विद्वानों ने डा० ओझा वर्णित सामग्री के आधार पर ग्रंथों की रचना कर भारतीय इतिहास के भंडार को समृद्ध बनाने का यत्न किया है । तक्षशिला, हरप्पो, मोहनजोदड़ो आदि की खुदाई में भी अद्वितीय साधन मिले हैं, जिनसे भारत की अति प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान होता है । पुरातत्वानुसंधान के प्रेमियों के उद्योग से ऐतिहासिक क्षेत्र में सतत विकास हो रहा है, यह शुभ लक्षण है । इस निवंध में उल्लिखित कई ग्रंथ प्रकाशित हो गये हैं, जिससे भारतीय इतिहास लेखन-कला का साधन सुलभ हो गया है ।

B पृ० ३६, पं० ५ राजतरंगिणी के दूसरे खंड के कर्ता जोनराज का समय ई० सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी निश्चित् है । अतएव इस निवन्ध में जो समय ई० सन्

११४२, राजतरंगिणी दूसरे खंड की रचना का लिखा गया है, वह ठीक नहीं है। वस्तुतः राजतरंगिणी का दूसरा खण्ड जोनराज द्वारा ई० सन् १४४२ में लिखा गया। सम्भव है, मूल में लेखक अथवा छापे के दोष से ई० सन् ११४२ रह गया हो।

C पृ० ४१, पृ० २३७ पृथ्वीराज विजय इस महाकाव्य की अजमेर के प्रसिद्ध चौहान महाराजा पृथ्वीराज के दरवारी कवि जयानक द्वारा रचना हुई। यह ऐतिहासिक काव्य संस्कृत भाषा में है। जयानक काश्मीर का निवासी था और पृथ्वीराज की विद्यमानता में ही उसने इस वृहद् काव्य ग्रंथ की रचना आरंभ की थी। वह अपना ग्रंथ सम्पूर्ण करने नहीं पाया कि पृथ्वीराज पर शहाबुद्दीन गौरी की चढ़ाई हुई, जिससे वह उक्त अपूर्ण ग्रंथ को लेकर काश्मीर चला गया। ई० स० की पन्द्रहवीं शताब्दी में जोन-राज द्वारा उस पर संस्कृत भाषा में टीका लिखी गई। यह ग्रंथ काश्मीर की शारदा लिपि में लिखा हुआ है और अत्यन्त ही जीर्ण-शीर्ण है। पत्र संख्या क्रम से नहीं है तथा इसका कितना ही भाग नष्ट हो गया है। डॉ० बुलहर को काश्मीर के प्राचीन इतिहास की सामग्री का शोध करते समय ई० स० १८७६ में यह ग्रंथ मिला, जिसको उन्होंने दक्कन कॉलेज पूना के पुस्तकालय में भेंट किया है। दक्कन कॉलेज पूना के पुस्तकालय से मूल ग्रंथ मंगवाकर श्री ओझाजी एवं उनके मित्र श्री चन्द्रधर गुलेरी बी० ए० ने पृथ्वीराज विजय महाकाव्य का वड़ी योग्यतापूर्वक सम्पादन किया, जो वैदिक यन्त्रालय अजमेर में छपकर श्री ओझाजी द्वारा प्रकाशित होगया है।

D पृ० ४४-४५। यादव राजा सिंघण एवम् धोलका के वघेल (सोलंकी) राणा लावण्यप्रसाद के बीच वि० सं० १२८८ में संधि हुई, वह लेख-पन्चाशिका में प्रकाशित हुई है। ऊपर वि० सं० १२८८ के आगे ११३२ के अंक दिये हैं। इनमें से ११३२ को शक सम्वत् पढ़ना चाहिये, जिसका दक्षिण में प्रचार है।

E पृ० ५१, पं० ३। यह ग्रंथ सम्पूर्ण रूप से नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा कई भागों में छपाकर प्रकाशित किया गया है।

F पृ० ६८ पं० ६। भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथमाला पहिली जिल्द अर्थात् सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, श्री ओझाजी द्वारा ई० स० १६०७ में प्रकाशित हुआ। उसकी केवल छःसौ प्रतियां ही छपी और अव अप्राप्य है।

---

२ क्षत्रियों के गोत्र A

ब्राह्मणों के गौतम, भारद्वाज, वत्स आदि अनेक गोत्र (ऋषि-गोत्र) मिलते हैं जो उन (ब्राह्मणों) का उक्त ऋषियों के वंशज होना प्रकट करते हैं। ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों के भी अनेक गोत्र उनके शिलालेखादि में मिलते हैं; जैसे कि चालुक्यों (सोलंकियों) का मानव, चौहानों का वत्स, परमारों का वसिष्ठ, वाकाटकों का विष्णुवर्द्धन आदि। क्षत्रियों के गोत्र किस बात के सूचक हैं, इसके विषय में मैंने टॉड राजस्थान के सातवें प्रकरण पर टिप्पणी करते समय प्रसंगवशात् वाकाटक वंश का परिचय देते हुए लिखा था—"वाकाटक-वंशियों के दानपत्रों में उनका विष्णवर्द्धन गोत्र में होना लिखा है। बौद्धायन प्रणीत 'गोत्र-प्रवर-निर्णय' के अनुसार [विष्णुवर्द्धन गोत्र वालों का महर्षि भारद्वाज के वंश में होना पाया जाता है। परन्तु प्राचीन काल में राजाओं का गोत्र वही माना जाता था, जो उनके पुरोहितों का होता था। अतएव विष्णुवर्द्धन गोत्र से अभिप्राय इतना ही होना चाहिये कि इस वंश के राजाओं के पुरोहित विष्णुवर्द्धन गोत्र के ब्राह्मण थे।" * कई बरसों तक मेरे उक्त कथन के विरुद्ध किसी ने कुछ भी नहीं लिखा। परन्तु अब उस विषय की चर्चा खड़ी हुई है जिससे उसका स्पष्टीकरण करना आवश्यक प्रतीत होता है।

श्रीयुत चिंतामणि विनायक वैद्य एम०ए०एल-एल बी० के नाम और उनकी 'महाभारत मीमांसा' पुस्तक से हिन्दी प्रेमी परिचित ही हैं। वैद्य महाशय इतिहास के भी प्रेमी हैं। उन्होंने ई०सन् १९२३ में "मध्य युगीन भारत, भाग दूसरा" नाम की मराठी पुस्तक प्रकाशित की जिसमें हिन्दू राज्यों का उत्कर्ष अर्थात् राजपूतों का प्रारंभिक(अनुमानतः ई०सन् ७५०से १०००तक का) इतिहास लिखने का यत्न किया है। उसमें क्या राजपूत विदेशी हैं, अग्निकुल की झूठी कल्पना, पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिक आलोचना, क्या अग्निवंशी गूजर हैं, राजपूतों के गोत्र और आर्य जाति का राजपूताने में बसना आदि विषयों पर

---

*खड्गविलास प्रेस(बाँकीपुर)का छपा'हिन्दी टॉड राजस्थान',खंड१,पृ०५३०-३१।

सम्पादकीय टिप्पण

A. यह निबंध स्वर्गीय डॉ. ओझा द्वारा स्वयं के 'राजपूताना का इतिहास' जि० १. और उदयपुर राज्य का इतिहास' जि० १, की परिशिष्ट संख्या ४ में प्रकाशित हो चुका है।

अपना मंतव्य तथा चित्तौर के गुहिलवंशियों, साँभर के चौहानों, कन्नौज के सम्राट्-प्रतिहारों, (पड़िहारों), अनहिलवाड़े (पाटण) के चावड़ों, धार के परमारों, बुंदेलखंड के चँदेलों, चेदि अर्थात् त्रिपुरि के कलचुरियों, बंगाल अथवा मूंगेर के पालवंशियों, दक्षिण के राष्ट्रकूटों (राठौड़ों) आदि का कुछ इतिहास, तथा उस समय की भाषा, धार्मिक परिस्थिति, सामाजिक स्थिति, वर्णव्यवस्था, राजकीय परिस्थिति, मुल्की और फ़ौजी व्यवस्था आदि कई ऐतिहासिक विषयों का समावेश किया है। वैद्य महाशय का यत्न बड़ा ही सराहनीय है। मेरे इस लेख का उद्देश्य उनके ग्रंथ की समालोचना करना नहीं, किंतु केवल राजपूतों (क्षत्रियों) के गोत्र के संबंध में मेरा और उनका जो मतभेद है, उसी का निर्णय करना है। वैद्य महाशय ने 'राजपूतों के गोत्र' तथा 'गोत्र और प्रवर' इन दो लेखों में यह बतलाने का यत्न किया है कि क्षत्रियों के जो गोत्र हैं, वे उनके मूल पुरुषों के सूचक हैं, पुरोहितों के नहीं; और पहले क्षत्रिय लोग ऐसा ही मानते थे (पृ० ६१)। अर्थात् भिन्न-भिन्न क्षत्रिय वास्तव में उन ब्राह्मणों की संतति हैं, जिनके गोत्र वे धारण करते हैं।

अब इस विषय की जाँच करना आवश्यक है कि क्षत्रियों के गोत्र वास्तव में उनके मूल पुरुषों के सूचक हैं वा उनके पुरोहितों के, जो उनके संस्कार करते और उनको वेदादि शास्त्रों का अध्ययन कराते थे।

(१) याज्ञवल्क्य स्मृति के आचाराध्याय के विवाह प्रकरण में कैसी कन्या के साथ विवाह करना चाहिये, यह बतलाने के लिये नीचे लिखा हुआ श्लोक है—

अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजां।
पंचमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृस्तथा। ५३ ॥

आशय—जो कन्या निरोग, भाईवाली, भिन्न ऋषि-गोत्र की हो, और (वर का) माता की तरफ से पाँच पीढ़ी तक और पिता की तरफ से सात पीढ़ी तक का जिससे संबंध न हो; उससे विवाह करना चाहिए।

वि०सं० ११३३ और ११८३ के बीच दक्षिण (कल्याण) के दरबार के चालुक्य (सोलंकी) राजा विक्रमादित्य (छठे) के समय के पंडित विज्ञानेश्वर ने 'याज्ञवल्क्य स्मृति' पर 'मिताक्षरा' नाम की विस्तृत टीका लिखी, जिसका अब तक विद्वानों में बड़ा सम्मान है और जो सरकारी न्यायालयों में भी प्रमाण रूप मानी जाती है। उक्त टीका में ऊपर उद्धृत किए हुए श्लोक के

---

१. ई.स. १०७६ और ११२६ (सं० टि०)।

'असमानार्षगोत्रजां' चरण का अर्थ बतलाते हुए विज्ञानेश्वर ने लिखा है— 'राजन्य (क्षत्रिय) और वैश्यों में अपने गोत्र (ऋषि गोत्र) और प्रवरों का अभाव होने के कारण उनके गोत्र और प्रवर पुरोहितों के गोत्र और प्रवर * समझने चाहिएँ †। साथ ही उक्त कथन की पुष्टि में आश्वलायन का मत उद्धृत करके बतलाया है कि राजाओं और वैश्यों के गोत्र वे ही मानने चाहिएँ जो उनके पुरोहितों के हों§। मिताक्षरा के उक्त अर्थ के विषय में श्रीयुत वैद्यजी का कथन है—'मिताक्षरा-कार ने यहाँ ग़लती की है, इसमें हमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है' (पृ० ६०) 'मिताक्षरा के बनने के पूर्व क्षत्रियों के स्वतः के गोत्र थे' (पृ०६१)। इस कथन का आशय यही है कि मिताक्षरा के बनने के पीछे क्षत्रियों के गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्रों के सूचक हैं, ऐसा माना जाने लगा, पहले ऐसा नहीं था।

अब हमें यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि मिताक्षरा के बनने के पूर्व क्षत्रियों के गोत्रों के विषय में क्या माना जाता था। वि० सं० दूसरी शताब्दी के प्रारंभ में अश्वघोष नामक प्रसिद्ध विद्वान् और कवि हुआ, जो पहले ब्राह्मण था, परन्तु पीछे से बौद्ध हो गया था। वह कुशनवंशी राजा कनिष्क का धर्मसंबंधी सलाहकार था, ऐसा माना जाता है। उसके 'बुद्धचरित' और 'सौंदरानंद काव्य' कविता की दृष्टि से बड़े ही उत्कृष्ट समझे जाते हैं। उसकी प्रभावोत्पादक कविता सरलता और सरलता में कवि-शिरोमणि कालिदास की कविता के जैसी ही है; और यदि कालिदास की समता का पद किसी कवि

---

* प्रत्येक ऋषिगोत्र के साथ बहुधा तीन या पाँच प्रवर होते हैं जो उक्त गोत्र (वंश) में होने वाले प्रवर (परम प्रसिद्ध) पुरुषों के सूचक होते हैं। कश्मीरी पण्डित जयानक अपने 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' में लिखता है—

काकुत्स्थमिक्ष्वाकुरघू च यद्दधत्पुराभवत्त्रिप्रवरं रघोः कुलम्।
कलावपि प्राप्य स चाहमानतां प्ररूढतुर्यप्रवरं बभूव तत्॥२।७१॥

आशय—रघु का वंश (सूर्यवंश) जो पहले (कृतयुग में) काकुत्स्थ, इक्ष्वाकु और रघु इन तीन प्रवरोंवाला था, वह कलियुग में चाहमान (चौहान) को पाकर चार प्रवरवाला हो गया।

†राजन्यविशां प्राप्तिस्विकगोत्राभावात् प्रवराभावस्तथापि पुरोहितगोत्रप्रवरौ वेदितव्यौ (मिताक्षरा, पृ० १४)।

§ तथा च यजमानस्यार्षेयान् प्रवृणीत इत्युक्त्वा पौरोहित्यान् राजविशां प्रवृणीते इत्याश्वलायनः। (वही, पृ० १४)।

को दिया जाय तो उसके लिये अश्वघोष ही उपयुक्त पात्र हो सकता है। उसको हिन्दुओं के शास्त्रों तथा पुराणों का ज्ञान भी अनुपम था, जैसा कि उसके उक्त काव्यों से पाया जाता है। सौंदरानंद काव्य के प्रथम सर्ग में उसने क्षत्रियों के गोत्रों के संबंध में जो विस्तृत विवेचन किया है, उसका सारांश नीचे लिखा जाता है—

"गौतम गोत्री कपिल नामक तपस्वी मुनि अपने माहात्म्य के कारण 'दीर्घतपस्' के समान और अपनी बुद्धि के हेतु काव्य (शुक्र) और अंगिरस के समान था। उसका आश्रम हिमालय के पार्श्व में था। कई इक्ष्वाकुवंशी राजपुत्र मातृद्वेष के कारण और अपने पिता के सत्य की रक्षा के निमित्त राजलक्ष्मी का परित्याग कर उस आश्रम में जा रहे। कपिल उनके उपाध्याय (गुरु) हुए, जिससे राजकुमार जो पहले कौत्स गोत्री थे, अब अपने गुरु के गोत्र के अनुसार गौतम गोत्री कहलाए। एक पिता के ही पुत्र भिन्न-भिन्न गुरुओं के कारण भिन्न-भिन्न गोत्र के हो जाते हैं। जैसे कि राम (बलराम) का गोत्र 'गार्ग्य' और वासुभद्र (कृष्ण) का 'गौतम' हुआ। जिस आश्रम में उन राजपुत्रों ने निवास किया, वह 'शाक' नामक वृक्षों से आच्छादित होने के कारण वे इक्ष्वाकुवंशी 'शाक्य' नाम से भी प्रसिद्ध हुए। गौतम ने अपने वंश की प्रथा के अनुसार उन राजपुत्रों के संस्कार किए और उक्त मुनि और उन क्षत्रिय-पुंगव राजपुत्रों के कारण उस आश्रम ने एक साथ 'ब्रह्मक्षेत्र' की शोभा धारण की *

यही मत बौधायन, आपस्तंब और लौगाक्षी का है (पुरोहित प्रवरो राज्ञाम्) देखो 'गोत्र प्रवर निबंधकदंबम्,' पृ० ६० ।

बुंदेला राजा वीरसिंह देव (वरसिंह देव) के समय मित्रमिश्र ने 'वीरमित्रोदय' नामक ग्रंथ लिखा था। उसमें भी क्षत्रियों के गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्रों के सूचक माने हैं—

तत्र द्विविधा: क्षत्रिया: केचिद्विद्यमान मंत्रदृश: केचिदविद्यमान मंत्रदृश:। तत्र विद्यमान मंत्रदृश: स्वीयानेव प्रवरान्प्रवृणीरन्। येत्वविद्यमान मंत्रदृशास्ते पुरोहितप्रवरान् प्रवृणीरन्। स्वीय वरत्वेपि स्वस्य पुरोहितगोत्रप्रवरपक्ष एव मिताक्षराकारमेधातिथिप्रभृतिभिराश्रित:

'वीरमित्रोदय,' संस्कार प्रकाश, पृ० ६५६ ।

*गौतम: कपिलो नाम मुनिधर्म्मभृतां वर:।
बभूव तपसि श्रान्त: कक्षीवानिव गौतम:॥ १ ॥
माहात्म्यात् दीर्घतपसो यो द्वितीय इवाभवत्।
तृतीय इव यश्चाभूत् काव्याङ्गिरसयोर्धिया ॥ ४ ॥

अश्वघोष का यह कथन मिताक्षरा के बनने से १००० वर्ष से भी अधिक पूर्व का है; अतएव श्रीयुत वैद्य के यह कथन कि 'मिताक्षराकार ने ग़लती की है और मिताक्षरा के पूर्व क्षत्रियों के स्वतः के गोत्र थे' सर्वथा मानने योग्य नहीं हैं; और क्षत्रियों के गोत्रों को देखकर यह मानना कि ये क्षत्रिय उन ऋषियों (ब्राह्मणों) के वंशधर हैं जिनके गोत्र वे धारण करते हैं, सरासर भ्रम ही है। पुराणों से यह तो पाया जाता है कि अनेक क्षत्रिय ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए और उनसे कुछ ब्राह्मणों के गोत्र चले*; परन्तु उनमें यह कहीं लिखा नहीं मिलता कि क्षत्रिय ब्राह्मणों के वंशधर हैं।

तस्य विस्तीर्णतपसः पार्श्वे हिमवतः शुभे।
क्षेत्रं चायतनञ्चैव तपसामाश्रयोऽभवत् ॥ ५ ॥
अथ तेजस्विसदनं तपक्षेत्रं तमाश्रमम्।
केचिदिक्ष्वाकवो जग्मू राजपुत्रा विवत्सवः ॥१८॥
मातृशुल्कादुपगतां ते श्रियं न विषेहिरे।
ररक्षुश्च पितुः सत्यं यस्माच्छिश्रियिरे वनम् ॥२१॥
तेषां मुनिरुपाध्यायो गोतमः कपिलोऽभवत्।
गुरोर्गोत्रादतः कौत्सास्ते भवन्ति स्म गौतमाः ॥२२॥
एकपित्रोर्यथा भ्रात्रोः पृथग्गुरुपरिग्रहात्।
राम एवाभवद् गार्ग्यो वासुभद्रोऽपि गोतमः ॥२३॥
शाकवृक्षप्रतिच्छन्नं वासं यस्माच्च चक्रिरे।
तस्मादिक्ष्वाकुवंश्यास्ते भुवि शाक्या इति स्मृताः ॥ २४ ॥
स तेषां गोतमश्चक्रे स्ववंशसदृशः क्रियाः ॥ २५ ॥
तद्वनं मुनिना तेन तैश्च क्षत्रियपुङ्गवैः।
शान्तां गुप्तां च युगपद् ब्रह्मक्षत्रंश्रियं दधे ॥ २७ ॥

—सौंदरानंदकाव्य। सर्ग १।

* सूर्यवंशी राजा मांधाता के तीन पुत्र पुरुकुत्स, अंबरीष और मुचकुंद हुए। अंबरीष का पुत्र युवनाश्व और उसका हरित हुआ, जिसके वंशज अंगिरस हारित कहलाए और हारित गोत्री ब्राह्मण हुए।

तस्यामुत्पादयामास मांधाता त्रीन्सुतान्प्रभुः ॥ ७१ ॥
पुरुकुत्समम्बरीषं मुचकुंदं च विश्रुतम्।
अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः ॥ ७२ ॥
हरितो युवनाश्वस्य हारिताः शूरयः स्मृताः।
एते ह्यङ्गिरसः पुत्राः क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥ ७३ ॥

—वायुपुराण अध्याय ८८।

यदि क्षत्रियों के गोत्र उनके पुरोहितों (गुरुओं) के सूचक न होकर उनके मूल पुरुषों के सूचक होते जैसा कि श्रीयुत वैद्य का मानना है तो ब्राह्मणों के समान उनके गोत्र सदा वे ही बने रहते और कभी न बदलते। परन्तु प्राचीन शिलालेखादि से ऐसे प्रमाण मिल जाते हैं जिनसे एक ही कुल या वंश के क्षत्रियों के समय-समय पर भिन्न गोत्रों का होना पाया जाता है। ऐसे थोड़े से उदाहरण नीचे उद्धृत किए जाते हैं--

मेवाड़ (उदयपुर) के गुहिल वंशियों (गुहिलोतों, गोहिलों, सीसोदियों) का गोत्र वैजवाप है। पुष्कर के अष्टोत्तर-शत लिंगवाले मंदिर में एक सती का स्तंभ खड़ा है जिस पर के लेख से पाया जाता है कि वि० सं० १२४३ C माघ सुदी ११ को ठ० (ठकुराणी) हीरवदेवी ठा० (ठाकुर) कोल्हण की स्त्री सती हुई। उक्त लेख में ठा० कोल्हण को गुहिलवंशी और गौतम गोत्री* लिखा है। काठियावाड़ के गुहिल भी, जो मारवाड़ के खेड़ इलाके से वहाँ गए हैं और जो मेवाड़ के राजा शालिवाहन के वंशज हैं, अपने को गौतम गोत्री मानते हैं। मध्य प्रदेश के दमोह जिले के मुख्य स्थान दमोह से गुहिल वंशी विजयसिंह का एक शिलालेख मिला है, जो इस समय नागपुर म्युजिअम में सुरक्षित है। वह लेख छंदो-बद्ध डिंगल भाषा में खुदा है और उसी के अंत का थोड़ा-सा अंश संस्कृत में भी है। पत्थर का कुछ टुकड़ा टूट जाने के कारण संवत् जाता रहा है। उसमें गुहिल वंश के चार राजवंशियों के नाम क्रमशः विजयपाल, भुवनपाल, हर्षराज और विजयसिंह दिए हैं, जिनको विश्वामित्र गोत्री† और गुहिलोत ‡ (गुहिल।

अंबरीषस्य मांधातुस्तनयस्य युवनाश्वः पुत्रोभूत्। तस्माद्धरितो यतोऽगिरसो। हारिताः ।। ५ ।। --विष्णुपुराण। अंश ४, अध्याय ३।

विष्णुपुराण की टीका में--

अंबरीषस्य युवनाश्वः प्रपितामहसनामा यतो हरिताद्धारिता अंगिरसो द्विजा हरितगोत्र प्रवराः। (पृ० ६।१)।

चंद्रवंशी राजा गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने ब्रह्मत्व प्राप्त किया और उनके वंशज ब्राह्मण हुए जो कौशिक गोत्री कहलाते हैं। पुराणों में ऐसे बहुत से उदहारण मिलते हैं।

* राजपूताना म्युजिअम् (अजमेर) की ई० सन् १९२०-२१ की रिपोर्ट; पृ० ३, लेखसंख्या ५।

† विसामित्त गोत्त उत्तिम चरित विमल पवित्तो० (पंक्ति६ठी; डिंगल भाग में) विस्वा (श्वा) मित्रे सु(शु) भे गोत्रे (पंक्ति २९, संस्कृत अंश में)।

‡ विजयसीहु धूर चरणो चाई सूरोऽसुमधो। सेलखहक्कम कुशलो गुहिलौतो

C ई० स० ११४७। (सं० टि०)।

बतलाया है। ये मेवाड़ से ही उधर गए हुए प्रतीत होते हैं; क्योंकि विजयसिंह के विषय में लिखा है कि वह चित्तौड़ की लड़ाई में लड़ा और उसने दिल्ली की सेना को परास्त किया *। इस प्रकार मेवाड़ के गुहिलवंशियों के तीन भिन्न गोत्रों का पता चलता है।

इसी प्रकार चालुक्यों (सोलंकियों) का मूल गोत्र मानव्य था और मद्रास अहाते के विशाखपट्टन (विज़गापट्टम्) ज़िले के जयपुर राज्य (ज़मींदारी) के अन्तर्गत गुणपुर और मोडगुला के ठिकाने अब तक सोलंकियों के ही हैं और उनका गोत्र मानव्य † ही है, परन्तु लूणावाड़ा, पीथापुर और रीवाँ आदि के सोलंकियों (बघेलों) का गोत्र भारद्वाज होना श्रीयुत वैद्य महाशय ने बतलाया है (पृ० ६४)।

इस प्रकार एक ही वंश के राजाओं के भिन्न-भिन्न गोत्र होने का कारण यही मानना पड़ता है कि राजपूतों के गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्रों के ही सूचक हैं, और वे अलग-अलग जगह जा बसे, तब वहाँ जिसको पुरोहित माना, उसी का गोत्र वे धारण करते रहे।

राजपूतों के गोत्र उनके वंशकर्ता के सूचक न होने तथा उनके पुरोहितों के गोत्रों के सूचक होने के कारण पीछे से उनमें गोत्र का महत्त्व कुछ भी रहा हो, ऐसा पाया नहीं जाता। केवल पुरानी रीति के अनुसार संकल्प, श्राद्ध आदि में उसका उच्चारण होता रहा है। सोलंकियों का प्राचीन गोत्र मानव्य था और अब तक भी कहीं-कहीं वही माना जाता है। गुजरात के मूलराज आदि सोलंकी राजाओं का गोत्र क्या माना जाता था, इसका कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं मिलता तो भी संभव है कि या तो मानव्य या भारद्वाज हो। परन्तु उनके पुरोहितों का गोत्र वसिष्ठ ‡ था, ऐसा गुर्जरेश्वर पुरोहित सोमेश्वर देव के 'सुरथोत्सव काव्य' से निश्चित है। आज भी राजपूताने आदि के राजपूत राजाओं के गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्रों से बहुधा भिन्न ही हैं।

ऐसी दशा में यही कहा जा सकता है कि राजपूतों के गोत्र सर्वथा उनके वंशकर्ताओं के सूचक नहीं, किन्तु पुरोहितों के गोत्रों के सूचक होते थे, और कभी कभी पुरोहितों के बदलने पर गोत्र भी बदल जाया करते थे। यह रीति उनमें उसी समय तक बनी रही, जब तक कि पुरोहितों के द्वारा उनके वैदिक

सत्व गुणे (पं० १३-१५, डिंगल भाग में)।

* जो चित्तोड़हुँ जुझिअउ जिण ढिलीदलु जित्तु (पं० २१)।

† 'सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, भाग १, पृ० २०४।

‡ नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); भाग ४ पृ० २।

संस्कार होकर प्राचीन शैली के अनुसार वेदादि पठन-पाठन का क्रम उनमें प्रचलित रहा। पीछे तो वे गोत्र नाम मात्र के रह गए। केवल प्राचीन प्रणाली को लिए हुए संकल्प, श्राद्ध आदि में गोत्रोच्चार करने के अतिरिक्त उनका महत्त्व कुछ भी न रहा और न वह प्रथा रही कि पुरोहितों का जो गोत्र हो वही राजा का भी हो।

ना० प्र० पत्रिका, काशी (न० संस्करण),
भाग ५, संख्या ४, वि. सं. १९८१ = ई० स० १९२४।

३—सेनापति पुष्यमित्र और अयोध्या का शिलालेख

नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ५, अंक १ 'शुंग-वन्श का एक शिलालेख' नामक लेख बाबू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' बी० ए० ने मूल लेख की प्रतिलिपि सहित प्रकाशित किया है (पृ० ९९–१०४)। उसके प्रकाशित होने के पूर्व हाथ से लिखी हुई उसकी एक प्रतिलिपि बाबू जगन्नाथदासजी ने बाबू श्यामसुन्दरदासजी के द्वारा मेरे पास भेजी, जिसको पढ़ते ही मैंने बाबू श्यामसुन्दरदासजी को सूचित किया कि यह लेख बड़े महत्त्व का है; परन्तु जब तक उसकी छाप या फोटो न देखी जाय, तब तक विश्वस्त रूप से उसके संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। बाब जगन्नाथदासजी ने उसे प्रकाशित कर इतिहास-प्रेमियों का बड़ा उपकार किया है। उन्होंने उसकी प्रतिलिपि, नागरी अक्षरांतर, हिंदी अनुवाद एवम् अक्षरों के विषय में विस्तृत विवेचन किया है, और उसके सम्बन्ध में विशेष रूप से किसी अवसर पर फिर लिखने की इच्छा प्रकट की है। अपना लेख प्रकाशित हो जाने के पश्चात् उन्होंने कृपाकर उक्त लेख पर से उठाई हुई छाप भी मेरे पास भिजवाई, जिसके लिये मैं उनका बहुत ही अनुगृहीत हूँ। इस छोटे से लेख के मिलने से शुंग वन्श के इतिहास संबंधी कितनी एक संशय युक्त बातों का निर्णय होने के अतिरिक्त शुंगों के इतिहास पर कुछ नया प्रकाश भी पड़ा। अतएव उस पर मैं इस लेख के द्वारा अपने कुछ विचार प्रकट करता हूँ, जैसा कि मैंने उक्त लेख के अन्त की सम्पादकीय टिप्पणी में उल्लेख किया था।

वह लेख दो पंक्ति का है। पहली पंक्ति का आदि और अन्त का कुछ कुछ अंश नष्ट हो गया सा जान पड़ता है, और दूसरी पंक्ति का तो केवल दाहिनी ओर का आधा अंश ही रक्षित है। तिस पर भी वह पुरातत्त्ववेत्ताओं के लिये कम महत्त्व का नहीं है। पहली पंक्ति का

जो अंश, विद्यमान है, उसका आशय यह है कि 'दो वार अश्वमेध यज्ञ करनेवाले सेनापति पुष्यमित्र के छठे (वंशधर) कोशलाधिपति कोशिकी-पुत्र (धन)··········ने·········' । कोशिकीपुत्र के वाद कोशल (अयोध्या) के उस समय के राजा का नाम होना चाहिये, जिसका पहला अक्षर 'ध' स्पष्ट है, और दूसरा 'न' सा प्रतीत होता है । यदि वह 'न' ही हो, तो अयोध्या के जिस राजा का यह लेख है, उसका नाम धनभूति अथवा 'धन' पद से प्रारम्भ होने वाला (धनदेव धनमित्र आदि) होना चाहिये । दूसरी पंक्ति के बचे हुए अक्षरों में पहले दो अक्षर छाप में 'धम' से प्रतीत होते हैं, जो संभवतः 'धर्म' हों । उनका संबंध उनके पूर्व के अक्षरों के साथ था, या पिछलों से है, यह अनिश्चित है । उनके वाद के दो अक्षर 'राज्ञा' से प्रतीत होते हैं, परन्तु वे संदेहरहित नहीं हैं । इन चार अक्षरों के पीछे का अंश साफ़ है; और उसका आशय यह है कि पिता फल्गुदेव का (फल्गुदेव के निमित्त) केतन (स्थान) वनवाया । फल्गुदेव संभवतः उक्त कोशलाधिपति के पिता का नाम हो । दूसरी पंक्ति इतिहास के लिये उतनी उपयोगी नहीं है, जितनी पहली ।

अव उक्त लेख के सम्वन्ध में कुछ विचारणीय बातों का विवेचन नीचे किया जाता है—

कौशिकीपुत्र धन······को पुष्यमित्र का छठा (वन्शधर) और अयोध्या का अधिपति कहा है । कौशिकपुत्र शुंग राज्य का स्वामी नहीं, किंतु केवल अयोध्या का राजा था; अतएव उसको पुष्यमित्र का कुटुंबी मानना युक्तियुक्त है ।

उक्त लेख से शुंगवंशियों का राज्य पश्चिम में अयोध्या तक होना तो निर्विवाद है, परन्तु भरहुत (मध्य भारत) के प्रसिद्ध स्तूप के एक तोरण पर शुंगों के राजत्व काल का एक लेख* खुदा हुआ है, जो राजा गागी-पुत (गार्गीपुत्र) विसदेव (विश्वदेव) के पौत्र और गोतिपुत (गोति-पुत्र) आगरजु के पुत्र वाछिपुत (वात्सीपुत्र) धनभूति का है । उक्त लेख से शुंगों का राज्य पाटलीपुत्र (पटना) से पश्चिम में मध्य भारत तक होना निश्चित है ।

उक्त लेख में सव से अधिक महत्त्व की वात सेनापति पुष्यमित्र के दो अश्वमेध करने का उल्लेख है । महाभाष्य के कर्ता पतंजलि ने, जो पुष्यमित्र के समय विद्यमान थे, उक्त राजा के यज्ञ† का उल्लेख

---

* इंडियन एंटिक्वेरी जि० १४, पृ० १३९ ।

† इह पुष्यमित्रं याजयामः (महाभाष्य) ।

प्रसंगवशात् किया है; परन्तु उससे यह नहीं पाया जाता कि उसने कौन-सा यज्ञ किया था। महाकवि कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में शुंग वंश का विशेष इतिहास मिलता है। उससे पाया जाता है कि जिस समय सेनापति पुष्यमित्र ने राजसूय (अश्वमेध) यज्ञ किया, उस समय उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा (भिलसा, ग्वालियर राज्य) में शासन करता था। उक्त नाटक में अग्निमित्र के नाम भेजे हुए पुष्यमित्र के एक पत्र का भी उल्लेख है, जिसका आशय यह है—

"यज्ञभूमि से सेनापति पुष्यमित्र स्नेहालिंगन के पश्चात् विदिशास्थित आयुष्मान् कुमार अग्निमित्र को सूचित करता है कि मैंने राजसूय यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कर सैंकड़ों राजपुत्रों-सहित वसुमित्र की संरक्षा में एक वर्ष में लौट आने के नियम के साथ यज्ञ का निरर्गल (बंधन से मुक्त) अश्व छोड़ दिया। सिंधु‡ नदी के दक्षिणी तट पर विचरते हुए उस अश्व को यवनों* (यूनानियों) के अश्वसैन्य ने पकड़ लिया, जिससे दोनों सेनाओं में घोर संग्राम हुआ। फिर वसुमित्र ने अश्व को बलात्

‡ सिंधु अर्थात काली सिंध जो मालवे से निकलकर राजपूताने में होकर बहती है। सिंधु को सिंध में बहनेवाली सिंधु नदी न मानकर राजपूताने की सिंधु (काली सिन्ध) मानने का कारण यह है कि पतञ्जलि ने अपने जीवन-समय की भूतकाल की घटनाओं के उदाहरण देते हुए 'यवनों ने माध्यमिका को घेरा' (अरुर्णद्यवनों माध्यमिका), 'यवनों ने साकेत (अयोध्या) को घेरा' (अरुणद्यवनः साकेतं) ये दो उदाहरण दिये हैं। माध्यमिका को इस समय 'नगरी' या 'ताँबावती नगरी' कहते हैं और वह चित्तौड़ के प्रसिद्ध किले से ६–७ मील उत्तर में है। माध्यमिका से आगे बढ़ते हुए यवनों (यूनानियों) की मुठभेड़ वसुमित्र के साथ होना प्रतीत होता है। महाकवि भवभूति ने अपने 'मालती माधव' नाटक में पद्मावती (पेहोआ, ग्वालियर राज्य में) के निकट बहनेवाली पारा और सिन्धु नदियों का उल्लेख किया है। वही सिन्धु राजपूताने में बहने पर काली सिन्ध कहलाती है।

* कालिदास का प्रयोग किया हुआ 'यवन' शब्द काबुल पर राज्य करनेवाले बैक्ट्रिया (बलख) के ग्रीकों (यूनानियों) का सूचक है। पुष्यमित्र के समय में माध्यमिका आदि को घेरनेवाला यूनानी राजा मिनेंडर था, जिसके चांदी के दो सिक्के मुझे नगरी (माध्यमिका) से मिले हैं। पुष्यमित्र के अश्वमेध के घोड़े को पकड़नेवाला यवनों का अश्वसैन्य भी मिनेंडर का ही होना चाहिए।

छीननेवाले शत्रुओं को परास्त कर मेरा उत्तम अश्व छुड़ा लिया। जैसे पौत्र अंशुमत् के द्वारा वापस लाए हुए अश्व से सगर ने यज्ञ किया, वैसे मैं भी अपने पौत्र द्वारा वापस लाए हुए अश्व से यज्ञ करूँगा। अतएव तुम्हें यज्ञदर्शन के लिये वधूजन-सहित शीघ्र आना चाहिए‡।"

कालिदास के इस कथन से पुष्यमित्र का एक अश्वमेध करना पाया गया; परन्तु अब तक उसकी पुष्टि किसी अन्य पुस्तक या शिलालेख से नहीं हुई थी। अयोध्या वाले शिलालेख से निश्चित हो गया कि पुष्यमित्र ने एक ही नहीं वरन् दो अश्वमेध किए थे और कालिदास का कथन सर्वथा ठीक है।

'कौशिकीपुत्र' अयोध्या के राजा का नाम नहीं, किंतु उसकी माता के वंश के नाम या गोत्र का सूचक है। प्राचीन काल में राजाओं, ब्राह्मणों आदि में एक से अधिक विवाह करने की रीति प्रचलित थी; इसी से अमुक पुत्र कौन सी रानी या स्त्री से उत्पन्न हुआ, यह बतलाने के लिये उसके नाम के पूर्व उसकी माता के गोत्र वा कुल का परिचय दिया जाता था। भरहूत के उपर्युक्त शिलालेख में गार्गीपुत्र का नाम विश्वदेव, गोतिपुत्र का आगरजू और वात्सीपुत्र का नाम धनभूति मिलता है। इसी शैली से अयोध्यावाले शिलालेख के कौशिकीपुत्र का नाम धन'' (धनभूति या धनदेव या धनमित्र आदि) होना चाहिए।

पुष्यमित्र मौर्य वंश के अंतिम राजा बृहद्रथ का सेनापति था। उसने अपने स्वामी को सेना का निरीक्षण कराते हुए मारकर उसका राज्य छीन लिया। उसने मौर्य साम्राज्य के स्वामी होने पर भी अपना विरुद 'सेनापति' ही रखा और उसका वंश शुंग वंश कहलाया। मौर्य राजा अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर वैदिक यज्ञों का होना बंद कर दिया था, परन्तु पुष्यमित्र ने वेद-धर्मानुयायी होने के कारण ही अश्वमेध किए। तिब्बत के बौद्ध लेखक तारानाथ ने लिखा है—'पुष्यमित्र ने मध्य देश से लेकर जालंधर तक के बौद्ध मठ जला दिए और कई विद्वान् बौद्ध भिक्षुओं को मरवा डाला'। कुछ लोगों का यह भी कथन है कि उसने बौद्ध धर्म को नष्ट करने की इच्छा से पाटलीपुत्र के कुक्कुटाराम (विहार) को नष्ट कर दिया और साकल प्रदेश (पंजाब) में रहने वाले बौद्ध भिक्षुओं को मरवा डाला था। पुष्यमित्र ने धर्म-द्वेष के कारण बौद्धों के साथ ऐसे अत्याचार किए हों, यह

---

‡ मालविकाग्निमित्र, अंक ५ (ई० स० १९२२ का बम्बई का संस्करण पृ० १०४–५)।

सम्भव है A ।

'मालविकाग्नि मित्र' में विदिशा के शासक अग्निमित्र के विषय में लिखा है—"विदर्भ (वरार) के राजा यज्ञसेन के चचेरे भाई माधवसेन से उसने कहलाया कि अपनी वहिन मालविका का विवाह मेरे साथ कर दो। उस समय विदर्भ के राज्य के लिये माधवसेन और यज्ञसेन के वीच विरोध चल रहा था। माधवसेन अपने मंत्री सुमति और मालविका के साथ गुप्त रूप से विदिशा जा रहा था। उस समय में यज्ञसेन के सीमास्थित सेनापति ने माधवसेन को पकड़कर कैद कर लिया। परन्तु सुमति और मालविका वच निकले। इस घटना का समाचार पाते ही अग्निमित्र ने माधवसेन को सकुटुंब छोड़ देने के लिये यज्ञसेन से कहलाया, जिसके उत्तर में उसने कहा कि मेरा साला, जो मौर्यों का मंत्री था, आपके यहाँ कैद है। यदि आप उसको छोड़ दें, तो मैं माधवसेन को बंधनमुक्त कर दूं। इस उत्तर से क्रुद्ध होकर अग्निमित्र ने यज्ञसेन पर सेना भेज उसे जीत लिया और माधवसेन को छुड़ा लिया। फिर विदर्भ के दो विभाग कर एक यज्ञसेन को और दूसरा माधवसेन को दे वरदा नदी उनके वीच की सीमा नियत कर दी।" इसी प्रकार उक्त नाटक में वसुमित्र को अग्निमित्र का पुत्र, उस (वसुमित्र) की माता का नाम धारिणी और अग्निमित्र की दूसरी स्त्री का नाम ईरावती लिखा है। संस्कृत ग्रंथकारों में से किसी ने शुंग वंश का इतना विस्तृत विवेचन नहीं किया। पुराणों में केवल पुष्यमित्र का वृहद्रथ को मारकर उसका राज्य लेना लिखा है¶। वाणभट्ट ने अपने 'हर्षचरित' में सेना का निरीक्षण कराते हुए पुष्यमित्र का वृहद्रथ को मारना वतलाया है†। कालिदास के समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कोई उसका वि० सं० की पहली शताब्दी में, कोई पाँचवीं में, तो कोई छठी में और कोई उससे भी पीछे होना मानते हैं। पुष्यमित्र वि० सं० के पूर्व की दूसरी शताब्दी के अन्त के लगभग हुआ। यदि कालिदास वि०

¶ इत्येदे दश मौर्यास्तु ये भोक्ष्यन्ति वसुन्धराम्।
सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यः शुङ्गान् गमिष्यति ॥ २६ ॥
पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य स वृहद्रथान्।
कारयिष्यन्ति वै राज्यं षट्त्रिंशत्तु समा नृपः ॥ २७ ॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय २७२)।

A. पुष्यमित्र ने वैदिक धर्म के पुनरोत्थान का कार्य प्रारम्भ किया था और वौद्धों ने उसके विरोध में विदेशियों का साथ दिया था। अतः वौद्धों पर पुष्यमित्र का अत्याचार राजनैतिक दृष्टिकोण से हुआ प्रतीत होता है, न कि धार्मिक दृष्टिकोण या धर्म-द्वेष से। (सं० टि०)

सं० की पाँचवीं शताब्दी में अर्थात् पुष्यमित्र से अनुमान ६०० वर्ष पीछे हुआ हो, तो पुष्यमित्र, अग्निमित्र और वसुमित्र के संबंध की घटनाओं का इतनी बारीकी के साथ उसका वर्णन करना सर्वथा असंभव है। कालिदास के ऊपर उद्धृत किए हुए वर्णन को देखते हुए तो यही अनुमान होता है कि वह पुष्यमित्र से बहुत पीछे न हुआ हो और संभवतः उसका वि० सं० की पहली शताब्दी में होना मानना अनुचित न होगा।

संस्कृत न जाननेवाले पुस्तक-लेखक संस्कृत ग्रंथों की नक़ल करने में बहुधा संयुक्त व्यञ्जन के दूसरे वर्ण 'य' को 'प' सा लिख देते हैं, जिससे वास्तविक नाम के जानने में कभी-कभी भ्रम उत्पन्न हो जाता है। इसी से कोई-कोई विद्वान् पुष्पमित्र* लिखते हैं। प्राचीन ब्राह्मी लिपि में 'य' और 'प' में बड़ा अन्तर† होने से उसमें ऐसा भ्रम हो ही नहीं सकता। अयोध्या-वाले उक्त लेख में पुष्यमित्र नाम है, जिसको कोई पुष्पमित्र नहीं पढ़ सकता। अतएव उक्त लेख से यह भी निश्चय हो गया कि उक्त राजा का नाम पुष्पमित्र मानना भ्रम ही है।

ना० प्र० पत्रिका, काशी, [न० सं०]
भाग ५, सं० २, वि० सं० १९८१ ई० स० १९२४

---

४ मालवे पर वलभी-नरेशों का अधिकार

गुप्त वंश के राजा स्कंदगुप्त के बाद हूणों की चढ़ाई के समय जब गुप्त साम्राज्य के खंड-खंड हो गये तो उनके सेनापति जहाँ जिसको भूमि मिली उस पर अधिकार कर राजा बनने का उद्योग करने लगे। उसी समय गुप्तों के भटार्क नामक एक सेनापति ने काठियावाड़ पर अधिकार जमाकर उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और उसने अपनी राजधानी वलभीपुर को

एवं मौर्या दशभूपतयो भविष्यन्ति अब्दशतं सप्तत्रिंशदुत्तरंते पृथिवीं शुंगा भोक्ष्यन्ति ॥८॥ ततः पुष्यमित्र सेनापतिः स्वामिनं हत्वा राज्यं करिष्यति ॥९॥
(विष्णुपुराण, अंश ४, अध्याय २३)।

† प्रतिज्ञा दुर्बलं च बलदर्शनव्यपदेशदर्शिताशेषसैन्यः सेनानीरनार्यो मौर्यं बृहद्रथं दिपेव पुष्यमित्रः स्वामिनं।
(हर्षचरित उच्छ्वास ६)

* इंडियन् एंटिक्वेरी, जि० ५३, पृ० १२।

† भारतीय प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र १–१०।

बनाया। प्राचीन शोध से इस वलभी के नवीन राज्य का उदयकाल विक्रम की छठी शताब्दी में ठहरता है।

भटार्क के लिए प्रसिद्ध है कि वह सूर्यवंशी था, और दानपत्रों में इस वंश के लिए मैत्रक शब्द का प्रयोग हुआ है, जो सूर्य (मित्र) से ही सम्बन्ध रखता है। वलभी के ये मैत्रक राजा स्वाधीन राजा थे। भटार्क और उनके पुत्र धरसेन का विरुद सेनापति था। पश्चात् धरसेन के पुत्र द्रोणसिंह की उपाधि महाराज लिखी हुई मिलती है और वहाँ ऐसा भी लिखा मिलता है कि उसका राज्यभिषेक एक बड़े राजा ने किया। इससे ज्ञात होता है कि वलभी का स्वामी द्रोणसिंह ही स्वतंत्र राजा हुआ। इन मैत्रक राजाओं का राज्य वहाँ पर उन्नीस पीढ़ी तक बना रहा और वि० सं० ८२६ (ई० सं० ७६९) के आस-पास वहाँ के अन्तिम राजा शीलादित्य (छठे) के समय सिंध की तरफ से अरबों ने आकर उस राज्य को नष्ट किया।

भारत के अन्य राज्य वंशों की भांति वलभी के राजाओं ने भी अपना राज्य-विस्तार दूर-दूर तक किया था। उन्होंने अपने राज्य में गुप्त संवत् को ही जारी रखा जो पीछे से 'वलभी संवत्' कहलाने लगा। वहाँ देश-देशान्तर के अनेक विद्वानों को बराबर राज्याश्रय मिलता था। उक्त नगर में बौद्धों के अनेक संघाराम (विहार) थे, जिनमें छः हजार बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियाँ रहा करती थीं। भिक्षुणियों के विहार पृथक् थे। उन बौद्ध विहारों के निर्वाह के लिए वहाँ के राजाओं और उनके सामंतों ने गाँव, भूमि आदि दान दे रखे थे। जिनके कई दानपत्र मिल चुके हैं। गुणमति तथा स्थिरमति नामक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वानों ने वलभी में भी निवास किया था और ईस्वी सन् की पाँचवी शताब्दी के मध्यकाल में देवर्धि गणि क्षमाश्रवण ने वहाँ की धर्म-परिषद् में जैन-धर्म-ग्रंथों (सूत्रों) को लिपिबद्ध करवाया था। भट्टी काव्य का रचयिता महाकवि भट्टी भी वलभीपुर के राजा धरसेन का आश्रित था। वहाँ के राजाओं के धार्मिक विचार उदार थे, इसलिए वहाँ सब ही धर्मावलंबी स्वतंत्रतापूर्वक विचरते थे। वैदिक धर्मावलंबियों का तो उस समय वह मुख्य स्थान था, क्योंकि बहुधा राजा स्वयं शैवधर्म के उपासक थे। ई० स० १८९८ (वि० सं० १९५५) में मैंने काठियावाड़ की यात्रा के समय वहाँ से निकला हुआ एक ही पत्थर का ऐसा बड़ा नंदी देखा जैसा अन्यत्र कहीं नहीं पाया गया। नंदी के निकट बड़ा विशाल शिवलिङ्ग भी था। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यु एन्त्संग ने ईस्वी सन् ६४० (वि० सं० ६९७) के आस-पास इस नगर को देखा था। उसने अपनी यात्रा की पुस्तक में वहाँ की समृद्धि का बहुत कुछ वर्णन किया है, जिससे वहाँ के पूर्व कालीन वैभव आदि का अच्छा ज्ञान हो जाता है।

वलभी के इन मैत्रक राजाओं का राज्य काठिवाड़ और गुजरात के अतिरिक्त अधिकांश मालवे पर भी था। मालवे के रतलाम नगर से ई० स० १९०२ में वलभी के ग्यारहवें राजा ध्रुवसेन के समय के दो दानपत्र मिले हैं, उनमें से एक अच्छी स्थिति में है उसका आशय इस प्रकार है कि गुप्त (वलभी) संवत् ३२१A (ई० स० ६४०–६४१ वि० सं० ६९७) चैत्र वदि ३·········को महाराज ध्रुवसेन ने दशपुर (मंदसोर) प्रदेश के रहनेवाले त्रिवेदी (तिवाड़ी) ब्राह्मण वुधस्वामी के पुत्र दत्तस्वामी को तथा उनके भाई कुमारस्वामी को मालवे के चंद्रपुत्रक (चाँदोरिया) गाँव की दक्षिण सीमा पर सौ भुक्ति (बीघा) माप का क्षेत्र दान किया¶ दूसरे दानपत्र का अधिकाँश भाग बिगड़ा हुआ है तो भी उससे इतना ज्ञान हो जाता है कि उन्हीं दोनों ब्राह्मणों को गुप्त (वलभी) संवत् ३२० (ई० सं० ६३९–४० वि० सं० ६९६) में भी उसी गाँव में सौ भुक्ति (बीघा) भूमि दान की गयी थी।

¶···वा [ला] दित्यद्वितीयनामा परममाहेश्वरः श्री ध्रुवसेनः कुशली सर्व्वानेव यथा सम्वध्यमानकान्समाज्ञापयत्यस्तु वस्संविदितं यथा मया माता-पित्रोः पुण्याप्यायनायउदुम्वरगह्वरविनिर्ग्गताय नकाब्राहार (नकाग्रहार) निवा-सिदशपुरत्रैविद्यसामान्यपाराशरसगोत्रमाध्यन्दिन वाजसनेयसब्रह्मचारिब्राह्मण-वुधस्वामि पुत्र ब्राह्मण दत्त स्वामीतथागस्तिकाग्रहार निवासि [३] च्यमानचातु र्व्विग्रसामान्य पाराशरस गोत्रवाजसनेयस ब्रह्मचारि ब्राह्मण वुधस्वामपुत्र (वुधस्वामिपुत्र) ब्राह्मणकुमारस्वामिभ्याँ मालवके उच्यमान विष [ये] चंद्रपुत्र-कग्रामे दक्षिण सीम्नि भक्तीशतपमाणक्षेत्रं यस्याघ [ा] टनानि पूर्व्वतः धम्मण-हड्डिका ग्रामकङ्कटः दक्षिणतो देवकुलपाट (क) ग्रामकङ्कटः अपरतः वीरतर मण्डलि महत्तरक्षेत्रमर्य्यादा उत्तरपश्चिमकोणे निर्ग्गण्डीतडाकिका उत्तरतः वीरतरमण्डली एवमेतच्चतुराघाटनविशुद्ध भक्तीशतप्रमाणक्षेत्रं··········
उदकातिसर्ग्गेण धर्म्मदायो निसृष्ट [:]···········
सं० ३०० २० चैत्र व ३ स्वहस्तो मम।

आर्कियॉलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया; एन्युअल रिपोर्ट, ई० स० १९०२–३, पृ० २३७–३८।

A. अपने कथन की पुष्टि में डॉ० ओझा ने पाद टिप्पण में मूल लेख का अंश दिया है, वहाँ अंत में 'सं० ३०० २० चैत्र व ३'···उल्लिखित है। इससे यह दानपत्र भी गुप्त सं० ३२० (ई० सं० ६३९–४० वि० सं० ६९६) का होना चाहिये।

(संपा० टि०)

यह चन्द्रपुत्रक गाँव इस समय कहाँ है ? इसका विचार करने पर यह सहज ही में प्रकट हो जाता है कि वह भूमिदान दशपुर (मंदसोर) प्रदेश के ब्राह्मणों को दिया गया, अतएव, चंद्रपुत्रक गाँव दशपुर (मंदसोर) के निकट होना चाहिए। वे दान-पत्र रतलाम राज्य से मिले हैं, इससे अनुमान होता है कि वह गाँव रतलाम और मंदसोर के बीच में होगा। रतलाम से उत्तर पश्चिम में लगभग ४० मील दूर सैलाना के निकट चाँदोरिआ (Chandoria) नामक ग्राम है, जिसके उत्तर में उतनी ही दूर पर मंदसोर का कस्बा है, जिससे अनुमान होता है कि यह 'चाँदोरिआ' वास्तव में 'चंद्रपुत्रक' का सूचक है और जिस तरह अन्य संस्कृत शब्दों के काल पाकर रूपांतर हो गये हैं, उसी प्रकार 'चंद्रपुत्रक' गाँव के नाम में भी रूपाँतर होकर चाँदोरिया प्रसिद्ध हो गया। उक्त दानपत्रों में 'चंद्रपुत्रक' गाँव के सीमा-स्थित गाँवों 'धमणहड्डिका,' 'देवकुलपाटक' आदि का उल्लेख है जो 'धमनोद' और 'दिवेल' के सूचक हैं। वर्तमान 'चाँदोरिआ' इन दोनों गाँवों के समीप में है। इसलिए इसका वास्तविक नाम 'चंद्रपुत्रक' होने में कुछ भी संदेह नहीं हो सकता।

उपर्युक्त ताम्रपत्रों से यह तो स्पष्ट है कि मालवे में वलभी के राजाओं का राज्य था, जिससे उन्होंने मालवे के ब्राह्मणों को उसी देश में भूमि दी। यदि उनका मालवे पर अधिकार न होता तो वे मालवे में भूमि-दान कदापि नहीं कर सकते थे।

अब यहाँ पर यही प्रश्न बाकी रहता है कि मालवे में वलभी के किस राजा ने अधिकार किया और कब तक वहाँ उनका अधिकार रहा ? इसका स्पष्टीकरण चीनी यात्री ह्युएन्त्संग के यात्रा विवरण से इस प्रकार होता है, कि राजा ध्रुवसेन (वलभी तथा) मालवे के राजा शीलादित्य (प्रथम) का भतीजा था। शीलादित्य के ताम्रपत्र गुप्त (वलभी) संवत् २८६ और २६० (वि० सं० ६६२–६६६ ई० सं० ६०५–६०६) के मिले हैं। अतएव उसका उपर्युक्त संवतों के आस-पास मालवे का स्वामी होना सिद्ध होता है। संभव है कि शीलादित्य प्रथम ने ही मालवे पर अधिकार किया हो। ध्रुवसेन के समय कन्नौज के वैश्य वंशीB महाप्रतापी राजा श्री (हर्षवर्द्धन) की वलभी पर चढ़ाई हुई, परन्तु फिर उसके और ध्रुवसेन के बीच संधि हो गयी और

B. वैश्यवंशी से यहां आशय वैश्यवर्ण से लिया जा सकता है, किंतु हर्षवर्द्धन वैश्य वर्ण का नहीं था। वह क्षत्रिय वर्ण का था, और वैश्यवंशी माना जाता है, जो प्राचीन क्षत्रिय वंश है। (सं० टि०)

श्रीहर्ष ने उसे अपनी पुत्री व्याह दी। ध्रुवसेन का मालवे पर अधिकार चला आता था जिससे उसने मालवे में भूमिदान किया और वलभी-विनाश के समय ई० स० ७६९ वि० सं० ८२६ तक वलभी के राजाओं का अधिकार मालवे पर बना रहा होगाC।

'वीणा' (मा० प०), इन्दौर,

अप्रेल सन् १९३४, वि० सं० १९९१।

---

५ गौर नामक अज्ञात क्षत्रिय-वंशA

अनेक पुरातत्ववेत्ताओं और पुरातत्व-विभागों के प्रयत्न से अब तक हजारों शिलालेख प्रसिद्धि में आये हैं, किंतु गौर वंश का कोई शिलालेख नहीं मिला था, जिससे उस वंश का अस्तित्व अंधकार में ही रहा। महाराणा रायमल के समय के वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) के एकलिंगजी के मन्दिर के दक्षिण द्वार के सामने की बड़ी प्रशस्ति में रायमल और मांडू के सुलतान गयासशाह खिलजी के बीच की लड़ाई का वर्णन करते हुए लिखा है—"इस लड़ाई में एक गौर वीर प्रति दिन बहुत से

C. राजा यशोधर्म के पश्चात् जबकि उसका संस्थापित राष्ट्र विलीन होने लगा, उस गड़बड़ी में वल्लभी के नरेशों का मालवे पर अधिकार होना सम्भव है, जो कन्नौज के बैसवंशी राजा हर्षवर्द्धन के पीछे भी बहुत वर्षों तक बना रहा। हर्षवर्द्धन के पीछे उसके क्रमानुयायियों की निर्बलता का अवसर पाकर रघुवंशी प्रतिहार उत्थान करने लगे; उस समय के आस-पास मालवे से वल्लभी के राजाओं का अधिकार उठ गया और उनका राज्य भी समाप्त हो गया। यह अधिकतया सम्भव है कि हर्षकालीन युग में वल्लभी के राजा उस (हर्षवर्द्धन) के अधीनस्थ की भांति ही मालवे पर शासन करते हों। (सम्पा० टि०)

A. यह निबन्ध भी डा० ओझा द्वारा उनके 'राजपूताना का इतिहास' जि० २ और 'उदयपुर राज्य का इतिहास' जि० २ के परिशिष्ट संख्या २ में प्रकाशित हो चुका है।

(संपा० टि०)

शकों (मुसलमानों) को मारता था, इसलिये किले के उस शृंग (बुर्ज) का नाम गौरशृंग (गौरबुर्ज रखा गया) । फिर रायमल ने उसी शृंग पर चार और गौर योद्धाओं को नियत किया । बड़ी ख्याति पाया हुआ वह (पहला) गौरवीर मुसलमानों के रुधिरस्पर्श से अपने को अपवित्र जानकर उसकी शुद्धि के लिये सुरसरित् (स्वर्गगंगा) के जल में स्नान करने की इच्छा से स्वर्ग को सिधारा[1] ", अर्थात् मारा गया । इस अवतरण से यह तो पाया जाता है कि इसमें 'गौर' शब्द वन्श-सूचक है, न कि व्यक्ति-सूचक ।

काव्य की चार रीतियों में एक गौड़ी, मद्यों में गौड़ी (गुड़ से बना हुआ मद्य), गौड़वध (काव्य), गौड़पाद (आचार्य), गौड़ (देश), आदि शब्दों से संस्कृत के विद्वान् भली भाँति परिचित थे । ऐसी दशा में प्रशस्तिकार गौड़ के स्थान में गौर शब्द का प्रयोग करें, यह सम्भव नहीं । गौर क्षत्रिय वन्श का कोई लेख न मिलने और उस वन्श का नाम अज्ञात होने के कारण महाराणा रायमल का वृत्तान्त लिखते समय मुझे लाचार होकर गौर क्षत्रियों को गौड़ क्षत्रिय अनुमान करना पड़ा, जो अब मुझे पलटना पड़ता है ।

ई० स० १९३० (वि० सं० १९८७) में मुझे एक मित्र द्वारा यह सूचना मिली कि उदयपुर राज्य के छोटी सादड़ी गांव से दो मील दूर एक पहाड़ी पर के भमरमाता के मन्दिर में एक शिलालेख है, जो किसी से पढ़ा नहीं जाता । सादड़ी का जिला पहले दक्षिणी ब्राह्मणों की जागीर में

---

1. तन्वानं तुमुलं महासिहतिभिः श्रीचित्रकूटे गलद्-
गर्वं ग्यासशकेश्वरं व्यरचयत् श्रीराजमल्लो नृपः ।।६८।।
कश्चिद्गौरो वीरवर्यः शकौघं युद्धेमुष्मिन प्रत्यहं संजहार ।
तस्मादेतन्नाम कामं बभार प्राकारांशश्चित्रकूटैकशृंगम् ।।६९।।
योधानमुत्र चतुरश्चतुरो महोच्चान्
गौराभिधान समधिशृंगमसावचैषीत् ।
श्रीराजमल्लनृपतिः प्रतिमल्लगर्व-
सर्वस्वसंहरणचंडभुजानिवाद्रौ ।।७०।।
मन्ये श्रीचित्रकूटाचलशिखरशिरोध्यासमासाद्य सद्यो
यद्योधो गोरसंज्ञो सुविदितमहिमा प्रापदुच्चैर्नभस्तात् ।
प्रध्वस्तानेकजाग्रच्छकविगळदसृक्पूरसंपर्कदोपं
निःशेषीकर्तुमिच्छुर्व्रजति सुरसरिद्वारिणि स्नातुकामः ।।७१।।
—भावनगर इंस्क्रिपशंस, पृष्ठ १२१ ।

रहा था, इसलिये उस लेख का मोड़ी लिपि में होना अनुमान किया, परन्तु अनुसंधान करने पर यह उत्तर मिला कि उसकी लिपि मोड़ी नहीं, किंतु उड़िया है और उसकी एक पंक्ति सीधी तो दूसरी फ़ारसी के समान उलटी अर्थात् दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी हुई है। इस कल्पित बात पर मुझे विशेष आश्चर्य हुआ, क्योंकि आर्यलिपि दाहिनी ओर से बाईं ओर को कभी नहीं लिखी गई। इस वास्ते मैंने स्वयं वहाँ जाकर उस लेख को पढ़ा तो ज्ञात हुआ कि वह लेख उस समय की ब्राह्मी लिपि का है और भाषा उसकी संस्कृत है। वह गौरवंश के क्षत्रिय राजाओं का है और एक काली शिला पर खुदा हुआ है। उसमें १७ पंक्तियाँ हैं, जिनमें १६ पंक्तियाँ श्लोक-बद्ध हैं और अन्तिम पंक्ति गद्य की है। भमरमाता का मन्दिर बहुत प्राचीन होने से उसका कई बार जीर्णोद्धार हुआ है और निज मंदिर गर्भगृह का नीचे का थोड़ा सा हिस्सा ही प्राचीन रूप में बचने पाया है। मन्दिर के टूट जाने पर यह शिलालेख अरक्षित दशा में पड़ा रहा और लोगों ने उस पर मसाला पीसा, जिससे उसका लगभग एक चौथाई अंश अस्पष्ट हो गया है, तो भी जो अंश बचने पाया है, वह भी बड़े महत्व का है। पीछे से उक्त मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय वह शिलालेख एक ताक में लगाया गया, जहाँ मेरे देखने में आया। बचे हुए अंश का आशय इस प्रकार है—

प्रारम्भ के दो श्लोक देवी के वर्णन के हैं। आगे गौर वन्श के क्षत्रिय राजाओं का वन्शक्रम दिया हुआ है। उक्त वन्श में राजा धान्य-सोम अभिषिक्त हुआ। उसके पीछे राज्यवर्द्धन हुआ। उसका पुत्र राष्ट्र हुआ, जिसने शत्रुओं के राष्ट्रों को मथ डाला। उसका पुत्र यशगुप्तB हुआ।

B. यशगुप्त के अन्यत्र कोई शिलालेख नहीं मिले हैं। यही पहला शिलालेख है, जो मेवाड़ के छोटी सादड़ी नामक कस्बे के भमरमाता नामक देवी के मन्दिर से मिला है। इससे गौर नामक अज्ञात क्षत्रिय वन्श का पता चलता है, जो डॉ० ओझा की खोज का फल हैं। छोटी सादड़ी का कस्बा मन्दसौर के निकट है। मन्दसौर से राजा यशोधर्म के शिलालेख मिले हैं। यशोधर्म के मन्दसौर के अतिरिक्त अन्यत्र कोई लेख नहीं मिले, जिससे अब तक इतिहास के विद्यार्थी इस बात को जानने से वंचित ही हैं कि वह किस वंश का था। छोटी सादड़ी के शिलालेख की लिपि ब्राह्मी है। मन्दसौर तथा छोटी सादड़ी के शिलालेखों की लिपि आदि में सादृश्यता है अथवा नहीं, यह जानकर इस बात का निर्णय करने की पूरी आवश्यकता है कि छोटी सादड़ी के शिलालेख में वर्णित यशगुप्त

वह बड़ा प्रतापी, दानी, यज्ञ-कर्ता और शत्रुओं का विजेता था। उस गौर महाराज ने वि० सं० ५४७ माघ सुदी १० (ई० स० ४९१ जनवरी) को पहाड़ पर अपने माता-पिता के पुण्य के निमित्त देवी का मन्दिर बनवाया† । इस लेख से निश्चित है कि गौर क्षत्रिय वन्श वि० सं० की

† तस्याः प्रणम्य प्रकरोम्यहमेव..जस्रम्
[कीर्ति शु] भ्रां गुणगणौघम [यीं नृपाणाम्] [३]
········कुलो [द्भू] व व [ङ्श] गौराः
क्षात्रे प [दे] सतत दीक्षित..शौंडाः ।
.. ..
..धान्यसोम इति क्षत्रगणस्य मध्ये [४]
.. ..
.. .. ..किल राज्यजितप्रतापो
यो राज्यवर्द्धण (न) गुणैः कृतनामधेयः
.. .. [५]
.. ..
जातः सुतो करिकरायतदीर्घबाहुः ।
नाम्ना स राष्ट्र इति प्रोद्धतपुन्य [ण्य] कीर्तिः [६]
सोयम् यशोभरणभूषितसर्वगात्रः
प्रोत्फुल्लपद्मः..तायतचारुनेत्रः ।
दक्षो दयालुरिह शासितशत्रुपक्षः
क्ष्मां शासति..यशगुप्तं इति क्षितीन्दुः [८]
तेनेयं भूतधात्री ऋतुभिरिहचिता [पूर्व] श्रृङ्गेव भाति
प्रासादैरद्रितुङ्गैः शशिकरवपुषैः स्थापितैः भूपिताद्य
नानादानेन्दुशुभ्रैर्द्विजवरभवनैर्येनलक्ष्मीर्व्विभक्ता
......स्थितयशवपुषा श्रीमहाराज गौरः [११]
यातेपु पंचसु शतेष्वथवत्सराणाम्
द्वेविंशतीसमधिकेपु ससप्तकेषु

और मन्दसौर के लेखों के राजा यशोधर्म में क्या सम्बन्ध था, क्योंकि दोनों के बीच समय का अधिक अन्तर नहीं है। उपरोक्त छोटी सादड़ी का शिलालेख प्रकाश में नहीं आया है, यह बड़े खेद की बात है। पुरातत्वनुसंधान के प्रेमियों को इस पर ध्यान देना चाहिये।

(संपा० टि०)

छठी शताब्दी के मध्य में मेवाड़ में विद्यमान था और छोटी सादड़ी के आस-पास के प्रदेश पर उसके वंश वालों का राज्य था। महाराणा रायमल के समय भी गौरवंशी क्षत्रिय उक्त महाराणा की सेवा में थे और बड़ी वीरता से लड़े थे, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है। वि० सं० की १४ वीं शताब्दी में भी गौरवंशीC·राजपूत मेवाड़ के राजाओं की सेना में थे। चित्तौड़ के किले पर पद्मिनी के महलों से कुछ दूर दक्षिण पूर्व में दो गुंबजदार मकान हैं, जिनको लोग गोरा बादल के महल कहते हैं। अलाउद्दीन खिलजी के साथ की गई चित्तौड़ के महारावल रतनसिंह की लड़ाई में गोरा बादल बड़ी वीरता से लड़ते हुए मारे गए, ऐसा पिछले ग्रंथों में लिखा मिलता है। हि० स० ९४७ (वि० सं० १५९७ = ई० स० १५४०) में मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत नाम की कथा बनाई तथा वि० सं० १६८० (ई० स० १६२३) में कवि जटमल ने गोरा बादल की कथा रची। इन दोनों पुस्तकों में गोरा और बादल को दो भिन्न व्यक्ति माना है, परंतु ये दोनों पुस्तकें गोरा बादल की मृत्यु से क्रमशः २३७ और ३२० वर्ष पीछे बनी है। इतने दीर्घकाल में नामों में भ्रम होना संभव है। गोरा और बादल दो पुरुष नहीं; किंतु एक ही पुरुष

माघस्य शुक्लदिवसे त्वगमत्प्रतिष्ठाम्
प्रोत्फुल्लकुन्दधवलोज्वलिते दशम्याम् [१२]

—मूललेख की छाप से

C. उपर्युक्त एकलिङ्गजी के मंदिर की प्रशस्ति से स्पष्ट है कि मांडू (मालवा) के सुलतान गयासुद्दीन की चित्तौड़ पर चढ़ाई के समय मेवाड़ के महाराणाओं की सेवा में गौरवंशी क्षत्रिय विद्यमान थे। एकलिङ्गजी के शिवालय की प्रशस्ति, छोटी सादड़ी की प्रशस्ति से लगभग एक सहस्त्र वर्ष पीछे की है। अर्थात् छोटी सादड़ी की प्रशस्ति से एक हजार वर्ष पीछे तक गौरवंश का अस्तित्व था और अब तो गौरवंश का पता ही नहीं चलता। संभव है कि गौरवंशियों को जन साधारण में गौड़ कहने लग गये हों, अथवा वंशोत्पत्ति नहीं जानने से वे गौड़ों में शामिल होकर अपने को गौड़ कहने लग गये हों। उदयपुर में पहले 'गौरवा' नामक एक क्षत्रिय वंश था, जो कोतवाल आदि उच्चपदों पर काम करता था, परन्तु अब उसका वहाँ अस्तित्व ही नहीं है। नाथद्वारा-कांकरोली में अब भी 'गौरवा' नामक एक जाति है, जो अपने को क्षत्रिय मानती हैं और वहाँ के वैष्णव मंदिरों की सेवा करते हैं। अनुमान होता है कि संभवतः उक्त प्राचीन गौरवंश के अवशेष चिन्ह स्वरूप यह 'गौरवा' जाति हो।

(संपा० टि०)

का नाम होना संभव है,D जैसा कि राठौर दुर्गादास, सीसोदिया पत्ता आदि, जिसका पहला अंश (गोरा) वंशसूचक और दूसरा अंश (वादल) व्यक्तिगत नाम है। गोरा वादल का वास्तविक अभिप्राय गौर (गोरा) वंश के वादल नामक पुरुष से हो सकता है। वंशसूचक गौर नाम अज्ञात होने के कारण पिछले लेखकों ने भ्रम से ये दो नाम अलग-अलग मान लिए होंगे।

बापा रावल[1] का सोने का सिक्का।

हिन्दुस्तान में प्राचीन काल से स्वतंत्र और बड़े राजा अपने नाम के

---

1 ई० स० की बारहवीं शताब्दी के मध्य के आस-पास तक तो मेवाड़ के राजाओं का खिताव (विरुद) 'राजा' था ऐसा उनके शिला-

---

D डॉ० ओझा का जायसी वर्णित 'पद्मावत' के गोरा-वादल को दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति नहीं मान गौरवंशी वादल होने का कथन एक सुन्दर कल्पना है, किन्तु जब तक इसका दूसरा कोई सुदृढ़ प्रमाण नहीं मिले, तब तक उनका कथन साक्षर वर्ग द्वारा स्वीकार किया जाना कठिन है, क्योंकि साधन के अभाव में परम्परा को माना जाता है।

'पद्मावत' में जायसी ने जो वर्णन किया है, वह रूपक मानलें तो भी उसमें ऐतिहासिक अंश है। वह चित्तौड़ का राजा रत्नसेन को वतलाता है, जो इतिहास से विरूद्ध नहीं जान पड़ता और सुन्दरता युक्त उसके राणी होना भी फ़ारसी तवारीखों में मिलता है। रत्नसिंह, समरसिंह का पुत्र था। समरसिंह का अंतिम शिलालेख वि० सं० १३५८ माघसुदी १० (ई० स० १३०२) का मिला है और रत्नसिंह का वि० सं० १३५९ माघसुदी ५ (ई० स० १३०३) बुधवार का शिलालेख दरीवा गांव (मेवाड़) के देवी के मंदिर के स्तम्भ पर खुदा है, जिससे पाया जाता है कि रत्न-सिंह एक वर्ष से अधिक भी राज्य नहीं करने पाया कि वि० सं० १३५९ (ई० स० १३०३) में मेवाड़ राज्य पर दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिल्जी की चढ़ाई हुई, जिसमें उसकी राणी पद्‌मिनी ने सैंकड़ों महिलाओं के साथ जौहर की अग्नि में प्रवेश कर सतीत्व रक्षा की और वह मुसलमान सेना से युद्ध करता हुआ मारा गया। ऐसी अवस्था में जायसी का वर्णन ज्यौं का त्यौं इतिहास में ग्रहण नहीं किया जा सकता, एवं रत्नसिंह के सिंहल जाकर विवाह करने का कथन रूपक मात्र ही है।

(संपा० टि०)

सोने, चांदी और तांबे के सिक्के[2] चलाते थे। उनके हजारों सिक्के इस देश के भिन्न-भिन्न विभागों से मिल चुके हैं और प्रतिवर्ष अनेक नए मिलते जाते हैं। ये सिक्के विशेष कर प्राचीन नगरों और गाँवों में बहुधा जमीन में गड़े हुए मिलते हैं। कभी तो उनसे भरे हुए पात्र ही मिल जाते हैं और कभी जब चौमासे में अधिक वृष्टि के कारण जमीन कट जाती है या उसपर की मिट्टी बह जाती है तब वे इधर बिखरे हुए मिलते हैं। कभी वे महाजनों आदि की लक्ष्मी-पूजन के रुपयों की थैलियों में मिलते हैं और कभी नाके (कुंडे) लगा कर गले के जेवर के रूप में रखे हुए भी पाए जाते हैं और आवश्यकता पड़ने पर, धातु के मोल से, सर्राफों आदि के हाथ वेंच दिए जाते हैं। जमीन से निकले हुए सोने और चाँदी के कितने ही सिक्के तो महाजनों या सर्राफों तक भी नहीं पहुँचने पाते, सुनारों के यहाँ जेवर बनवाने में गला दिए जाते हैं। तांबे के सिक्के ही विशेषतः महाजनों और सर्राफों के यहाँ पहुँचते हैं। वे लोग उनको जमा किया करते हैं और जब बहुत से एकट्ठे हो जाते हैं, तब वे उनको ताँबे के भाव से ठठेरे आदि वर्तन बनाने वालों को बेच देते हैं। इस तरह हमारे प्राचीन इतिहास के ज्ञान के ये अमूल्य साधन लोगों के अज्ञान के कारण अधिकतर तो नष्ट ही हो जाते हैं और थोड़े से ही प्राचीन सिक्कों के संग्रह करनेवालों के पास पहुँच कर सुरक्षित होते हैं। तिस पर भी उनके कितने ही संग्रह यूरोप और अमेरिका में तथा यहाँ के भिन्न-भिन्न अजायबघरों और कई एक श्रीमानों और विद्वानों के यहाँ बन चुके हैं, जो यहाँ के प्राचीन इतिहास के उद्धार के लिये बड़े महत्त्व के हैं।

लेख से पाया जाता है। उसके पीछे उन्होंने 'रावल' (राजकुल) खिताब धारण किया। पिछले इतिहास-लेखकों को उनके पुराने खिताब का ज्ञान न होने के कारण उन्होंने प्रारम्भ से ही उनका खिताब 'रावल' होना मान लिया और प्राचीन काल के वास्तविक इतिहास के अभाव में उसीकी लोगों में प्रसिद्धि हो गई। इस समय बापा आदि पहले के राजा मेवाड़ म बापा रावल, खुंमाण रावल, आलु (अल्लट) रावल, आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। इसीसे हमने बापा को 'बापा रावल' ही लिखा है।

2. संस्कृत, प्राकृत आदि की पुस्तकों एवं शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों में पहले के सोने के सिक्कों के नाम सुवर्ण, निष्क, शतमान, पल, दीनार, गद्याणक, आदि; चांदी के सिक्कों के पुराण, धरण, पाद, पडिक (फदैया या फदिया), द्रम्म, रूपक, टंक आदि और ताँबे के सिक्कों के नाम कार्षापण (काहापण), पण, काकिणी, आदि मिलते हैं।

राजपूताना अब तक हिंदुस्तान के दूसरे विभागों की अपेक्षा विद्या-विषय में बहुत ही पीछे है जिससे यहाँ के राजा-महाराजाओं, सर्दारों और धनवानों में प्राचीन राजाओं की कीर्ति को चिरस्थायी करनेवाले इन सिक्कों का संग्रह करने की जागृति बहुत ही कम हुई है। इसीसे इस विस्तीर्ण देश से मिलने वाले बहुत कम प्राचीन सिक्के अब तक प्रसिद्धि में आए हैं।

राजपूताने से मिलनेवाले प्राचीन सिक्कों को देखने से पाया जाता है कि अधिक प्राचीन काल में यहां पर चांदी और तांबे के जो सिक्के चलते थे वे हिंदुस्तान के दूसरे प्रदेशों के सिक्कों की नाईं प्रारम्भ में चौकोर और पीछे से गोल बनते थे। वे पुराण और कार्षापण कहलाते थे। उनपर कोई लेख नहीं होता था; किंतु मनुष्य, पशु पक्षी, सूर्य-चन्द्र आदि, ग्रह-नक्षत्र, धनुष-बाण आदि शस्त्र, स्तूप, बोधिद्रुम, स्वस्तिक, वज्र, पर्वत (मेरु), नदी (गंगा) आदि धर्म-संबंधी संकेत और अनेक अन्य चिह्न अंकित होते थे जिसका वास्तविक आशय अब तक ज्ञात नहीं हुआ। उन सिक्कों की एक ओर केवल एक या दो ही चिह्न और दूसरी तरफ़ अधिक चिह्न अंकित मिलते है। ऐसे चिह्नोंवाले सिक्के चाँदी और ताँबे के असंख्य मिले हैं; परन्तु सोने का अब तक एक भी नहीं मिला, तो भी पहले इस प्रकार के सोने के सिक्के भी होते थे, ऐसा बौद्ध-साहित्य से पाया जाता है। बौद्ध जातकों में एक कथा ऐसी मिलती है कि श्रावस्ती नगरी के रहनेवाले सेठ अनाथपिंडद ने बौद्धों के लिये एक विहार बनाने के लिये राजकुमार जेत से भूमि खरीदना चाहा तो जेत ने कहा कि जितनी जमीन तुम लेना चाहो उसको सोने[3] के सिक्कों से ढक दो तो वह मिल सकती है। अनाथपिंडद ने १८ करोड़ सोने के सिक्कों से ढक कर वह जमीन खरीद ली। इस कथा का चित्र बुद्ध-गया और नागौद राज्य (मध्य भारत) के भरहुत के स्तूप की वेष्टनी में शिला पर अंकित है। दोनों में उक्त सेठ के सेवक लोग जमीन पर चौखूंटे सिक्के बिछाते हुए बतलाए गए हैं। बुद्ध-गया की शिला पर तो इस विषय का लेख भी खुदा है। ये दोनों शिलाएँ[4] ईसवी सन् पूर्व की दूसरी शताब्दी के आस-पास की खुदी हुई हैं।

राजपूताने में सब से पुराने लेखवाले सिक्के मध्यमिका नामक प्राचीन नगर में ताँबे के सिक्के हैं जिनपर 'मझमिकाय शिविजनपदस' (शिवि जनपद

---

3. राखालदास बैनर्जी, 'भारतेर प्राचीन मुद्रा' (बंगला), पृ० ७।

4. जनरल कनिंगहाम, 'कॉइंस ऑफ़ एन्श्यंट इंडिआ,' प्रारंभ का चित्रपट।

= देश) की मध्यमिका (नगरी) का (सिक्का)] लेख[5] है । ये सिक्के ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के आस-पास के हों, ऐसा उनके लेखों की लिपि से अनुमान होता है । मध्यमिका का स्थान मेवाड़ (उदयपुर) राज्य में चित्तौड़ के क़िले से क़रीब ७ मील उत्तर में है। उसका वर्तमान नाम नगरी है और वह बेदला के चौहान सर्दार की जागीर में है । ये सिक्के यहाँ के सब से पुराने सिक्के हैं । उसी समय के आस-पास के मालव जाति के ताँबे के सिक्के जयपुर राज्य में 'नगर' (कर्कोटक नगर) से मिले हैं, जिनपर, 'मालवानां जय' [= मालवों की जय] लेख[6] है । ये सिक्के मालवगण अर्थात् मालव जाति के विजय के स्मारक हैं । इनसे पीछे के जो सिक्के राजपूताने में मिले हैं वे ग्रीक (यूनानी), शक, पार्थिअन् (पारद), कुशन और क्षत्रप वंशी राजाओं के हैं । ग्रीक (यूनानी) और क्षत्रपों के सिक्के तो यहाँ पर चाँदी और ताँबे के ही मिले हैं, बाकी के तीन वंशों के सोने के भी कभी-कभी मिल जाते हैं । क्षत्रपों के चाँदी के सिक्के हजारों की संख्या में मिल चुके हैं, ताँबे के बहुत कम । इनके पीछे के सिक्के गुप्तवंशी राजाओं के हैं जिनमें विशेष कर सोने के मिलते हैं, चाँदी के कम । गुप्तवंशियों के २० से अधिक सोने के सिक्के मैंने अपने मित्रों के लिये अजमेर में ही खरीदे । गुप्तों के पीछे हूणों के चाँदी और ताँबे के सिक्के मिलते हैं परन्तु बहुत ही कम । हूणों के सिक्के ईरान के ससानवंशी राजाओं के सिक्कों की शैली के हैं और उनकी नकलें ई० स० की छठी से ११वीं शताब्दी के आस-पास तक इस देश में बनती रहीं । समय के साथ उनका आकार घटता गया और पतलेपन के स्थान में मोटाई आती गई । कारीगरी में भी क्रमशः भद्दापन आता गया, जिससे उनके सामने की तरफ की राजा की सिर से छाती तक की मूर्ति यहाँ तक बिगड़ती गई कि लोग पीछे से पहिचान भी न सके कि वह किसकी सूचक है । इससे वे उसको गधे का खुर ठहरा कर उनको 'गधिये सिक्के' कहने लगे और अब तक उनका वही नाम चला आता है । परन्तु जब समय-समय के सिक्के पास-पास रख कर मिलान करते हैं, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भ में उनपर राजा का अर्ध शरीर ही था, परन्तु ठप्पा खोदनेवालों की कारीगरी में क्रमशः भद्दापन आने के कारण वे उसको पहले का सा सुन्दर न बना सके और इसीसे लोगों ने उसको गधे का खुर मान लिया ।

---

5. कनिंगहाम, आर्किऑलाजिकल सर्वे—रिपोर्ट, जि० ६, पृ० २०३ ।

6. वही, पृ० १८१ । कर्कोटक नगर अब जयपुर राज्य के उणियारा ग्राम से १५ मील दक्षिण-पश्चिम में पुराना खेड़ा नाम से प्रसिद्ध है ।

ई० स० की छठी शताब्दी से अजमेर पर मुसलमानों का अधिकार होने (ई० स० ११९२) तक के ६०० वर्षों में राजपूताने पर राज्य करनेवाले हिन्दू राजवंशों में से केवल तीन ही वंशों अर्थात् मेवाड़ के गुहिल (सिसोदिया), अजमेर के चौहान, और कन्नौज के प्रतिहारों (पड़िहारों) के चाँदी और ताँबे के सिक्के कभी-कभी मिल जाते हैं। प्रतिहार वंश के तो अब तक केवल भोजदेव (आदिवराह) और महीपाल के ही सिक्के मिले हैं। उक्त ६०० वर्षों तक राजपूताने में राज करनेवाले राजाओं में से किसी का भी सोने का सिक्का पहले नहीं मिला था। बापा रावल का यह सिक्का उक्त काल का पहला ही सोने का सिक्का है और अब तक एक ही मिला हैA। बापा रावल मेवाड़ के गुहिल (सीसोदिया) वंशी राजाओं का पूर्वज था और उसकी वीरता आदि की अनेक कथाएँ राजपूताने में प्रसिद्ध हैं।

यह सिक्का तीन वर्ष पहले अजमेर के एक सर्राफ के यहाँ मिला उससे मालूम हुआ कि भीलवाड़े (मेवाड़) की तरफ का एक महाजन कुछ सोने और चाँदी के पुराने जेवरों के साथ यह सिक्का भी बेंच गया था। इसके साथ दो मोहरें और भी थीं, एक बादशाह अकबर की और दूसरी औरंगजेब-आलमगीर की। ये तीनों सिक्के मैंने सिरोही के महाराजाधिराज महाराव सर केसरीसिंह जी के लिये खरीद लिए, जो उनके प्राचीन सिक्कों के बड़े संग्रह में सुरक्षित हैं। जब यह सिक्का सर्राफ के पास आया, तब उसमें सोने का नाका (कुंडा) लगा हुआ था जिसको उसने उखड़वा डाला और झालन (टांके) को घिसवा दिया, परन्तु अब तक उसका कुछ अंश इस पर पाया

A. इसके पूर्व भी बापा रावल का एक स्वर्ण-सिक्का मिला है. जो अफ़ीम के एक अंग्रेज अधिकारी को मिला था, जिसने वह अपने एक अंग्रेज् मित्र को दिया और उसके द्वारा वह प्राचीन शोधक वर्ग के पास पहुँचा। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के जर्नलों में उसके विषय मे चर्चा हुई, परन्तु कोई भी विद्वान् उक्त सिक्के में अंकित लिपि को ठीक-ठीक पढ़कर अपना मत स्थिर नहीं कर सके। हिंदू यूनिवर्सिटी बनारस के ख्यातनामा प्रोफेसर डॉ० ए० एस० आल्टेकर ने उक्त सिक्के के फोटो आदि को पढ़कर यह सिद्ध किया है कि वह डॉ० ओझा के वर्णित स्वर्ण सिक्के के समान चिह्नयुक्त है और उस पर अंकित लेख 'श्री वोप्प' है, जो बापा रावल का सूचक है (सातवीं ओरियंटल कॉन्फरेंस बड़ोदा की रिपोर्ट ई० स० १९३३) ।— (सं० टि०)

जाता है। दाहिनी ओर का इसका थोड़ा सा अंश दोनों तरफ से घिस गया है जिससे वहाँ के चिह्न कुछ अस्पष्ट हो गए हैं।

इस सिक्के का तौल इस समय ११५ ग्रेन (६५⅘ रत्ती) है। दोनों ओर के चिह्न आदि नीचे लिखे अनुसार है, जिनका विवेचन आगे किया जायगा—

सामने की तरफ—(१) ऊपर के हिस्से से लगाकर बाईं ओर, अर्थात् लगभग आधे सिक्के के किनारे पर, बिंदियों की एक वर्तुलाकर पंक्ति है जिसको माला कहते हैं। (२) ऊपर के हिस्से में माला के नीचे ई० स० की आठवीं शताब्दी की लिपि में 'श्रीवोप्प' लेख है जो जिस राजा (बापा) का यह सिक्का है उसका सूचक है। (३) उक्त लेख के नीचे बाईं ओर माला के पास खड़ा त्रिशूल है। (४) त्रिशूल की दाहिनी ओर दो प्रस्तरवाली वेदी पर शिवलिंग बना है। (५) शिवलिंग की दाहिनी ओर बैठा हुआ नंदि (बैल) है जिस का मुख शिवलिंग की तरफ है और जिसकी पूंछ और उसके पास का कुछ अंश, सिक्के का उधर का हिस्सा घिस जाने के कारण, नहीं रहा है। (६) शिवलिंग और बैल के नीचे पेट के बल लेटा हुआ एक मनुष्य है जिसका जाँघों तक का ही हिस्सा सिक्के पर आया है। उसके दोनों कान आज कल के कनफटे जोगियों की तरह बीच में से बहुत छिदे हुए होने के कारण मनुष्य के कानों से बड़े दिखाई देते हैं और मुख भी कुछ अधिक लम्बा प्रतीत होता है।

पीछे की तरफ—(१) दाहिनी ओर के थोड़े से किनारे को छोड़ कर अनुमान सिक्के के ¾ किनारे के पास बिंदियों की माला है। (२) ऊपर के हिस्से में माला के नीचे एक पंक्ति में तीन चिह्न बने हैं जिनमें से बाँई ओर से पहला सिमटा हुआ चमर प्रतीत होता है। (३) दूसरा चिह्न है। (४) तीसरे चिह्न का ऊपर का भाग, सिक्के का वह अंश घिस जाने के कारण, स्पष्ट नहीं है, परन्तु उसका नीचे का अंश नीचेवाली गौ के सींग के पास नीचे से कुछ मुड़ी हुई खड़ी लकीर के रूप में दिखलाई देता है। यह छत्र की डंडी हो सकती है और ऊपर का अस्पष्ट भाग भी छत्र-सा दीख पड़ता है। (५) उक्त तीनों चिह्नों के नीचे दाहिनी ओर को मुख किए गौ खड़ी है जिसके मुख का कुछ अंश सिक्के के घिस जाने से अस्पष्ट हो गया है। (६) गौ के पैरों के पास बाँई ओर मुख किए गौ का दूध पीता बछड़ा है, जिसके गले में घंटी लटक रही है, वह पूंछ कुछ ऊँची किए हुए है और उसका स्कंध (ककुद) भी दीखता है। (७) बछड़े

की पूंछ से कुछ ऊपर और गौ के मुख के नीचे एक पात्र बना हुआ है जिसकी दाहिनी ओर का अंश घिस गया है। पात्र की बाईं ओर की गोलाई और उसके नीचे सहारे की पेंदी स्पष्ट है। (८) गौ और बछड़े के नीचे दो आड़ी लकीरें बनी हैं जिसके बीच में थोड़ा-सा अन्तर है। (९) उक्त लकीरों की दाहिनी ओर तिरछी मछली है, जिस का पिछला हिस्सा उक्त लकीरों से जा लगा है। (१०) उक्त लकीरों के नीचे और बिंदियों की बिंदु-माला के ऊपर चार बिंदियो से बना हुआ फूल-सा दिखाई देता है।

सामने की तरफ का विवेचन।

(१) बिंदियों से बनी हुई माला--प्राचीन काल में बहुधा गोल सिक्के के किनारों के पास बिंदियों से बनी हुई परिधि होती है जिसको राजपूताने के लोग माला कहते हैं। जब सिक्का ठप्पे के समान ही बड़ा होता है तब पूरी माला सिक्के पर आ जाती है परन्तु जब छोटा होता है, तब माला का कुछ अंश ही उसपर आता है। सिक्कों पर माला बनाने की रीति प्राचीन काल से चली आती है। हिंदुस्तान के ग्रीक (यूनानी), कुशन (तुर्क), गुप्त, यौधेय, कलचुरि, चौहान आदि कई राजवंशों के एवं ससान तथा गधिये सिक्कों पर तथा नेपाल, आसाम और दक्षिण से मिलने वाले कई सिक्कों पर यह माला[7] पाई जाती है। केवल पुराने सिक्कों पर ही नहीं, किंतु हिंदुस्तान के मुसलमान सुलतानों और बादशाहों के कई सिक्कों पर भी यह होती है[8] राजपूताने के राज्यों के कई सिक्कों पर[9] तो यह बहुधा अब तक बनती थी।

(२) सिक्के के लेख में राजा का नाम श्रीवोप्प है। यह वप्प (वप्प = बापा) के नाम के पुराने मिलनेवाले अनेक रूपों में से एक है। संस्कृत के शिलालेखों तथा पुस्तकों में इस राजा का नाम कई तरह से लिखा मिलता

---

7. वी० ए० स्मिथ, केटेलॉग ऑफ दी कॉइंस इन दी इंडिअन् म्यूजिअम, (कलकत्ता), प्लेट १, ३, ९, ११–१७, २०, २१, २४, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१।

8. एच० एन० राइट, केटेलॉग ऑफ दी कॉइंस इन दी इंडिअन् म्यूजिअम (कलकत्ता), जिल्द २, प्लेट, ७, ९, जिल्द ३, प्लेट १, २, ४, ६ ७—१३, १५, १७—२०, २२।

9. वेब, दी करंसीज ऑफ राजपूताना, प्लेट १–१२।

है, जैसा कि 'वप्प', 'वप्पक'[10], 'वप्प' 'वष्पक[11]' 'वाप्प'[12]' 'वप्पाक[13]' 'वाप्प[14]' 'वापा[15],' आदि। 'व' के स्थान में 'व' का प्रयोग राजपूताने, आदि के शिलालेखों में वहुधा मिलता है और यहाँ के लोगों में वंगालियों की नाई 'अ' के स्थान में अर्ध 'ओकार' वोलने का प्रचार भी है, जैसे कि

---

10 अस्मिन्नभूद्गुहिलगोत्रनरेन्द्रचन्द्र:
श्रीवप्पकक्षितिपति: क्षितिपीठरत्नम् ।

मेवाड़ के राजा नरवाहन के समय की वि० सं० १०२८ की प्रशस्ति, वंव० एशि० सोसा० जर्नल, जि० २२, पृ० १६६ ।

गुहिलांगजवंशज: पुरा क्षितिपालोत्र वभूव वप्पक: ।
प्रथम: परिपंथिपार्थिवध्वजिनीध्वंसनलालसाशय: ।।३।।

रावल समरसिंह के समय का वि० सं० १३३० का चीरवा गाँव का शिलालेख ।

11 हारीत: शिवसंगमंगविगमात् प्राप्त: स्वसेवाकृते
बप्पाय प्रथिताय सिद्धिनिलयो राज्यश्रियं दत्तवान् ।।१०।।
हारीतात्किल ,वप्पकोऽह्रिवलयव्याजेन लेभे मह; क्षात्रं..

रावल समरसिंह का वि० सं० १३४२ का आवू का शिलालेख (इंडि० एंटि०, जि० १६, पृ० ३४७) ।

12 जगाम वाप्प: परमेश्वरं महो.............।।१७।।

एकलिंगजी के मन्दिर के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति (भावनगर इंस्क्रि-प्शंस, पृ० ११८) ।

वप्प शब्द के और पाठांतर तो ठीक हैं किंतु इसका निर्वचन ठीक न जानकर शुद्ध संस्कृत वनाने की धुन में किसी पंडित ने वाप्प की कल्पना की होगी और इसीको दृढ़ करने के लिये पार्वती के वाष्प (आँसू) का सम्वन्ध वापा से मिलाने की कथा गढ़ी गई होगी। देखो, आगे टिप्पण २३)

13 श्रीगुहिदत्तराउलश्रीवप्पाकश्रीखुमाणादिमहाराजान्वये....

नारलाई के आदिनाथ के मन्दिर में लगा हुआ महाराणा रायमल के समय का वि० सं० १५५७ (न कि १५९७) का शिलालेख (वही पृ० १४१)।

14 श्रीमेदपाटवसुधामपालयद्वाप्पपृथ्वीश: ।।१९।।

महाराणा कुम्भकर्ण के समय का वना हुआ एकलिंग-माहात्म्य, राजवर्णन अध्याय (वि० सं० १७३८ की हस्तलिखित प्रति से) ।

15 प्राप्तमेदपाटप्रमुखसमस्तवसुमतीसाम्राज्यश्रीवापाखुम्मान....
उपर्युक्त, टिप्पण, १२ दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के अंत का गद्य !

'खल' को 'खोल', 'ढल' (ढेला) को 'ढोल', 'पाँच' को 'पौंच' आदि। अतएव 'वप्प' को 'वोप्प' लिखना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वप्प[16] और वोप्प दोनों प्राकृत पर्याय शब्द हैं और दोनों का मूल अर्थ 'पिता'[17] है। ये दोनों एक दूसरे के स्थान में व्यवहृत होते हैं जिसके कई उदाहरण मिलते हैं जैसे कि बप्प स्वामि'[18] के स्थान पर 'वोप्प

---

16 'वप्प' प्राकृत भाषा का प्राचीन शब्द है जिसका मूल अर्थ 'वाप' (संस्कृत वाप = बीज बोनेवाला = पिता) था। इसका या इसके भिन्न२ रूपान्तरों का प्रयोग बहुधा सारे हिंदोस्तान में प्राचीन काल से लगाकर अब तक चला आता है। वल्लभी (काठियावाड़ में राजाओं के दानपत्रों में पिता के नाम की जगह 'वप्प' शब्द सम्मान के लिये कई जगह मिलता है (परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीवप्पपादानुध्यातः परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरः श्रीशीलादित्यः'' वलभी के राजा शीलादित्य सातवें का अलीना का गुप्त संवत् ४४७ = ई० स० ७६६–६७ का दानपत्र, फ्लीट-गुप्त इंस्क्रिप्शंस, पृ० १७८)। नेपाल के लिच्छवि वंशी राजा शिवदेव और उसके सामंत अंशुवर्मा के [गुप्त] संवत् ३१६ (या ३१८ ? = ई० सं० ६३५–३६ के शिलालेख में 'वप्प' शब्द का प्रयोग वैसे ही अर्थ में हुआ है (स्वस्ति मानग्रहादपरिमितगुणसमुदयोद्भासितदिशो (?) वप्पपादानुध्यातोलिच्छविकुलकेतुभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीशिवदेवःकुशली.. इंडि० एंटि०, जि०१४, पृ० ९८)। पीछे से यह शब्द नामसूचक भी हो गया और मेवाड़ के अनेक लेखों में वापा रावल के लिये नामरूप से लिखा हुआ मिलता है (देखो, ऊपर. टिप्पण ११)। पीछे से इसके कई भिन्न२ रूपान्तर बालक, वृद्ध आदि के लिये या उनके सम्मानार्थ उनको संबोधन करने में संस्कृत के 'तात' शब्द की नांई काम में आने लगे। मेवाड़ में 'वापू' शब्द लड़के या पुत्र के अर्थ में प्रयुक्त होता है और 'वापजी' राजकुमार के लिये। राजपूताना, गुजरात आदि में वापा, वापू, और वापो शब्द पिता पूज्य या वृद्ध के अर्थ में आते हैं। वापूजी, वापूदेव, वोपदेव, वापूराव, वापूलाल, वावाराव, वापाराव, वापण्णभट्ट, वोपण्णभट्ट, वोपण्णदेव आदि अनेक शब्दों के पूर्व अंश इसी 'वप्प' शब्द के रूपान्तर मात्र हैं। पंजाबी और हिंदी गीतों तथा स्त्रियों की वोलचाल में 'वावल' पिता का सूचक है।

17 फ्लीट, गुप्त इंस्क्रिपशंस, पृ० ३०४।

18 परिव्राजक महाराज हस्ती के गुप्त संवत् १६३ (ई० स० ४८२–८३) के खोह के दानपत्र में कोपरिक अग्रहार जिन ब्राह्मणों को देना लिखा है उनमें से एक का नाम 'वप्पास्वामि' मिलता है ('फ्लीट, गुप्त

स्वामि'[19] और 'बापण्णभट्टीय, के स्थान पर 'वोपण्णभट्टीय'[20], आदि[21]।

(३) त्रिशूल शिव के आयुधों में से मुख्य है। बापा जैसे दृढ़ शिव-भक्त राजा के सिक्के में शिवलिंग के साथ त्रिशूल चिह्न का होना स्वाभाविक ही है।

(४) शिवलिंग बापा के इष्टदेव[22] एकलिंग का सूचक होना चाहिए।

(५) बैल शिव का वाहन होने के कारण शिवलिंग के सामने उसका

इंस्क्रिप्शंस, पृ० १०३)। गुजरात के राष्ट्रकूट (राठौड़) राजा गोविंद-राज के शक सं० ७३५ (वि० सं० ८७० = ई० स० ८१३) के दान-पत्र में उक्त दान के लेनेवाले गुजरात के ब्राह्मणों में से एक का नाम वप्पस्वामि लिखा है (एपि० इंडि०, जि० ३, पृ० ५८)।

19 वल्लभी के राजा शिलादित्य (प्रथम) के गुप्त सं० २८६ के नव लक्खी से मिले हुए दानपत्र में संगपुरि (शहापुर-काठियावाड़ के जूनागढ़ के निकट) के ब्राह्मणों में से जिनको दान दिया गया, एक का नाम वोप्पस्वामि लिखा है (एपि० इंडि०, जि० ११, पृ० १७५, १७९)।

20 वापण्णभट्ट (वोपण्णभट के कई ग्रंथों में से एक का नाम 'वापण्णभट्टीय' और वोपण्णभट्टीय' दोनों तरह से लिखा मिलता है (आफ़्रेक्ट-कैटलॉगस् कैटलॉगोरम्, खंड १ पृ० ३६९, ३७७)।

21 देवगिरि के यादव राजा महादेव और रामदेव (रामचन्द्र) के प्रसिद्ध विद्वान् मंत्री हेमाद्रि (हेमाडपंत) के आश्रित, वैद्य केशव के पुत्र और हरि-लीला, मुग्धबोध व्याकरण आदि अनेक ग्रंथों के कर्ता का, भानुदत्त रचित रसमंजरी पर 'रसमंजरी विकास' नामक टीका के कर्ता (नृसिंह के पुत्र) का, एवं कांकेर (मध्यप्रदेश) के सामंत व्याघ्रराज के पुत्र और उत्तरा-धिकारी का नाम वोपदेव (बोपदेव) मिलता है। ऐसे ही राजा तिविर-देव के एक दानपत्र के खोदनेवाले का नाम वोप्पनाग मिलता है (एपि० इंडि०, जि० ७, पृ० १०७)। इन नामों के पहले अंश 'वोप', 'वोप' या 'वोप्प', वप्प' या उसके पर्याय 'वोप्प' के ही सूचक हैं।

22 मेवाड़ के राजाओं के इष्टदेव एकलिंगजी हैं और बापा उनका परम भक्त था, ऐसा मेवाड़ के अनेक शिलालेखों एवं ऐतिहासिक पुस्तकों से पाया जाता है।

> नागहृदपुरे तिष्ठन्नेकलिंगशिवप्रभोः।
> चक्रे बाप्पोऽर्चनं चास्मै वरान्रुद्रो ददौ ततः ॥९॥
>
> राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३।

होना उचित है ।

(६) शिवलिंग और वृष के नीचे लेटे हुए पुरुष की मूर्ति किसकी सूचक है ? इस विषय में निश्चय के साथ कुछ भी कहा नहीं जा सकता, परन्तु संभव है कि वह बापा की ही सूचक हो और उसे अपने इष्टदेव एकलिंग के आगे प्रणाम करता हुआ प्रगट करती हो । उसके कान फटे और मुख अधिक लंबा होने के विषय में तीन कल्पनाएँ हो सकती हैं । या तो ठप्पा खोदने वाला अच्छा कारीगर न हो, जिससे जैसी चाहिए वैसी ठीक आकृति न बना सका । प्राचीन राजाओं के कानों में बड़े-बड़े कुंडल पहनने की चाल होने से व फटे हुए और लटक जाने के कारण बड़े बनाए जाते थे जैसा कि कई मूर्तियों में देखा जाता है । अथवा बापा शिव के गण नंदि (नंदिकेश्वर) का अवतार[23] माना जाता था जिससे उसका मुख वानराकार बनाया गया हो । अथवा यह बापा के गुरु हारीत राशि की मूर्ति हो, जो शिव के गण चंड का अवतार[24] माना जाता था ।

---

23 यं दृष्टवा नंदिनं गौरी दशो बाष्पं पुराऽसृजत्
नंदीगणोसौ बाष्पोपि प्रियादृक्बाष्पदोऽभवत् ।।७।।

वही, सर्ग० ३ ।

अथ शैलात्मजा ब्रह्मन् शोकव्याकुललोचना ।
नंदिनं प्रथमं बाष्पं सृजन्ती तमुवाच ह ।।१२।।
यस्माद्बाष्पं सृजाम्यद्य वियोगात्शंकरस्य च ।
पूर्वदत्ताच्च मे शापाद्बाष्पो राजा भविष्यति (सि) ।।१३।।

महाराणा रायमल के समय का बना एकलिंग-माहात्म्य, अध्याय ६ ।

नंदीगण का मुख वानर का सा माना गया है । रावण ने उसका उपहास किया था, तब नंदी ने शाप दिया कि मेरे सदृश मुखवाले तेरा नाश करेंगे ।

(वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकांड, ५० । २-३, तथा वहीं पर कतक टीका, उत्तरकाँड १६।१४–२१)

24 रे चंड त्वं द्वारि स्थितोपि रक्षाविधौ प्रमत्तोभूः ।
हारीतराशिनामा भूयास्त्वं मेदपाटमुनिः ।।

राणा कुंभकर्ण के समय का बना एकलिंग-माहात्म्य, अध्याय १, श्लोक २२ ।

हारीतराशिः स मुनिश्चण्डः शंभोर्गणोऽभवत् ।

राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग ३, श्लोक ८ ।

पिछली तरफ का विवेचन ।

(१) विंदियों से बनी हुई माला—इसका विवेचन ऊपर हो चुका है ।

(२) और (४) ऊपर के पंक्तिबद्ध तीन चिह्नों में से पहले चमर और तीसरे (छत्र) का विवेचन ऊपर हो चुका । ये दोनों राज्य-चिह्न हैं ।

(३) यह चिह्न या तो बौद्धों के धर्मचक्र का या सूर्य का सूचक हो सकता है । परम शैव राजा के सिक्के पर त्रिशूल, शिवलिंग और वृषभ के साथ बौद्ध धर्म-चक्र का होना तो सर्वथा असंभव है; अतएव यह चिह्न सूर्य का सूचक होना चाहिए । प्राचीन काल में सूर्य का चिह्न बीच में बिंदी सहित छोटा सा वृत्त होता था जिस पर बाहर की ओर किरणें होती थीं । पुराण और कार्षापण नाम के प्राचीन सिक्कों पर सूर्य का चिह्न[25] वैसा ही मिलता है । वह इतना स्पष्ट होता है उसको देख कर हर एक पुरुष सहसा यही कहेगा कि यह सूर्य बना है । पीछे से जैसे अक्षरों की आकृति में अन्तर पड़ता गया, वैसा ही सूर्य के चिह्न में भी भिन्नता आती गई । पश्चिमी क्षत्रप वंशी राजाओं के सिक्कों पर सूर्य और चंद्र के चिह्न मिलते हैं । उनमें चष्टन से लगा कर रुद्रसेन, प्रथम तक के सिक्कों पर सूर्य का चिन्ह किरणों सहित स्थूल बिंदी[26] ही है, वृत्त नहीं; और किरणें बहुत स्पष्ट हैं । परन्तु उसके पीछे के उसी वंश के राजाओं के सिक्कों पर का वही चिन्ह बिंदियों से बना हुआ वृत्त मात्र[27] है, जिसके मध्य में एक सूक्ष्म बिंदी और लगी है । सिक्कों के अभ्यासियों को छोड़कर उस चिन्ह को और कोई सूर्य का चिन्ह न कहेगा किंतु उसको सतफूल ही बतलावेगा । वैदिकों की ग्रहशांति के नवग्रहस्थापन में जहाँ नवग्रहों के सांकेतिक चिन्ह बनाकर उनका पूजन होता है ।

---

25 कनिंगहाम कॉइंस ऑफ एन्श्यंट इंडिया, प्लेट १, संख्या १, ३–७, १३ ।

26 रापसन् कैटलॉग आफ़ इंडिअन् कॉइंस, 'आंध्र, क्षत्रप आदि' प्लेट १०–१२ ।

27 वही, प्लेट १२–१८ ।

वहाँ सूर्य के मंडल में सूर्य का चिन्ह वृत्त[28] ही होता है। राजपूताने में राजाओं तथा सर्दारों की ओर से ब्राह्मणों, देवमंदिरों आदि को दान किए हुए खेतों पर उनकी सनदें शिलाओं पर खुदवा कर खड़ी की जाती थी। ऐसे ही राजाओं की ओर से छोड़े हुए किसी कर आदि के,, या प्रजावर्ग में से किसी जाति की की हुई प्रतिज्ञा के, लेख भी शिलाओं पर खुदवा कर गाँवों में खड़े किए हुए मिलते हैं। उक्त दोनों प्रकार के लेखों को यहाँ के लोग 'सुरे' (फ़ारसी शरह) कहते हैं। समय-समय के ऐसे सैकडों नहीं, हज़ारों शिलालेख अब तक भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में खेतों और गाँवों में खड़े हुए मिलते हैं। ऐसे लेखों में से कई एक के ऊपर के भाग में सूर्य चंद्र और वत्स सहित गौ की मूर्तियाँ बनी होती हैं। इनका भाव यही है कि जब तक सूर्य, चंद और सवत्सा गौ (अर्थात् रसदात्री पृथ्वी) हैं तब तक वह दान (आदि) अविच्छिन्न रहे। गौ की मूर्ति का यह भाव भी है कि इस दान या नियम का भंग करने-वालों को गोहत्या का पाप लगे। ऐसे शिलालेखों पर सूर्य के चिन्ह अंकित किए हुए मिलते हैं। राजपूताना म्यूज़िअम (अजमेर) में रखे हुए वि० संवत् १३०० के एक शिलालेख के ऊपर के भाग में सूर्य, चन्द्र और वत्स सहित गौ की मूर्तियाँ बनी हैं। उसमें सूर्य का चिन्ह ऊपर बतलाए हुए चार प्रकार के चिन्हों में से पहला है। अतएव सिक्के पर जो चिन्ह सूर्य का ही सूचक होना चाहिए।

इस सिक्के पर छत्र और चँवर दो राज्य-चिन्हों के बीच में सूर्य की मूर्ति किस अभिप्राय से रक्खी गई, इस विषय में भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ हो सकती हैं, परन्तु अधिक संभव यही है कि वह बापा का सूर्यवंशी होना सूचित करती हो। मेवाड़ के राजा अब तक अपने को सूर्यवंशी मानते चले आते हैं।

(५—६) ये चिन्ह गौ और उसका स्तनपान करते हुए बछड़े के हैं। यह गौ बापा रावल के प्रसिद्ध गुरु लकुलीश संप्रदाय के साधु (नाथ) हारीतऋषि की काम-धेनु हो जिसकी सेवा बापा रावल ने की ऐसी कथा प्रसिद्ध है। स्तनपान करते हुए वत्स का अभिप्राय गौ का दुधारु होना है।

---

28 वृत्तमंडलमादित्ये चतुरस्रं निशाकरे।
भूमिपुत्रे त्रिकोणं स्याद्बुधे वै बाणसदृशं ॥
ग्रहशांति।

(७) पात्र—इसका वर्णन ऊपर हो चुका।

(८) दो आड़ी लकीरें नदी के दोनों तटों को सूचित करती हैं क्योंकि उनकी दाहिनी ओर के अन्त पर मछली बनी है जो वहाँ पर जल का होना प्रकट करती है। यदि यह अनुमान ठीक हो तो ये लकीरें एकलिंगजी के मंदिर के पास बहनेवाली कुटिला नाम की छोटी नदी[29] (नाले) की सूचक होनी चाहिएँ।

(९) फूल—शोभा के लिये बना हो या नदी के निकट पुष्पों का होना सूचित करता हो।

बापा का सूर्यवंशी होना।

ऊपर हम कह आए हैं कि छत्र और चमर के बीच सूर्य का चिन्ह होना बापा (और उसके वंशजों) का सूर्यवंशी होना सूचित करता है। इस कथन पर यह शंका उठ सकती है कि इस चिन्ह पर से ही बापा का सूर्यवंशी होना कैसे संभव हो सकता है? क्या ऐसा मानने के लिये कोई प्राचीन शिलालेख आदि का प्रमाण है? इसके उत्तर में यह कथन है कि मेवाड़ के पुराने राजाओं में से अल्लट तक के राजाओं के पाँच शिलालेख अब तक मिले हैं, जिनमें शीलादित्य (शील) का वि० सं० ७०३[30] का, अपराजित का वि० सं० ७१८[31] का, भर्तृपट्ट (भर्तृभट) दूसरे के वि० सं० ९९९[32] और १०००[33] के और अल्लट का वि० सं० १०१०[34] का है। इनमें से किसी में भी मेवाड़ के राजवंश की उत्पत्ति के संबंध में कुछ भी लिखा नहीं मिलता। वि० सं० १०१० के पीछे के जिन शिलालेखों में उसकी

---

29 मा कुरुष्वेत्यतः कोपमित्युवाच सरिद्वरा।
तां शशापातिरोपेण कुटिलेति सरिद्भव ॥२५॥
तत्रैकलिंगसामीप्ये कुटिलेति सहस्रशः।
धाराश्च संभविष्यन्ति प्रायशो गुप्तभावतः ॥२६॥
महाराणा रायमल के समय का बना 'एकलिंगमाहात्म्य', अध्याय ६।

30 यह लेख इसी संख्या (ना. प्र. प. काशी, भाग १. सं. ३, सं० १९७७) में मुद्रित है।

31 एपि० इंडि०, जि० ४, पृ० ३१–३२।

32 वही, जि० १४, पृ० १८७।

33 राजपूताना म्यूजिअम की रिपोर्ट, ई० स० १९१३–१४, पृ० २

34 भावनगर इंस्क्रिपशंस, पृ० ६७–६८।

उत्पत्ति के विषय म कुछ लिखा मिलता है उनमें सब से पहला लेख एकलिंग के मंदिर के निकट के लकुलीश (लकुटीश) के मंदिर की, जिसको इस समय नाथों का मंदिर कहते हैं, प्रशस्ति है। यह प्रशस्ति मेवाड़ के राजा नरवाहन के समय की और वि० सं० १०२८ की है। इससे मेवाड़ के राजाओं का रघुवंशी (सूर्यवंशी) होना पाया जाता है। उक्त प्रशस्ति वाले ताक के ऊपर छज्जा न होने के कारण चौमासे में मंदिर के शिखर का जल प्रशस्ति के ऊपर होकर वहने से उसका कुछ अंश विगड़ गया है, तिस पर भी जो अंश बचा है वह वड़े महत्त्व का है। उसका सारांश नीचे लिखा जाता है---

प्रारम्भ में 'ओं ओं नमो लकुलीशाय' से लकुलीश को नमस्कार किया है। फिर पहले और दूसरे श्लोकों में किसी देवता और देवी (सरस्वती) की प्रार्थना हो ऐसा पाया जाता है परन्तु उन श्लोकों का अधिक अंश जाता रहा है। तीसरे और चौथे श्लोकों में नागह्रद (नागदा) नगर का वर्णन है। पाँचवें श्लोक में उस नगर के राजा वप्पक (वप्पक = बापा) का वर्णन है जिसमें उसको गुहिलवंश के राजाओं में चन्द्र के समान (तेजस्वी) और पृथ्वी का रत्न कहा है और उसके धनुष के टंकार का कुछ वर्णन[35] है परन्तु लेख का वह अंश नष्ट हो गया है। छठे श्लोक में वप्पक के वंशज किसी राजा का (संभवतः नरवाहन के पिता अल्लट का) वर्णन है परन्तु उसका नाम बचने नहीं पाया। सातवें और आठवें श्लोकों में राजा नरवाहन की, जिसके समय में वह प्रशस्ति वनी, वीरता की प्रशंसा है। श्लोक ९ से ११ तक में लकुलीश[36] की उत्पत्ति का वर्णन यों किया है कि पहले भृगुकच्छ (भड़ौच)

---

35 अस्मिन्नभूदगुहिलगोत्रनरेन्द्रचन्द्रः
श्रीवप्पकः क्षितिपतिः क्षितिपीठरत्नम् ।
ज्याघातघोष . . . .
(बम्बई एशि० सोसा० जर्नल, जि० २२ पृ० ११६)

36 लकुलीश (लकुटीश, नकुलीश) शिव के १८ अवतारों में से एक माना जाता है। प्राचीन काल में पाशुपत (शैव) सम्प्रदायों में लकुलीश सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध था और अब तक राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, दक्षिण (मईसोर तक), बंगाल और उड़ीसा में लकुलीश की मूर्तियां पाई जाती हैं। उस मूर्ति के सिर पर वहुधा जैन-मूर्तियों के समान केश होते हैं। वह द्विभुज होती है। उसके दाहिने हाथ में बीजोरा और बांये में लकुट (दण्ड) रहता है जिससे उसका नाम लकुटीश (लकुलीश) पड़ा। वह मूर्ति पद्मासन बैठी हुई होती है। लकुलीश, ऊर्ध्वरेता (जिसका वीर्य कभी स्खलित न हुआ हो) माना जाता है,

प्रदेश में विष्णु ने भृगु मुनि को शाप दिया तो भृगु ने शिव की आराधना कर उनको प्रसन्न किया। इस पर उस मुनि के सम्मुख हाथ में लकुट लिए हुए शिव का कायावतार (अवतार) हुआ। जहाँ उनका यह अवतार हुआ वह स्थान कायावतार (कारवान्) कहलाया और उसकी रमणीयता के आगे वे कैलाश को भूल गए। बारहवें श्लोक में किसी स्त्री (पार्वती ?) के शरीर पर के आभूषणों का वर्णन है परन्तु वह किस प्रसंग का है यह पूरा श्लोक सुरक्षित न होने से स्पष्ट नहीं होता। १३ वें श्लोक में शरीर पर भस्म लगाने, वल्कल के वस्त्र और जटाजूट धारण करने, और पाशुपत योग का साधन करनेवाले कुशिक आदि योगियों का (जो लकुलीश के मुख्य शिष्य थे) वर्णन है। श्लोक १४ से १६ तक में उन (कुशिक आदि) के पीछे होनेवाले एकलिंग जी के मंदिर की पूजा करनेवाले उक्त संप्रदाय के साधुओं का परिचय दिया है जिसमें उनको शाप और अनुग्रह का स्थान, हिमालय से सेतु (राम का सेतु) पर्यन्त रघु के वंश की कीर्ति को फैलानेवाला, तपस्वी, एकलिंगजी की पूजा करनेवाला और लकुलीश के उक्त मंदिर का बनानेवाला कहा है[37]।

जिसका चिन्ह (ऊर्ध्वलिंग) मूर्ति में बना रहता है [न (ल) कुलीशं ऊर्ध्वमेढ्रं पद्मासनसुसंस्थितं। दक्षिणेमातुलिङ्गं च वामे दंडं प्रकीर्तितं— विश्वकर्मावतार वास्तुशास्त्र]। इस समय इस प्राचीन संप्रदाय को माननेवाला कोई नहीं रहा, यहां तक कि बहुधा लोग उस सम्प्रदाय का नाम भी भूल गए हैं, परन्तु प्राचीन काल में उसके माननेवाले बहुत थे जिनमें मुख्य साधु (कनफटे, नाथ) होते थे। माधवाचार्य के 'सर्वदर्शनसंग्रह' में पाशुपत संप्रदाय का कुछ हाल मिलता है। उसका विशेष वृत्तांत शिलालेखों तथा विष्णुपुराण, लिंगपुराण आदि पुराणों में मिलता है। उसके अनुयायी लकुलीश को शिव का अवतार मानते थे जिसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई, एक दूसरी से भिन्न, कथाएं मिलती हैं। उसका उत्पत्ति स्थान कायावरोहण (कायारोहण = कारवान् , बड़ौदा राज्य में) माना गया है। लकुलीश उक्त सम्प्रदाय का प्रवर्तक होना चाहिये। उसके मुख्य चार शिष्यों के नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य (लिंगपुराण, २४। १३१) मिलते हैं। एकलिंगजी के पूजारी साधु कुशिक की शिष्य-परम्परा में थे क्योंकि उक्त प्रशस्ति में उसीका नाम दिया है। इस संप्रदाय के साधु निहंग होते थे, गृहस्थ नहीं और मूंडकर चेला बनाते थे। जाति-पांति का कोई भेद न था।

37......पाशुपतयोगभृतो यथार्थ-
ज्ञानाघदातवपुषः कुशिकादयोन्ये।

१७वें श्लोक में स्याद्वाद (जैन) और सौगत (बौद्ध) आदि को विवाद में जीतनेवाले वेदांग मुनि का हाल है। १८वें श्लोक में उस (वेदांग मुनि के) कृपापात्र (शिष्य) आम्रकवि के द्वारा, जो आदित्यनाग का पुत्र था, उस प्रशस्ति की रचना होने का उल्लेख है। १९वें श्लोक में उस प्रशस्ति का राजा विक्रमादित्य के संवत् १०२८ में वनना सूचित किया है। २० वां श्लोक किसी की प्रसिद्धि के विषय में है जो अपूर्ण ही वचा है। आगे अनुमानतः पौन पंक्ति गद्य की है जिसमें कारापक (मंदिर के वनवानेवाले) श्री सुपूजित-राशि का प्रणाम करना लिखा है तथा श्रीमार्तंड, श्री भ्रातृपुर, श्री सद्योराशि, लैलुक, श्रीविनिश्चितराशि आदि के नाम हैं।

इस लेख में एकलिंगजी के मंदिर की पूजा करनेवाले जटाधारी लकुलीश 'पाशुपत संप्रदाय के साधुओं (नाथों) को रघुवंश की कीर्ति को हिमगिरि से सेतु तक फैलानेवाला कहा है। अतएव यह निश्चय करने की

भस्मांगरागतरुवल्कजटाकिरीट–
लक्ष्माण आविरभवन्मुनयः पुराणाः ॥ [१३]
तेभ्यो.........................
......क्लेशसमुद्गतात्ममहस;....योगिनः ।
शापानुग्रहभूमयो हिमशिला व (व)न्धोज्वलादागिरे-
रासेतो रघुवंशकीर्तिपिशुनाती (स्ती) व्रं तप..[॥१४॥]
............श्रीमदेकलिङ्गसुरप्रभोः ।
पादाम्वु (म्वु)जमहापूजाकर्म्म कुर्व्वन्ति संयताः ॥ [१५॥]
अश्वग्रामगिरि (री) न्द्रमौलिविलसन्माणिक्यमुत्केतनं
क्षुन्ना (ण्णा) म्भोदंतडित्कडारशिखरश्रेणीसमुद्भासितं [।]
................नरजनीचन्द्रायमाणं मुहु-
स्तैरेतल्लकुलीशवेश्म हिमवच्छृङ्गोपमं कारितम् ॥ [१६॥]

श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने यह प्रशस्ति छपवाई है (वम्बई एशि० सो० जर्नल, जि० २२, पृ० १६६–६७) और उसका सारांश भी दिया गया है परन्तु उसके १४वें श्लोक के "हिमशिलावन्धोज्वलादागिरेरासेतो रघुवंश कीर्तिपिशुनाः" इस वाक्य खण्ड का अर्थ वे उलटा कर गए। वास्तविक अर्थ यही था कि 'वे (योगी) हिमालय से सेतु पर्यन्त रघु के वंश की कीर्ति को फैलाते थे, परन्तु उन्होंने उसका अर्थ यह किया कि 'उन योगियों की कीर्ति हिमालय से सेतु तक फैली हुई थी', (पृ० १५२) जो सर्वथा अशुद्ध है और उसमें मूल का 'रघुवंश' पद तो रह ही गया।

मुंहणोत नैणसी अपनी ख्यात के प्रारम्भ में ही मेवाड़ के राजाओं के विषय में लिखता है कि "सीसोदिये प्रारम्भ में गहिलोत (गुहिलोत) कहलाते थे। पहले इनका राज्य दक्षिण में नासिक त्र्यंबक की तरफ था। इनके पूर्वज सूर्य की उपासना करते थे। मंत्र ध्यान करने पर सूर्य आ प्रत्यक्ष होता था, जिससे कोई जोधा उसको जीत न सकता था। उसके पुत्र न हुआ।

चन्द्रवंशी और पाण्डवों की सन्तान होना लिखा है। इसी तरह वि० सं० १४९७ (ई० स० १४४०) के आसपास जिनहर्षगणि ने 'वस्तुपालचरित' रचा, जिसमें सोलंकियों को चन्द्रवंशी माना है। इन दोनों जैन विद्वानों के उक्त कथन से अनुमान होता है कि गुजरात के ब्राह्मण विद्वानों की अपेक्षा जैन विद्वानों में इतिहास का ज्ञान अच्छा था। चेदि के हैहय (कलचुरी) वंशी राजा युवराजदेव (दूसरे) के समय की बिल्हारी (जबलपुर ज़िले में) की प्रशस्ति बनानेवाले कवि ने प्रसंगवशात् सोलंकियों की उत्पत्ति बतलाते हुए लिखा है कि "भरद्वाज के वीर्य से महाबली भारद्वाज (द्रोण) उत्पन्न हुआ। उसने अपना अपमान करनेवाले राजा द्रुपद को शाप देने के लिये अपने चुलुक में जल लिया तो उसमें से साक्षात् विजय की मूर्ति-रूप एक पुरुष उत्पन्न हुआ जिससे चौलुक्य (सोलंकी) वंश चला।" पृथ्वीराज-रासो के कर्ता ने आबू पर्वत पर वसिष्ठ के अग्निकुण्ड से चालुक्क (सोलंकी) का उत्पन्न होना बतलाया और आज-कल के सोलंकी चन्द्रवंशी होने की पुरानी बात को न जानने से अपने को अग्निवंशी ही कहते हैं (सोलंकियों की उत्पत्ति के विषय की ऊपर लिखी हुई सब बातों के मूल प्रमाणों के लिये देखो, मेरा बनाया हुआ 'सोलंकियों का प्राचीन इतिहास': प्रथम भाग, पृ० ३–१३ और नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १, संख्या २, पृ० २०७–२१८।

इसी तरह राठौड़ वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी भिन्न२ कल्पनाएँ मिलती हैं। दक्षिण के राठौड़ राजा अमोघवर्ष (प्रथम) के समय शक सं० ७८२ (ई० स० ८६०) के कौनूर के शिलालेख में (एपि० इन्डि०, जि० ६, पृ० २९), गोविंदराज (चौथे, सुवर्णवर्ष) के शक सं० ८५२ (ई० स० ९३०) के खम्भात से मिले हुए दानपत्र में (एपि० इंडि०, जि० ७, पृ० ३७), उसी राजा के शक सं० ८५५ (ई० स० ९३३) के सांगली से मिले हुए दानपत्र में (इन्डि० ऐंटि० जि० १२, पृ० २४९) कृष्णराज (तीसरे, अकालवर्ष के शक सं० ८८० (ई० स० ९५८) के कर्हाड़ के दानपत्र में (एपि० इंडि०, जि० ४, पृ० २८२) और कर्क-

उसने पुत्र के लिये सूर्य से विनती की तब सूर्य ने कहा कि अंबा देवी की जात बोलो और पुत्र की इच्छा करो जिससे गर्भ रहेगा। राजा ने जात बोली राणी के गर्भ रहा। जब राणी जात देने को चली, राजा की सूर्य की उपासना मिट गई, शत्रुओं ने उस पर हमला कर दिया। राजा लड़ाई में

राज (दूसरे,—अमोघवर्ष) के शक सं० ८९४ (ई० स० ९७२) के खर्डा के दानपत्र में राठौड़ों का यदुवंशी (यादव) होना लिखा है। राठौड़ राजा इन्द्रराज (तीसरे, नित्यवर्ष) के शक सं० ८३६ (ई० स० ९१४) के बगमुरा से मिले हुए दो दानपत्रों में (बम्बई एशि० सोसा० जर्नल, जि० १८, पृ० २५७, २६१) और कृष्णराज (तीसरे, अकालवर्ष) के शक सं० ८६२ (ई० स० ९४०) के देवली से मिले हुए दानपत्र में (एपि० इन्डि०, जि० ५, पृ० १९२, १९३) राठौड़ों का चन्द्रवंश की यदु शाखा के सात्यकि के वंश में होना लिखा है। हलायुध पंडित ने अपनी रची हुई 'कविरहस्य' नामक पुस्तक में उसके नायक राठौड़ राजा कृष्णराज को सोमवंश (चन्द्रवंश का भूषण कहा है (बम्बई गैज़ेटियर, जि० १, भाग २, पृ० २०८–२०९)। दक्षिण के कलचुरी (हैहय) वंशी राजा विज्जल के वर्तमान शक सं० १०८४ (ई० स० ११६१) के मनगोलि के शिलालेख में राठौड़ों को दैत्यवंशी लिखा है (एपि० इन्डि०, जि० ५, पृ० २०)। राठौड़ों के भाट उनके मूल पुरुष को राक्षस (? असुर) हिरण्यकशिपु की सन्तान कहते हैं (राजस्थान रत्नाकर, तरंग १ पृ० ८८) कर्नल टॉड ने इन्द्र की राठ (रीढ़ की हड्डी) से उनके मूलपुरुष का उत्पन्न होना लिखा है (टॉड राजस्थान, कलकत्ते का छपा, जि० २, पृ० २) और वर्तमान समय के राठौड़ अपने को सूर्य्यवंशी रामचन्द्र के पुत्र कुश की सन्तान मानते हैं।

इसी तरह वर्तमान चौहान अपने को पृथ्वीराजरासो के अनुसार अग्निवंशी मानते हैं, परन्तु अजमेर के अढ़ाई दिन के झोपड़े से, जो वास्तव में चौहान राजा आना (अर्णोराज) के द्वितीय पुत्र राजा वीसलदेव (विग्रहराज) का सरस्वती-मन्दिर था, मिली हुई एक बड़ी शिला से, जिसपर किसी अज्ञात कवि के बनाए हुए चौहानों के इतिहास के किसी काव्य का प्रारम्भ का भाग खुदा है, पाया जाता है कि उस समय चौहान सूर्य्यवंशी माने जाते थे (कोकी रतप्रक्रियासाक्षी दक्षिण-मीक्षणम् मुररिपोर्देवो रविः पातु वः ॥३३॥ तस्मात्समालम्बनदण्डयोनिर-भूज्जनस्य स्खलतः स्वमार्गे। वशः स दैवोढरसो नृपाणामनुद्गतैनोघुणकीट-रंध्रः ॥३४॥ समुत्थितोर्कादनरण्ययोनिरुत्पन्नपुन्नागकदंबशाखः। आश्चर्य्य-

काम आया और उसका गढ़ बांसला शत्रुओं ने ले लिया । राणी अंबाजी को जात देकर नागदागाँव में आ ठहरी । वहाँ उसको अपने पति के मारे जाने के समाचार मिले । वह चिता बनवाकर सती होने को तय्यार हुई तो उसे रोकने के लिये ब्राह्मण ने कहा कि सगर्भा स्त्री के सती होने का निषेध है । आपके दिन भी पूरे होने आए हैं । इससे वह रुक गई । पंद्रह बीस दिन बाद उसके पुत्र हुआ । फिर १५ दिन हो जाने पर उसने स्नान किया और चिता तय्यार करवाई । राणी जलने को चली । लड़का उसकी गोद में था । वहाँ कोटेश्वर महादेव के मंदिर में ब्राह्मण विजयादित्य पुत्र के लिये आराधना किया करता था । उसको बुला कर राणी ने वस्त्र में लिपटा हुआ वह लड़का दे दिया । विजयादित्य ने उसे माल (दौलत) समझ कर ले लिया । इतने में लड़का रोया तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं इस राजपूत के लड़के को लेकर क्या करूँ, बड़ा होने पर यह शिकार में जानवर मारेगा और दुनिया से लड़ाई झगड़े करेगा, मैं पाप में पड़ूंगा और मेरा धर्म जाता रहेगा, इसलिये यह दान मुझसे लिया नहीं जाता । इस पर राणी ने उससे कहा कि तुमने कहा सो ठीक

मंतःप्रसरत्कुशोयम् वंशोर्थिनां श्रीफलतां प्रयाति ॥३५॥ आधिव्याधिकुवृतदुर्गतिपरित्यक्तप्रजास्तत्र ते सप्तद्वीपभजो नृपाः समभवन्निक्ष्वाकुरामादयः ।....॥३६॥ तस्मिन्नथारिविजयेन विराजमानो राजानुरंजितजनोजनि चाहमानः ।....॥३७॥) इसी तरह अजमेर के अन्तिम सम्राट् प्रसिद्ध पृथ्वीराज के समय में कश्मीरी कवि जयानक (जयरथ) रचित पृथ्वीराजविजय महाकाव्य में जगह-जगह पर चौहानों को सूर्य, रघु, इक्ष्वाकु आदि का वंशज कहा है (काकुस्थमिक्ष्वाकुरघू च यद्दधत् पुराभवत्त्रिप्रवरम् रघोःकुलम् । कलावपि प्राप्य स चाहमानतां प्ररूढतुर्यप्रवरम् बभूव तत् ॥२॥७१॥....भानोर्प्रतापोन्नतितन्वगोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ॥७।५०॥) आबू पर अचलेश्वर के मन्दिर में लगे हुए सिरोही के राजाओं के पूर्वज लुंढदेव (राव लुंभा) के समय के वि० संवत् १३७७ के शिलालेख में चौहानों को चन्द्रवंशी कहा है (निजायुधैर्दैत्यवरान्निहत्य सन्तोषयत्क्रोधयुतम् तु वच्छम् [वत्सम्] वच्छयास्तदाराधनतत्पराश्च चन्द्रस्य''''चन्द्रवंश्याः ॥८) । कर्नल टॉड ने चौहानों को अग्निवंश मानकर भी उनके गोत्रोच्चार में उन्हें सोमवंशी कहा है (टॉड राजस्थान, जि० २, पृ० ४८६) ।

यहाँ केवल तीन राजवंशों के उदाहरण ही दिए गए हैं । अन्य राजवंशों की भी उत्पत्ति यों ही भिन्न२ प्रकार से लिखी मिलती हैं । विस्तार-भय से उसका उल्लेख नहीं किया गया ।

है, परन्तु यदि मैं सती होकर जलती हूँ तो मेरा यह वचन है कि इस लड़के के वंश में जो होंगे वे १० पुश्त तक तेरे कुल के आचार का पालन करेंगे और तुझको बड़ा आनन्द देंगे। तब विजयादित्य ने उस लड़के को रख लिया। फिर राणी ने उसको धन, भूषण आदि दिया और वह सती हो गई। विजयादित्य के उस लड़के के वंशजों ने १० पीढ़ी तक ब्राह्मण धर्म का पालन किया और वे नागदा[40] (नागर) ब्राह्मण कहलाए। विजयादित्य का वह सूर्यवंशी पुत्र गुहिलोत (गुहिल) सोमदत (सोमादित्य) कहलाया। उसके पीछे सीलादत (शीलादित्य) आदि हुए[41]।" यही कथा मेवाड़ की पुरानी ख्यातों में भी मिलती है और कर्नल टॉड ने भी बहुत कुछ इसीको उद्धृत किया है[42] परन्तु उसमें गुहादित्य (गुहिल) के पिता को वलभीनगर (काठियावाड़) का अंतिम राजा शीलादित्य माना है, जिसके समय में वलभी का राज्य नष्ट हुआ था और उसकी माता का नाम पुष्पावती दिया है। शीलादित्य का नाम न तो मुंहणोत नैणसी की ख्यात में और न मेवाड़ की ख्यातों में ही मिलता है। गुहिल का वल्लभी के अंतिम राजा शीलादित्य के वंश में होना भी संभव नहीं, क्योंकि उसका गुप्त सं० ४४७ (वि० सं० ८२३ = ई० स० ७६६-६७) का अलीना का ताम्रपत्र मिल चुका है[43] और मेवाड़ के राजवंश का शीलादित्य (शील) जो गुहिल से पाँचवीं पुश्त में हुआ, वि० सं० ७०३ में मेवाड़ का राजा था, यह सामोली गाँव (मेवाड़ के भोमट ज़िले) से मिले हुए उक्त राजा के शिलालेख से निश्चित है। नैणसी के लेख और मेवाड़ की ख्यातों से यही पाया जाता है कि ब्राह्मण विजयादित्य का पालित पुत्र (गुहिल, गुहदत्त), जो मेवाड़ के राजवंश का मूलपुरुष हुआ, सूर्यवंशी क्षत्रिय था; जैसा कि बापा रावल के सिक्के और नरवाहन के समय की वि० सं० १०२८ की प्रशस्ति से पाया जाता है। मूंहणोत नैणसी की लिखी कथा कितनी पुरानी है, यह निश्चित नहीं; परन्तु यह कहा जा सकता है कि वह वि० सं० १७०५ से पूर्व लोगों में परम्परा से प्रसिद्ध चली आती थी क्योंकि नैणसी अपनी ख्यात में, कई जगह, वृत्तान्त भेजने या लिखवानेवाले का नाम और उसके लिखने का संवत् भी

---

40 नागदा ब्राह्मण नागर हैं। जैसे प्रष्णोरे नागर ब्राह्मण जो मन्दसौर में जा बसे मन्दसौर (दशपुर) के नाम से दसोरे (दशपुरे) कहलाए वैसे ही वड़नगर (आनन्दपुर) के रहनेवाले नागर जो नागदा में आ बसे, उक्त नगर के नाम से नागदे कहलाए।

41 मूंहणोत नेणसी की मारवाड़ी भाषा की ख्यात, पृ० १।

42 टॉड राजस्थान, पृ० २३७-३८।

43 फ़्लीट, गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १७३-८०।

देता है जिससे पाया जाता है कि उसकी ख्यात वि० सं० १७०६ और १७२५ के बीच में लिखी गई। नैणसी के कथन की छाया राजा शक्तिकुमार के समय के वि० सं० १०३४ के शिलालेख में पाई जाती है क्योंकि उसमें लिखा है कि "आनंदपुर (वड़नगर) से निकले हुए ब्राह्मणों (नागरों) के कुल को आनन्द देनेवाला महीदेव गुहदत्त जिससे गुहिलवंश चला[44] विजयी है।" 'महीदेव' के अर्थ के विषय में विद्वानों में विवाद है। कोई उसका अर्थ 'ब्राह्मण' और कोई 'राजा' करते हैं, परन्तु नैणसी की कथा के अनुसार विजयादित्य के पालित पुत्र (गुहिल) और उसके वंशजों को चाहे ब्राह्मण कहो, चाहे क्षत्रिय कहो, बात एक ही है।

ई० सं० की १५वीं शताब्दी के अन्त के आस-पास तक के शिलालेखों आदि के देखने से यही पाया जाता है कि एक ही समय का एक लेखक तो गुहिल के वंशजों को ब्राह्मण लिखता है तो उसी समय का दूसरा लेखक उनको क्षत्रिय बतलाता है।

रावल समरसिंह के समय के वि० सं० १३३१ के चित्तौड़ के और १३४३* के आबू के शिलालेखों के रचयिता नागर ब्राह्मण वेदशर्मा कवि ने पहले लेख में बापा को विप्र[45] (ब्राह्मण) कहा है और दूसरे में कहा है कि "ब्रह्मा के सदृश हारीत से वप्पक (बापा) ने पैर के कड़े के मिस से क्षात्र तेज प्राप्त किया और अपनी सेवा के छल से ब्रह्मतेज मुनि

---

44 आनन्दपुरविनिर्गतविप्रकुलानन्दनो महीदेवः ।
जयति श्रीगुहदत्तः प्रभवः श्रीगुहिलवंशस्य ॥

(इन्डि० एन्टि०, जि० ३९, पृ० १९१)

45 जीयादानन्दपूर्वं तदिह पुरमिलाखण्डसौंदर्यशोभि-
क्षोणीप्र(पृ)ष्ठस्थमेव त्रिदशपुरमधः कुर्व्वदुच्चैः समृध्या।
यस्मादागत्य विप्रश्चतुरुदधिमहीवेदिनीक्षिप्तयूपो
वप्पाख्यो वीतरागश्चरणयुगमुपासीत(सीप्ट) हारीतराशेः ॥

चित्तौड़ का लेख, श्लोक ९ (भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ७५)

इस लेख में बापा का आनन्दपुर (वड़नगर-गुजरात में) से आकर हारीत राशि की चरण-सेवा करना लिखा है, जो विश्वास योग्य नहीं; क्योंकि शिलादित्य, अपराजित, महेंद्र और बापा (कालभोज) की राज-

---

* आबू के अचलेश्वर शिवालय के मठ में महारावल समरसिंह के समय की प्रशस्ति है, वह वि० स० १३४२ मार्गशीर्ष सुदि १ (ई० स० १२८५) की है, वि० स०–१३४३ की नहीं। (सम्पा० टि०)

को दे दिया"[46] अर्थात् बापा ने क्षात्र धर्म धारण किया ।[47] परन्तु उसी रावल समरसिंह के समय का वि० सं० १३३५ का एक जैन शिलालेख चित्तौड़ के किले से मिला है जिसमें उक्त रावल के पिता तेजसिंह की राणी जयतल्ल-देवी के द्वारा श्याम पार्श्वनाथ का मंदिर बनाए जाने का उल्लेख है। उसमें ऊपर के दोनों लेखों के विरुद्ध गुहिलवंशी राजा सिंह को क्षत्रिय लिखा है[48] । रावल समरसिंह के पीछे महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के वि० सं०

धानी नागदा नगर ही थी । ऐसी दशा में वड़नगर से आना और हारीत रिशि की सेवा कर राज्य पाना कैसे सम्भव हो सकता है । ऐसे ही उक्त लेख में बापा को गुहिल का पिता बतलाया है वह भी स्वीकार करने योग्य नहीं है क्योंकि उक्त चित्तौड़ के लेख से ३०२ वर्ष पूर्व की नरवाहन के समय की प्रशस्ति में बापा का गुहिलवंशी राजाओं में चन्द्रमा के समान होना लिखा है जो अधिक विश्वास योग्य है । अनुमान होता है पुराने इति-हास से परिचित न होने के कारण प्रशस्ति के कर्ता ने गुहिल से भी पहले आकर नागदे में बसनेवाले विजयादित्य आदि नागरों की कथा का सम्बन्ध मिलाने के लिये नागरों के मूलस्थान आनन्दपुर (वड़नगर) से बापा के आने की कल्पना कर डाली हो ।

46 हारीतात्किल बप्पकोऽहिवलयव्याजेन लेभे महः
क्षात्रं धातृनिभाद्वितीर्य मुनये ब्राह्मं स्वसेवाच्छलात् ।
एतेऽद्यापि महीभुजः क्षिति तले तद्वंशसंभूतयः
शोभते सुतरामुपात्तवपुषः क्षात्रा हि धर्म्मा इव ॥११॥
आबू का शिलालेख (इंडि० एंटि०, जि० १६, पृ० ३४७)

इस लेख में बापा का हारीत की सेवा कर राज्यश्री पाना भी लिखा है (हारीतः शिवसंगमंगविगमात्प्राप्तः स्वसेवाकृते बप्पाय प्रथिताय सिद्धि-निलयो राज्यश्रियं दत्तवान् ॥१०॥) जो सर्वदा असम्भव है । मेवाड़ का राज्य तो गुहिलवंशियों के अधिकार में गुहिल से जो, बापा का आठवाँ पूर्वपुरुष था, चला आता था, जैसाकि हमने आगे बतलाया है ।

47 नैणसी की ख्यात में गुहिलवंशियों का उसकी माता सती के वचना-नुसार १० पुश्त तक ब्राह्मणों के आचार-विचार का पालना लिखा है । बापा गुहिल का ८वाँ वंशधर था ऐसा हमारे शोध से पाया जाता है । यहाँ दो पुश्त का अंतर पड़ता है जिसका कारण या तो जो वंशावली शिलालेखों में मिलती है, उसमें एक नाम का छूट जाना या नैणसी की ख्यात की संख्या में भूल का हो जाना हो ।

48 क्षत्रियगुहिलपुत्रसिंह० (इंडि० एंटि०, जि० ३९, पृ० १८९)

१५१७ की कुंभलगढ़ की बड़ी प्रशस्ति में, जहां राजवंश-वर्णन के पहले पुरानी प्रसिद्धियों के अनुसार मेवाड़ के कुछ राजाओं का हाल दिया है वहां उपर्युक्त चितौड़ के वि० सं० १३३१ के लेख का वही श्लोक उद्धृत कर[49] बापा को विप्र (ब्राह्मण) कहा है और उसी महाराणा के समय के बने हुए 'एकलिंग-माहात्म्य' में 'उक्तं च पुरातनैः कविभिः', कहकर वि० सं० १०३४ के आटपुर (अहाड़) के लेख का वही श्लोक उद्धृत किया है जिसमें गुहदत्त को आनन्दपुर (वड़नगर) से निकले हुए ब्राह्मणों (नागरों) के वंश को आनन्द देनेवाला लिखा है[50]। परन्तु उसी महाराणा कुंभकर्ण के पिता महाराणा मोकल ने अपनी महाराणी वाघेली (वघेली) गौरांबिका के पुण्य के निमित्त एकलिंगजी से ६ मील दूर श्रृंगी ऋषि के स्थान पर वि० सं० १४८५ में एक वापी बनवाई जिसकी प्रशस्ति के रचयिता योगीश्वर कविराज वाणीविलास ने, कुंभलगढ़ की प्रशस्ति और एकलिंग-माहात्म्य के विरुद्ध, उक्त महाराणा मोकल के दादा क्षेत्र (क्षेत्रसिंह, खेता) को 'क्षत्रियवंशमंडनमणि' लिखा है[51]। महाराणा कुंभकर्ण के द्वितीय पुत्र रायमल के राज्य के समय एकलिंगजी के मन्दिर के दक्षिणद्वार की वि०सं० १५४५ की प्रशस्ति में बापा को 'द्विज'[52] और उसी महाराणा के समय के बने हुए 'एकलिंग माहात्म्य' (एकलिंग पुराण) में 'ब्राह्मण' लिखा है परन्तु उसके विरुद्ध उसी महाराणा के राजत्वकाल के वि० सं० १५५७ (न कि १५९७ जैसा कि छपा है) के नारलाई गांव (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़

---

49 जीयादानंदपूर्वम्० (देखो ऊपर, टिप्पण ४५)।

50 आनन्दपुरविनिर्गतविप्रकुला० (देखो ऊपर टिप्पण ४४)

51 एवं सर्दमकंटकं समगमड्ढू मंडलं भूपतिः
हंमीरो ललनास्मरः सुरपदं संपाल्य काश्चित्समाः।
सम्यग्वर्महरं ततः स्वतनयं सुस्थाप्य राज्ये निजे
क्षेत्रं क्षत्रियवंशमंडनमणिं प्रत्यर्थिकालानलं ॥५॥
श्रृंगी ऋषि के स्थान की प्रशस्ति (अप्रकाशित)

52 श्रीमेदपाटभुवि नागह्रदे पुरेभू–
द्बाप्पो द्विजः शिवपदार्चित्तवृत्तिः।
(भावनगर इंस्क्रिप्शंस, पृ० ११८)

ऐसे ही महाराणा कुंभकर्ण रचित 'रसिकप्रिया' नामक 'गीतगोविंद' की टीका में बापा को 'द्विज' बतलाया है (श्रीवैजवापेन सगोत्रवर्यः श्री-बप्पनामा द्विजपुङ्गवोभूत्। हरप्रसादादपसादराज्यप्राज्योपभोगाय नृपो̕भवद्यः ॥५॥

ज़िले में) के जैनमंदिर के शिलालेख में गुहिदत्त (गुहदत्त) बप्पाक (बापा), खुम्माण आदि राजाओं को सूर्यवंशीय लिखा है।[53]

इस प्रकार एक ही समय के ब्राह्मण-लेखक तो गुहिलवंशियों का ब्राह्मण होना, और जैन तथा साधु-लेखक सूर्यवंशी और क्षत्रिय होना बतलाते हैं। इस भिन्नता का कारण मूंहणोत नैणसी की पुस्तक से ऊपर उद्धृत की हुई कथा से स्पष्ट हो जाता है।

बापा रावल का समय।*

इस सिक्के के समय के लिये बापा रावल का समय निश्चय करना आवश्यक है। पुराने राजाओं का समय निर्णय करने में उनके शिलालेख और दानपत्र बड़ी सहायता देते हैं क्योंकि उनमें बहुधा उनका निश्चित संवत् दिया हुआ होता है परन्तु बापा के राजत्वकाल का कोई शिलालेख या दानपत्र अब तक उपलब्ध नहीं हुआ। अतएव अन्य साधनों से उसका निर्णय करना पड़ता है। उपर्युक्त वि० सं० १०२८ की राजा नरवाहन के

---

53 श्रीमेदपाटदेशे। श्रीसूर्यवंशीयमहाराजाधिराजश्रीसि(शी)लादित्यवंशे श्रीगुहिदत्तराउलश्रीबप्पाकश्रीखुमाणादिमहाराजान्वये। राणाहमीरश्रीखे(खे)तसिंह श्रीलखमसिंहपुत्रश्रीमोकलमृगांकवंशोद्योतकारक....अतुलमहाबलराणा श्रीकुम्भकर्ण-पुत्रश्रीरायमल्लविजयमानप्राज्यराज्ये........

(भावनगर इंस्क्रिप्शंस, पृ० १४१)

---

* मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेश और बापा रावल क्षत्रिय वर्ण का था या विप्रवंशी, इस विषय में यथेष्ट चर्चा हो चुकी है। दसवीं शताब्दी के पूर्व के शिलालेखों आदि में तो इस विषय का कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। ग्यारहवीं शताब्दी के शिलालेखों में से एकलिंगजी के नाथों के मन्दिर की वि० सं० १०२८ की प्रशस्ति में गुहिलवंश के राजा रघुवंशी होने का संकेत है, जो सूर्यवंश की उपशाखा है। अभी थोड़े ही वर्ष हुए सम्भवतः मेवाड़ के नागदा से ही एक त्रुटित प्रशस्ति मिली है, जिसका कुछ भाग नष्ट हो गया है, परन्तु उक्त प्रशस्ति मेवाड़ के राजा वैरट ? के समय की पाई जाती है, जो मालवा के प्रसिद्ध परमार राजा भोज का समकालीन था। सौभाग्य से इस प्रशस्ति का संवत् का भाग सुरक्षित रह गया, जिससे पाया जाता है कि वह प्रशस्ति वि० सं० १०८३ (ई० स० १०२६) की है। उसमें उसको सूर्यवंशी बतलाया है। यह प्रशस्ति उदयपुर के विक्टोरिया म्यूजियम में सुरक्षित है और अप्रकाशित है।

(संपा० टि०)

संवत् स्वीकार करने के योग्य है क्योंकि प्रथम तो महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के एकलिंग-माहात्म्य से पाया जाता है कि यह संवत् कपोल-कल्पित नहीं किंतु प्राचीन आधार पर लिखा गया है। दूसरी बात यह है कि बापा ने मोरियों (मौर्यवंशियों) से चित्तौड़ का किला लिया यह प्रसिद्धि चली आती है[60]। चित्तौड़ के किले के निकट 'मानसरोवर' नामक तालाब है जिसको लोग राजा मान मोरी का बनाया हुआ बतलाते हैं।

एक पुस्तक है जिसमें मुंहणोत नैणसी की ख्यात का एक भाग भी है। उसमें चन्द्रावतों (सीसोदियों की एक शाखा) की बात भी है, जहाँ राणा भावणसी (भुवनसिंह) के पुत्र चन्द्रा से लगाकर अमरसिंह हरिसिंघोत तक की वंशावली दी है और अन्त में दो छोटे २ संस्कृत काव्य हैं। इनमें से पहले में रावल बापा से लगाकर राणा प्रताप तक की वंशावली है जिसमें बापा का शक संवत् ६८५ (वि० सं० ८२०) में होना लिखा है—

वापाभिधः सम(भ)वत् वसुधाधिपोसौ
पंचाष्ठषट्परिमितेय स(श)कद्रकालो(ले)।

डॉ० टेसीटोरी सम्पादित 'डिसक्रिप्टिव कॅटलाग ऑफ़ बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मनुस्क्रिप्टस्', भाग २ (बीकानेर स्टेट) पृ० ६३।

इसमें दिया हुआ बापा का समय ऊपर दिये हुए दोनों एकलिंग-माहात्म्यों के समय से १० वर्ष पीछे का है और उसके लिये कोई प्रमाण नहीं दिया।

60 हर हारीत पसाय सातवीसाँ वर तरणी
मंगलवार अनेक चैत वद पंचम परणी।
चित्रकोट कैलास आप वस परगह कीधो
मोरीदल मारेव राज रायां गुर लीधो।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात, पत्रा दूसरा, पृ० १॥

नागहृदपुरे तिष्ठन्नेकलिंगशिवप्रभोः।
चक्रे बाप्पोर्चनं चास्मै वरान् रुद्रो ददौ ततः॥९॥
चित्रकूटपतिस्त्वं स्यात्वद्वंश्यचरणाद्ध्रुवम्।
मा गच्छताच्चित्रकूटः संततिः स्यादखण्डिता॥१०॥

ततः स निर्जित्य नृपं मोरी-
जातीयभूपम् मनुराजसंज्ञम्।
गृहीतवांश्चित्रितचित्रकूटं
चक्रेत्र राज्यं नृपचक्रवर्ती॥१८॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३।

उस पर वि० सं० ७७० का उक्त राजा का शिलालेख कर्नल टॉड के समय विद्यमान था जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'टॉड राजस्थान' के अन्त में छपा है और जिसमें उक्त राजा मान के पूर्वजों की नामावली भी दी है। उक्त लेख से निश्चित है कि चित्तौड़ का किला सं० ७७० तक तो मान[61] मोरी के अधिकार में था जिसके पीछे किसी समय वापा ने उसे मोरियों से लिया हो। यह समय ऊपर दिए हुए वापा के राज्य छोड़ने के संवत् ८१० के निकट आ जाता है। कर्नल टॉड ने वि० सं० ७८४ में वापा का चित्तौड़ लेना माना है, वह भी करीब-करीब मिल जाता है। तीसरी बात यह है कि मेवाड़ में यह जनश्रुति चली आती है कि बापा ने 'संवत् एके एकाणुए' अर्थात् सं० १९१[62] में राज पाया। मेरे संग्रह में संवत् १७३८ भाद्रपद शुक्ला ८ गुरुवार की लिखी हुई महाराणा कुंभकर्ण के समय के एकलिंग माहात्म्य की पुस्तक है। उनमें जहाँ वापा का समय ८१० दिया है वहाँ हंसपद (टूटक का चिह्न) देकर हाशिये पर किसी ने "ततः शशिनन्दचन्द्र सं० १९१ वर्षे" लिखा है जो उक्त जनश्रुति के अनुसार ही है। यदि इस जनश्रुति का प्रचार किसी वास्तविक संवत् के आधार पर हुआ हो तो उसके लिये केवल यही कल्पना की जा सकती है कि प्राचीन लिपि में ७ का अंक पिछले समय के १ के अंक का सा होता था जिससे किसी प्राचीन पुस्तक आदि में वापा का समय ७९१ लिखा हुआ रहा हो जिसको पिछले समय में १९१ पढ़ कर वापा का उक्त संवत् में राज पाना मान लिया गया हो। मेवाड़ के राजा शीलादित्य के संवत् ७०३ के शिलालेख में ७ का अंक वर्तमान १ के अंक से ठीक मिलता

---

61 मेवाड़ में यह प्रसिद्धि चली आती है कि वापा ने चित्तौड़ का राज्य मानमोरी से लिया था। राजप्रशस्ति में भी वैसा ही लिखा है (देखो टिप्पण ६०, श्लोक १८)। वहाँ 'मनुराज' लिखा है जो 'राजा मान' का सूचक है।

62 यह जनश्रुति पुरानी है क्योंकि 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में वापा का संवत् १९१ में राज्य पाना लिखा है—

> चित्रकूटपस्तिसत्वम् स्याः ॥१०॥ (ऊपर टिप्पण ६० में)
> प्राप्येत्यादिवरान् वाप्प एकस्मिन् शतके गते।
> एकाग्रनवतिसृष्टे माघे पक्षवलक्षके ॥११॥
> सप्तमीदिवसे वाप्प स पंचदशवत्सरः।
> एकलिंगेशहारीतप्रसादाद्भाग्यवानभूत् ॥१२॥
>
> राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३।

हुआ[63] है जिसको प्राचीन लिपियों से परिचय न रखने वाला पुरुष एक का अंक ही पढ़ेगा। कर्नल टॉड ने सं० ७६६ में बापा का जन्म होना और १५ वर्ष की अवस्था में वि सं० ७८४ में मोरियों से चित्तौड़ का किला लेना माना है। यदि उक्त कर्नल का दिया हुआ बापा के जन्म का संवत् ७६६ ठीक हो तो १५ वर्ष की छोटी अवस्था में चित्तौड़ का किला लेना न मान कर यदि २२ वर्ष की युवावस्था में उस घटना का होना मानें तो वि० सं० ७९१ में बापा का चित्तौड़ का राज्य लेना संभव हो सकता है। ऐसी दशा में बापा का राजत्वकाल संवत् ७९१ से ८१० तक आता है और यही समय उक्त सिक्के का है।

मेवाड़ के राजाओं की वंशावली में बापा का स्थान।*

मेवाड़ के राजाओं की वंशावली में बापा का ठीक स्थान निश्चित नहीं हुआ। उक्त वंश के राजा अल्लट तक के अर्थात् वि० सं० १०1० तक के जो शिलालेख मिले हैं उनमें तो उस एक ही राजा का नाम दिया है जिसका लेख है। अल्लट के उत्तराधिकारी नरवाहन के समय की उपर्युक्त

63 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' लिपिपत्र ७४ के दूसरे खण्ड में मेवाड़ के राजा शीलादित्य के संवत् ७०३ के लेख से ७०० का अंक उद्धृत किया है जिसमें १०० का चिह्न तो 'स्र' अक्षर (प्राचीन) के समान है। उसकी दाहिनी ओर ७ का अंक है जो वर्तमान १ के अंक के सदृश ही है। इस प्रकार से अंक लिखने की शैली प्राचीन है।

* मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेशों की वंशावली भिन्न-भिन्न रूप से मिलती है। कितनी वंशावलियों में 'बापा रावल' का नाम है और कितनी में बापा रावल का नामोल्लेख ही नहीं है। इन पर विचार करते हुए विद्वानों ने 'बापा' उपनाम मानकर उसका कोई वास्तविक नाम होना माना है; परन्तु नाम स्थिर करने में मतभेद हैं। कोई शील, कोई अपराजित, कोई महेंद्र और कोई खुम्माण को बापा होना मानते हैं। डॉ० ओझा भी बापा उपनाम मानते हुए उसका नाम काल भोज होने की कल्पना करते हैं, जिसका आधार यह है कि ख्यातों में खुम्माण का पिता बापा होने का उल्लेख है और राजप्रशस्ति महाकाव्य में भी खुम्माण का पिता बापा होना लिखा है। इसके अतिरिक्त डूंगरपुर राज्य के ऊपरगाँव नामक ग्राम के श्रेयांसनाथ के दिगम्बर जैन मन्दिर की प्रशस्ति में भी जो वि० सं० १४६१ (चैत्रादि वि० सं १४६२) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १४०५) शुक्रवार को रावल कान्हड़देव के पुत्र प्रताप-

वि० सं० १०२८ की प्रशस्ति में तीन नाम दिए थे जिनमें से बीच का नष्ट हो गया है । उसके पीछे की कितनी एक प्रशस्तियों में प्रारम्भ से वंशावली देने का यत्न किया है। उनमें प्रारम्भ से शक्तिकुमार तक की नामावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है--

---

सिंह (पाता रावल) के समय की है, खुम्माण वापा का पुत्र होने का वर्णन है---

श्रीमद्वप्पात्मजोभूत्सुसित गुणगणादालिंग:कुँदकीर्त्ति-
श्चोडश्चुड़ामणि (त्वं) नृपकुलशिरसि (प्रा) प्तवान्संगरेय: ।।
(खु) म्माण:क्षुण्णशत्रु (पृ) थु रिपुभुजगो वैरडागास्यद्रभूत
जा (तु):श्रीवैरसिंह क्षितितल सरसीपद्मसिंहोवनीश: ।।११।।

(मूल प्रशस्ति की छाप से)

यह प्रशस्ति महारावल समरसिंह के समय की चित्तौड़ तथा आबू की प्रशस्तियों से केवल १३० वर्ष पीछे की है और महाराणा कुंभकर्ण (कुम्भा) के बनाये हुए कुंभलगढ़ की वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) की प्रशस्ति से लगभग ६५ वर्ष पूर्व की है। इससे डूंगरपुर के राजाओं की वंशावली का क्रम भी ठीक हो जाता है, अतएव वह उपेक्षणीय नहीं है । एवम् इससे भी डॉ० ओझा का वापा का पुत्र खुम्माण होने की भीत्ति पर कालभोज को वापा मानना समुचित है, क्योंकि आट्पुर की वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) की और कुम्भलगढ़ की वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) की प्रशस्तियों मे कालभोज के वाद खुम्माण नाम दिया है । उपरोक्त प्रशस्ति अवतक अप्रकाशित है । डॉ० ओझा ने राजपूताना म्युजिअम अजमेर की वार्षिक रिपोर्ट में संक्षेप से इसका उल्लेख किया है एवम् डूंगरपुर राज्य के इतिहास में भी इस लेख का संवत् मात्र ही दिया है। (संपा० टि०)

संख्या	आटपुर (अहाड) का लेख[64] वि० सं० १०३४ का	चित्तौड़ का लेख[65] वि० सं० १३३१ का	आबू का लेख[66] वि० सं० १३४२ का	राणपुर का लेख[67] वि० सं० १४९६ का	कुंभलगढ़ का लेख[68] वि० सं० १५१७ का	शिलालेखों से ज्ञात निश्चित समय
१		वप्प	वप्प (वप्पक)	वप्प		
२	गुहदत्त	गुहिल	गुहिल	गुहिल	गुहिल	
३	भोज	भोज	भोज	भोज	भोज	
४	महेंद्र				महींद्र	
५	नाग				नाग	
६	शील	शील	शील	शील	वप्प	वि०सं० ७०३[69] (शीलादित्य का लेख) वि०सं० ७१८[70]
७	अपराजित				अपराजित	
८	महेंद्र (दूसरा)				महींद्र (दूसरा)	
९	कालभोज	कालभोज	कालभोज	कालभोज	कालभोज	
१०	खोम्माण				खुम्माण	
११	मराट	मल्ल [रा ?] ट			मराट	

64 इंडि० एंटी०, जि० ३९, पृ० १९१। 65 भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ७४–७७। 66 इंडि० एंटी०, जि० १६, पृ० ३४७–५१। 67 भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ११४–१५। 68 उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में रखा हुआ है, अब तक छपा नहीं है। कुंभलगढ़ का। 69 देखो ऊपर, टिप्पण ३०। 70 देखो ऊपर, टिप्पण ३१। वि० सं० १५१७ का लेख श्री अक्षयकीर्ति व्यास द्वारा ए० इ० में सम्पादित हो चुका है। (सं० टि०)।

संख्या	आटपुर (अहाड़ का लेख[64] वि० सं० १०३४ का	चित्तौड़ का लेख[65] वि० सं० १३३१ का	आबू का लेख[66] वि० सं० १३४२ का	राणपुर का लेख[67] वि० सं० १४९६ का	कुंभलगढ़ का लेख[68] वि० सं० १५१७ का	शिलालेखों से ज्ञात निश्चित समय
१२	भर्तृपट्ट	भर्तृभट	भर्तृभट	भर्तृभट	भर्तृभट	
१३	सिंह	सिंह	सिंह	सिंह		
१४	खोम्माण (दूसरा)	महायक	महायक	महायक		
१५	महायक	खुम्माण	खुम्माण	खुम्माण		
१६	खोम्माण (तीसरा)					
१७	भर्तृपट्ट (दूसरा)					वि० सं० ९९९,[71] १०००[72]
१८	अल्लट	अल्लट	अल्लट	अल्लट	अल्लट	वि० सं० १००८, १०१०[73]
१९	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	वि० सं० १०२८[74]
२०	शालिवाहन				शालिवाहन	
२१	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	वि० सं० १०३४,[75]

64. 65. 66. 67. 68. देखो पृ० १२५। 71. देखो ऊपर, टिप्पण ३२। 72. देखो ऊपर, टिप्पण ३३। 73. देखो ऊपर, टिप्पण ३४। ये दोनों संवत् एक ही शिलालेख से हैं। 74. देखो ऊपर, टिप्पण ३५। 75. देखो ऊपर, टिप्पण ६४।

इन पाँचों वंशावलियों में से पहली राजा शक्तिकुमार के समय के वि० सं० १०३४ क लेख से है जो सबसे पुरानी और पूर्ण है। उसमें तो 'बापा' (वप्प) का नाम ही नहीं है। परन्तु उसके पूर्व की उपर्युक्त नरवाहन की प्रशस्ति में, जो वि० सं० १०२८ की है, बापा को गुहिलवंश के राजाओं में चन्द्र के समान (प्रकाशमान) लिखा है जिससे शक्तिकुमार के पहले बापा का होना निश्चित है। ऊपर हम बतला चुके हैं कि प्राचीन प्राकृत वप्प शब्द प्रारम्भ में पिता का सूचक था और पीछे से नाम के लिये तथा अन्य अर्थों में भी उसका प्रयोग होता था[76]। अतएव यह संभव है कि शक्तिकुमार के लेख में वप्प नाम का प्रयोग न कर वास्तविक नाम का प्रयोग किया हो परन्तु उसका वास्तविक नाम क्या था इसका उक्त लेख से कुछ भी निश्चय नहीं हो सकता।

दूसरी वंशावली चित्तौड़ के किले पर की रसिया की छत्री के द्वार के भीतर लगे हुए रावल समरसिंह के समय के वि० सं० १३३१ के शिलालेख से है। तीसरी वंशावली उसी रावल समरसिंह के समय के वि० सं० १३४२ के शिलालेख से है।* ये दोनों शिलालेख चित्तौड़ के रहनेवाले नागर

76 देखो ऊपर, टिप्पण १६।

* महारावल समरसिंह के समय की चित्तौड़ की वि० सं० १३३१ आषाढ़ सुदि ३ शुक्रवार (ई० स० १२७४) की और आबू के अचलेश्वर के शिवालय के मठ की वि० सं० १३४२ मार्गशीर्ष सुदि १ (ई० स० १२९५) की प्रशस्तियों में मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेशों को ब्राह्मण होना बतलाया है और बापा रावल को गुहिल से पूर्व स्थान दिया है। यह दोनों बातें कुंडा गाँव की वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) और एकलिंगजी की वि० सं० १०२८ (ई० स० ९७१) की प्रशस्तियों से निर्मूल पाई जाती है। किंतु इन दोनों बातों से उक्त प्रशस्तियों का महत्व नष्ट नहीं होता। गुहिल से सातसौ और बापा रावल से लगभग साढ़े पाँचसौ वर्ष पीछे ये दोनों प्रशस्तियाँ निर्मित हुई, अतएव इनमें कुछ स्थल पर भूलें भी होना सम्भव है।

आटपुर की वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) की प्रशस्ति (जिसका अब पता ही नहीं है) के आधार पर गुहिल राजवंश की वंशावली का क्रम ठीक होता है। उक्त प्रशस्ति में आरम्भ में 'आनन्दपुरविनिर्गतविप्रकुलानंदनो महीदेवः। जयति श्रीगुहदत्तः प्रभवः श्रीगुहिलवंशस्य' श्लोक है। इससे उक्त राजवंश का आनन्दपुर से निकलने वाले ब्राह्मण वंश से कुछ सम्बन्ध अवश्य पाया जाता है। वह सम्बन्ध किस प्रकार का था,

ब्राह्मण प्रियपटु के पुत्र वेदशर्मा के रचे हुए हैं । ये दोनों वंशावलियाँ अपूर्ण हैं। चित्तौड़ के ही रहनेवाले ब्राह्मण कवि को वहीं के राजाओं का वंशवर्णन करते समय उनकी पूरी वंशावली का न मिलना यही बतलाता है कि उस समय मेवाड़ के राजवंश का प्राचीन इतिहास ठीक-ठीक उपलब्ध न था।

यहाँ उसके विवेचन का स्थल नहीं है। इस प्रशस्ति को हो सकता है कि महारावल समरसिंह के समय की प्रशस्तियों के रचयिता वेदशर्मा ने जो नागर ब्राह्मण था, मूलभूत आधार मानकर उसके उपरोक्त श्लोक का अर्थ ब्राह्मण वाचक समझ मेवाड़ के राजाओं को ब्राह्मणवंशी लिख दिया हो, जो आश्चर्य की बात नहीं है। गुहिल के पूर्व बापा का नाम उल्लिखित होने का कारण यह जान पड़ता है कि वेदशर्मा ने जैन विद्वानों के कथन को मान्य किया, जो मेवाड़ के राजवंश को वल्लभी से इधर आना मानते रहे। वल्लभी के राजाओं के दानपत्रों में नरेश के में नाम के पूर्व 'वप्प-पादानुध्यात्' वाक्य प्रयोग करने की प्रथा होने से वेदशर्मा ने यह क्रम ग्रहण कर मेवाड़ के राजाओं की वंशावली को आरम्भ किया और आरम्भ में बापा रावल का वर्णन कर आगे गुहिल से वंशावली तथा इतिहास को वर्णित करने का यत्न किया।

आटपुर की प्रशस्ति तथा इन दोनों प्रशस्तियों में उल्लिखित वंशा-वलियों का मिलान करने पर अधिक अन्तर नहीं पाया जाता, जैसा कि डॉ० ओझा के इस निबन्ध में दिये हुए वंशक्रम से प्रकट है। इन दोनों प्रशस्तियों में आटपुर में उल्लिखित प्रशस्ति के कुछ नाम नहीं है, जिसका कारण यही जान पड़ता है कि वेदशर्मा ने उन राजाओं के नाम छोड़ दिये, जिनका वंश नहीं चला और जिनसे क्रमपूर्वक वंश चला वे ही नाम रखे। ऐसा बहुधा अन्य प्रशस्तियों और वंशावलियों में भी मिलता है, कि जिनका वंश अवशेष नहीं रहता, उनके नामों को वर्णन में लिया ही नहीं जाता। ।

उस समय के लिये ही नहीं, यह अब भी सर्वथा असम्भव है कि ग्रन्थ निर्माण के समय खोजपूर्वक सम्पूर्ण रूप से सामग्री प्राप्त की जाय और तद-नन्तर ही रचना की जाय। यही बात इन प्रशस्तियों के लिये भी हो सकती है एवं जब विभिन्न मत और जनःश्रुतियाँ होती है, रचनाकार के लिये कठिन समस्या हो जाती है। और वेदशर्मा के लिये भी यही स्थिति थी। अतएव उसने चित्तौड़ की प्रशस्ति में बापा को विप्र होना लिखकर आबू की प्रशस्ति में हारीत से क्षात्रत्व प्राप्त करने का उल्लेख किया। प्रायः यह नियम है कि जितने साधन प्राप्त होते हैं, उन ही के आधार पर रचना होती है

यही नहीं, उसको शुद्ध वंशावली भी ज्ञात न थी, क्योंकि उसमें बापा को, जो गुहिल के वंश में अर्थात् उससे कई पुश्त बाद हुआ, गुहिल का पिता लिख दिया है जो सर्वथा असंभव है । उसी राजा समरसिंह के समय का वि० सं० १३३२ का चीरवा गाँव के मंदिर का शिलालेख ‡ चित्तौड़ के ही रहनेवाले

और रचनाकार काल्पनिक बुद्धि का हुआ तो वह कल्पना का भी अपनी तरफ से पुट दे देता है। अस्तु, वेदशर्मा को जितने साधन सुलभ थे, उसके आधार पर उसने उभय प्रशस्तियों की देववाणी संस्कृतभाषा में रचना की, जो महारावल समरसिंह के सातसौ वर्ष पूर्व के इतिहास पर कुछ न कुछ प्रकाश अवश्य डालती हैं।

ऐसा पाया जाता है कि युद्धजनक परिस्थितियों के कारण उस समय भी 'गुहिलवंशी नरेशों को कितनी ही बार राजधानियाँ बदलनी पड़ी थीं। शत्रुओं द्वारा राजधानियां नष्ट-भ्रष्ट हुई । कभी नागदा, कभी आहाड़ और कभी चित्तौड़ इस प्रकार राजधानियों के परिवर्त्तन एवम् फिर शत्रुओं का आक्रमण हो तो इतिहास की सम्पूर्ण सामग्री सुरक्षित रहना असम्भव है। इस अवस्था में महारावल समरसिंह (जो प्राप्त शिलालेखों के आधार पर पाया जाता है कि आठवीं शताब्दी से चवदहवीं तक के गुहिलवंशी नरेशों में विद्वान् और इतिहास-प्रेमी राजा था) नष्ट होते हुए स्ववंश के इतिहास को सुरक्षित रखने के लिये प्रेरित हुआ और उसने चित्तौड़ के निवासी वेदशर्मा नामक ब्राह्मण विद्वान् द्वारा बड़ी-बड़ी प्रशस्तियों की रचना करवा चित्तौड़ तथा आबू में स्थापित करवाई, कम महत्व की बात नहीं है। इनमें से चित्तौड़ की प्रशस्ति का तो पूर्व भाग जिसमें राजा नरवर्मा तक का वर्णन है विद्यमान है और आगे का भाग दूसरी पट्टिका नष्ट हो जाने से अप्राप्य है; जिससे दो सौ वर्ष तक का वर्णन ठीक-ठीक नहीं मिलता है और इसकी पूर्ति अबतक नहीं हो सकी है । यह डॉ० ओझा के परिश्रम का फल है कि उन्होंने अपनी खोज से इस अवधि का इतिहास भी दिया है । आबू की प्रशस्ति इस समय भी विद्यमान है और यह प्रकट करती है कि महारावल समरसिंह का आबू पर भी अधिकार रहा हो ।

चित्तौड़ और आबू की प्रशस्तियों की ऐतिहासिक दृष्टि से अबतक परीक्षा नहीं की गई है । ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो उसमें गुहिलवंश के इतिहास की बहुत सी सामग्री मिलेगी । (सम्पा० टि०)

‡ चीरवा गांव की प्रशस्ति वि० सं० १३३२ की नहीं होकर वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) की है। (संपा० टि०)

चैत्रगच्छ के जैन साधु भुवनसिंह सूरि के शिष्य रत्नप्रभसूरि ने तैयार किया जिसमें उपर्युक्त नरवाहन के लेख की नाईं बप्पक (वप्पक = बापा) का गुहिल के पुत्र के वंश में अर्थात् गुहिलोत वंश में होना बतलाया है[77] जिससे यह कहना अनुचित न होगा कि रावल समरसिंह के समय में भी ब्राह्मण विद्वानों की अपेक्षा जैन विद्वानों में इतिहास का विशेष ज्ञान था।

चौथी वंशावली महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के समय के राणपुर के जैन मन्दिर के वि० सं० १४९६ के लेख से है, जिसमें शक्तिकुमार तक की वंशावली उपर्युक्त आबू के वि० सं० १३४२ के लेख के अनुसार ही है। उसमें भी बप्प (बापा) को गुहिल का पिता लिखा है जो स्वीकार करने योग्य नहीं है।

पाँचवीं वंशावली महाराणा कुंभकर्ण के समय के कुंभलमेरु (कुंभलगढ़) के किले के मामादेव के मंदिर की वि० सं० १५१७ की बड़ी प्रशस्ति से है। उक्त प्रशस्ति की रचना के समय के बहुत पूर्व से ही मेवाड़ के राजवंश की संपूर्ण और शुद्ध वंशावली उपलब्ध नहीं थी। उसको ठीक करने का यत्न उस समय अनेक प्राचीन प्रशस्तियों के आधार से किया गया[78]। बापा को उसमें कहाँ स्थान देना इसका भी विचार हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि चित्तौड़, आबू और राणपुर के मंदिर के लेखों में बापा को गुहिल का पिता माना था जिसको स्वीकार न कर गुहिल के पांचवें वंशधर शील (शिलादित्य) के स्थान पर बप्प[79] (बापा) का नाम धरा। उसीके आधार पर कर्नल टॉड ने भी शील को ही बापा और उसका वि० सं० ७८४ में चित्तौड़ लेना माना। परन्तु यदि उस समय उक्त शील (शिलादित्य) का वि० सं० ७०३ का शिलालेख मिल जाता तो सम्भव है कि कर्नल टॉड शील को बापा न मान कर उसके किसी वंशधर को बापा मानते।

बापा का वि० सं० ८१० में संन्यास लेना ऊपर बतलाया जा चुका है और पिछले कितने एक शिलालेखों[80] तथा ख्यातों[81] में खुंमाण को

---

77 देखो ऊपर, टिप्पण १०।

78 देखो ऊपर, टिप्पण ५४।

79 तस्मिन् गुहिलवंशेभूद्भोजनामावनीश्वरः।
तस्मान्महींद्रनागाह्वो वप्पाख्यश्चापराजितः ॥१३९॥
(कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति)

80 तां रावलख्यां पदवीं दधानो वापाभिधानः स रराज राजा ॥१९॥
ततः खुमाणाभिधरावलोस्मात्.........॥२०॥
(राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३)

81 रावल खूमाण बापा रो तिणरो कवित (मूंहणोत नैणसी की ख्यात, पत्रा १, पृ० २)।

गुरु ने कहा कि पान तेरे पैर पर गिरा है इस लिये मेवाड़ की भूमि तेरे वंशजों के पैरों से कभी न निकलेगी। यह आशीर्वाद पाने के बाद बापा अपने नाना मोरीराजा (मान) के पास चित्तौड़ में जा रहा और अन्त में चित्तौड़ का राज्य उससे छीन कर मेवाड़ का राजा हो गया[83]।

(२) दूसरी कथा यह है कि हारीत ने बापा की सेवा से प्रसन्न होकर स्वर्ग में जाते समय उससे कहा कि अमुक जगह १५ करोड़ मोहरें गड़ी हैं उनको वहाँ से निकाल कर सेना तैयार कर और चित्तौड़ के मोरी राजा को मार कर चित्तौड़ ले ले। बापा ने वैसा ही किया और उससे चित्तौड़ का राज्य ले लिया[84]।

(३) तीसरी कथा ऐसी है कि बापा ने हारीत से राज्य-चिन्ह रूपी पैर का सोने का कड़ा पाया और वह राजा बना[85]।

ये दंतकथाएँ और ऐसी ही दूसरी कथाएँ, जिनमें बापा का देवी के बलिदान के समय एक ही झटके से दो भैंसों के सिर उड़ाना, बारह लाख बहत्तर हज़ार सेना रखना, चार बकरे खा जाना, पैंतीस हाथ की धोती और सोलह हाथ का दुपट्टा धारण करना, ३२ मन का खड्ग रखना,[86] वृद्धावस्था में खुरासान आदि देशों को जीतना, वहीं रहकर वहाँ की अनेक स्त्रियों से विवाह करना, वहाँ उसके अनेक पुत्रों का होना, वहीं मरना, मरने पर उसकी अंतिम क्रिया के लिये हिंदू और वहाँ वालों में झगड़ा होना और अन्त में कबीर की तरह शव की जगह फूल ही रह जाना आदि लिखा मिलता है; ये बातें अतिशयोक्ति के साथ लिखी हुई होने के कारण विश्वासयोग्य नहीं मानी जा सकतीं। इन कथाओं का आशय यही है कि बापा के पास राज्य नहीं था वह अपने गुरु हारीतराशि की गौएँ चराया करता था, गुरु की कृपा से उसको राज्य मिला और वह गुहिल वंश में पहला प्रतापी राजा हुआ। इससे उसको 'आद्यः' (पहला) कहा है। ऐसी कथाओं पर विश्वास कर कोई-कोई यह अनुमान करते हैं कि

---

83 यह कथा कुछ हेर-फेर के साथ कर्नल टॉड ने लिखी है (राजस्थान, पृ० २३६–४१)। कर्नल टॉड ने शील को बापा मान लिया था जिससे शील के पिता नागादित्य (नाग) का भीलों के हाथ से मारा जाना लिखा है।

84 मुंहणोत नैणसी की ख्यात, पत्रा १, पृ० २।

85 वि० सं० १३४२ का आबू का लेख, श्लोक १०–११।

86 मुंहणोत नैणसी की ख्यात, पत्रा २, पृ० १०।

हारीत ने अन्त समय अपने शिष्य बापा को अपनी जागीर देकर राजा बनाया। कोई हारीत के दिए हुए धन से चित्तौड़ का राज छीनना मानते हैं। परन्तु हम उनसे सहमत नहीं हो सकते क्योंकि गुहिल वंश का राज्य तो गुहिल (गुहदत्त गुहादित्य) के समय से चला आता निश्चित है। ई० स० १८६६ में राजा गुहिल के २००० से अधिक चाँदी के सिक्के आगरे से गड़े हुए मिले जिनपर 'श्री गुहिल'[87] लेख है। इन सिक्कों से पाया जाता है कि गुहिल स्वतंत्र राजा था। जयपुर राज्य के चाकसू नामक प्राचीन स्थान से वि० सं० ११०० के आस-पास का गुहिलवंशियों का एक शिलालेख मिला है जिसमें गुहिलवंशी राजा भर्तृभट (प्रथम) से बालादित्य तक के १२ राजाओं के नाम दिए हैं[88]। वे चाकसू के आस-पास के इलाके पर, जो आगरे के प्रदेश के निकट था, राज्य करते थे। सिक्के एक जगह से दूसरी जगह चले जाते हैं यह निर्विवाद है, परन्तु एक ही जगह एक साथ एक ही राजा के २००० से अधिक सिक्कों के मिलने से यह भी संभव हो सकता है कि ये सिक्के वहाँ चलते हों और वहाँ तक उसका राज्य हो, जैसा कि मि० कार्लाइल का अनुमान है[89]। चाकसू का शिलालेख ई० स० की ग्यारहवीं शताब्दी तक पूर्व में मेवाड़ से बहुत दूर गुहिलवंशियों का राज्य होना सिद्ध करता है। गुहिल के उन सिक्कों से यह भी संभव हो सकता है कि गुहिल के पहले से भी इस वंश का राज चला आता हो जिसका कोई हाल अब तक हमको निश्चय के साथ नहीं मिला। काल पाकर पिछले लेखकों ने गुहिल के प्रतापी होने से उससे ही वंशावली लिखी हो। गुहिल से चौथा राजा शिलादित्य हुआ जिसके समय का वि० सं० ७०३ का शिलालेख मिला है जिसे पत्रिका की इसी संख्या में पंडित रामकर्ण जी ने संपादित किया है। इसमें उस राजा को शत्रुओं को जीतनेवाला, देव-द्विज और गुरुजनों को आनन्द देनेवाला और अपने कुल रूपी आकाश के लिये चन्द्रमा के समान बतलाता है। उक्त लेख से यह भी पाया जाता है कि उसके राज्य में शांति थी जिससे बाहर के महाजन लोग आकर वहाँ आबाद होते थे तथा लोग धन-संपन्न थे[90]। शिलादित्य (शील) के पुत्र या उत्तराधिकारी राजा अपराजित का वि० सं० ७१८ का शिलालेख नागदे के निकट के कुंडेश्वर के मंदिर से

87 कनिंगहाम, आर्किऑलॉजिकल् सर्वे रिपोर्ट, जि० ४, पृ० ९५।

88 एपि० इंडि० जि० १२ पृ० १३–१७।

89 कनिंगहाम; आर्किऑलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, जि० ४, पृ० ९५।

90 जयति विजयी रिपूनां (णां) देवद्विजगुरुजणा (ना) नन्दीः (न्दी)।
श्रीशिलादित्यो नरपति (तिः) स्वकुलाव (लाँव) रचन्द्रमापृथ्वीः (थ्याम)॥

मिला है, जिसमें लिखा है कि अपराजित ने सब दुष्टों को नष्ट किया, राजा लोग उसको शिर से वंदन करते थे, और उसने महाराज वराहसिंह को (जो शिव का पुत्र था, जिसकी शक्ति को कोई तोड़ नहीं सका था, और जिसने भयंकर शत्रुओं को परास्त किया था) अपना सेनापति बनाया था[91] इसी अपराजित का पौत्र बापा (कालभोज) बड़ा प्रतापी और पराक्रमी था और उसके सोने के सिक्के चलते थे। अपराजित और बापा के बीच के समय के लिये कोई ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि गुहिलवंशियों का राज्य नष्ट हो गया हो। ऐसी दशा में बापा के पिता का मारा जाना और उसकी माता का अपने पुरोहित नागर ब्राह्मणों के यहाँ जाकर नागदे में शरण लेना कैसे संभव हो सकता है? दंतकथाओं को देखते हुए यही प्रतीत होता है कि गुहिल के पिता के मारे जाने और उसकी माता के अपने नवजात पुत्र सहित नागर ब्राह्मणों के यहाँ जाकर शरण लेने की पुरानी कथा को ही फिर बापा के नाम के साथ चिपका दिया हो। गुहिल संबंधी कथा में नागदा के राजा का सोलंकी[92] होना लिखा मिलता है। शिलादित्य (शील) अपराजित और बापा का नागदे में राज्य करना निश्चित है तो फिर बापा के पिता के समय में वहाँ पर सोलंकियों का राज्य होना कैसे संभव हो सकता है। नागदा बापा के समय से पूर्व ही मेवाड़ के राजाओं की

---

91 राजा श्रीगुहिलान्वयामलपयोराशौ स्फुरद्दीधिति-
ध्वस्तध्वान्तसमूहदुष्टसकलव्यालावलेपान्तकृत ।
श्रीमानित्यपराजितः क्षितिभृतामभ्यर्चितो मूर्धभि-
र्वृत्तस्वच्छतयैव कौस्तुभमणिर्जातो जगद्भूषणम् ॥

शिवात्मजोखण्डितशक्तिसंप-
द्धुर्यः समाक्रान्तभुजंगशत्रुः ।
तेनेन्द्रवत्स्कन्द इव प्रणेता
वृतो महाराजवराहसिंहः ॥

एपि० इंडि०, जि० ४, पृ० ३१।

92 वि० सं० १७२४ के बने हुए राजविलास नामक काव्य में रघुवंशी गुहादित्य (गुहदित्त, गुहिल) का मेवाड़ में नागद्रहा (नागदा) नगर के सोलंकी राजा की पुत्री धनवती से विवाह होना लिखा है—

राजत श्रीरघुनाथवंश पाट रघुनाथ परम्पर ।
गुहादित्य नृप गरुअ धरा रक्षिपाल धर्मधुर ॥२४॥
मनहि ईस सुनि भूप राज रघुवंशी राजन ।
सुत व्हैहैं तुअ सकल सबल जमु बपत सुजानन ॥२६॥

राजधानी थी, उसीके पास एकलिंगजी का मंदिर है, जिसके पुजारी साधु वहाँ के राजाओं के गुरु थे। यदि वापा के हारीतराशि की गौ चराने की कथा की कोई जड़ हो तो यही हो सकती है कि उसने पुत्र-कामना या किसी अन्य अभिलाषा से अपने गुरु हारीतराशि की आज्ञा से गौ-सेवा का व्रत ग्रहण किया हो, जैसा कि राजा दिलीप ने अपने गुरु वसिष्ठ की आज्ञा से किया था जिसका उल्लेख महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश में किया है। ऐसे ही वापा के चित्तौड़ लेने की कथा के संबंध में यह कह सकते हैं कि उसने गुरु के बतलाए हुए गड़े हुए द्रव्य से नहीं, किंतु अपने बाहुबल से, चित्तौड़ का किला मोरियों से लिया हो और अपनी गुरुभक्ति के कारण इसे गुरु के आशीर्वाद का फल माना हो।*

मेदपाट महिमण्डले नागद्राहपुर नाम।
सोलंकी संग्रामसी धनवति सुता सुधाम ॥२६॥
निरखि वाल्हिका नाथ निज दिय पुत्री वरदान।
राजन वरि आये रमनि सुन्दर सची समान ॥३०॥

नागरीप्रचारिणी सभा का छपवाया हुआ राजविलास, पृ० १८–२०।

---

* वापा रावल के चित्तौड़ लेने के विषय में श्री ओझाजी ने यहाँ केवल स्थूल रूप से अनुमान किया है, जो परम्परागत जनश्रुतियों के आधार पर ही अवलम्बित है। वस्तुतः वापा द्वारा चित्तौड़ पर गुहिल-वंशियों का अधिकार होने का तत्समयक कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता। चित्तौड़ दुर्ग के कुकड़ेश्वर शिवालय के समीप मिले हुए वि० सं० ८११ माघ सुदि ५ (ई० स० ७५५) गुरुवार के राजा कुकड़ेश्वर के समय के शिलालेख का उल्लेख करते हुए कर्नल टॉड ने उक्त मन्दिर तथा कुण्ड राजा कुकड़ेश्वर का बनवाना लिखा है (टॉड, एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑव राजस्थान, जि० ३, पृ० क्रुक्स सम्पादित)। एकलिंग-माहात्म्य के आधार पर वापा रावल का राज्य त्याग का समय वि० सं० ८१० (ई० स० ७५३) माना गया है और इस ही निबन्ध में वर्णित एक संस्कृत काव्य में जिसमें महाराणा प्रतापसिंह तक का वर्णन है, वापा रावल के लिये उल्लेख है—

'वापाभिधः सम(भ)वत् वसुधाधिपोसौ
पंचाष्ठपट्परिमितेव स(श)केंद्र कालौ(ले)।'

इन विभिन्न बातों से सन्देह होता है कि वापारावल ने चित्तौड़ लिया होता तो उसके सन्यास ग्रहण करने के केवल एक वर्ष पीछे अथवा उसके जीवित काल में कुकड़ेश्वर वहाँ अपनी तरफ से शिवालय नहीं

७–मध्यकालीन भारत का एक अज्ञात राजवंश

भारतवर्ष का प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास अभी तक अधिकांश अंधकार में ही है। अनेक विद्वानों के अगाध परिश्रम से असंख्य ताम्रपत्र, शिलालेख, सिक्के, प्राचीन ग्रन्थ आदि उपलब्ध हुए हैं, जिनसे अनेक अज्ञात राजवंशों का अल्पाधिक इतिहास ज्ञात हुआ है। फिर भी अभी ऐसे अनेक अज्ञात वंश होंगे, जिनका वृत्तांत नहीं मिला है। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी की बनी हुई कल्हण-कृत राज-तरंगिणी में छत्तीस राजवंशों का उल्लेख है, परन्तु उसमें उन के नाम नहीं दिये हैं। पंद्रहवी शताब्दी के बने हुए कुमारपाल-प्रबन्ध में तथा पृथ्वीराज-रासो में भी, जिस का वर्त्तमान रूप सोलहवीं शताब्दी से पुराना नहीं है, छत्तीस राजवंशों के नाम मिलते हैं। इन्हीं के आधार पर कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के बृहत् इतिहास में उन के नाम दिये हैं। कुमारपाल-चरित और रासो के कर्त्ताओं ने अपने समय के आसपास के उन्हीं राजवंशों के नाम दिये हैं, जो उन के समय में ज्ञात थे। बहुत पहले होने वाले राजवंशों में से अनेक का उल्लेख उन में नहीं है, जैसे–शुंग, काण्व, आंध्र, क्षत्रप, गुप्त, मौखरी, वाकाटक, पाल, सेन, गंग, कदंब आदि। ऐसे वंशों में कई प्रकाश में आ चुके हैं, और कई अभी तक अज्ञानांधकार में पड़े हैं। ऐसे ही एक अज्ञात वंश का परिचय इस निबंध में दिया जायगा।

अनुमानतः सत्तर वर्ष पूर्व गुप्त संवत् ५८५ (विक्रम संवत् ९६१) फाल्गुन सुदि ५, का एक दानपत्र—दो पत्रों का काठियावाड़ के मोरवी राज्य में मिला था परन्तु पीछे से उसका पहला पत्र खो गया। दूसरा पत्र इतिहास-प्रेमी मेजर (पीछे कर्नल) वाटसन ने प्रोफेसर (पीछे डाक्टर सर) रामकृष्ण गोपाल भांडारकर के पास भेजा। उनहोंने इस ताम्रपत्रको पढ़कर उसे ईसवी सन् १८७३ में "इण्डियन ऐंटिक्वेरी"* में प्रकाशित कराया। केवल दूसरा ही पत्रा होने से

* इण्डियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द २, पृष्ठ २५७-२५८।

बनवा सकता ? कुकड़ेश्वर के विषय में अधिक पता लगाने का साधन नहीं है, तथापि स्थूल रूप से इसको कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार राजा नागभट्ट (प्रथम) का पुत्र ककुत्स्थ (कक्कुक) मानना पड़ेगा। क्योंकि यह समय रघुवंशी प्रतिहारों के उत्थान का था, एवम् नागभट्ट तथा ककुत्स्थ बापा रावल के सम-सामयिक थे। इस शिलालेख का अब पता ही नहीं है यही कारण है कि वीरविनोद के कर्ता महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास और डॉ० ओझा उस पर अपना अभिमत प्रकट नहीं कर सके हैं, तथा साधन के अभाव में परम्परागत कथाओं को ही उन्होंने ग्रहण किया है (सम्पा० टि०)।

ताम्रपत्र का पूरा हाल ज्ञात न हो सका, परन्तु उसके अंत में दान देनेवाले राजा के हस्ताक्षर—स्वहस्तोयं श्रीजाईकस्य—खुदे थे जिससे इतना तो ज्ञात हुआ कि यह दानपत्र "जाईक" नाम के किसी राजा का दिया हुआ है। "जाईक" किस वंश का था, इस विषय में उस समय कुछ भी ज्ञात न हो सका।

सात वर्ष पीछे काठियावाड़ के ओखामंडल के "धिनिकि" गाँव से एक ताम्रपत्र दो पत्रों में खुदा हुआ "जाईकदेव" नाम के राजा का मिला जिस को प्रसिद्ध पुरातत्त्व-वेत्ता डाक्टर ब्युहलर (Buhler) ने "इंडियन ऐंटिक्वेरी" * में प्रकाशित किया। इस के प्रारम्भ का अंश इस प्रकार है—

ॐ स्वस्ति विक्रमसंवत्सरशतेषु सप्तसु चतुर्नवत्यधिकेष्वंतकः ७९४ कार्तिकमास अपरपक्षे अमावास्यायां आदित्यवारे ज्येष्ठानक्षत्रे रविग्रहणपर्व्वणि। अस्यां संवत्सरे मास पक्ष दिवस पूर्व्वायां तिथावद्येह भूमिलिकायां सो (सौ) राष्ट्रमंडलाधिपतिः परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वरः श्री जाईकदेवः

इस से ज्ञात होता है कि जाईकदेव नाम का राजा विक्रम संवत् ७९४ में विद्यमान था और वह सौराष्ट्रमंडल (दक्षिणी काठियवाड़) का स्वामी था और उस के विरुद परमभट्टारक, महाराजाधिराज और परमेश्वर थे। डॉक्टर भांडारकर का प्रकाशित किया हुआ ताम्रपत्र गुप्त संवत् ५८५ (विक्रम संवत् ९६१) का था और यह विक्रम संवत् ७९४ का। परन्तु इन दोनों की लिपियों में बड़ा अन्तर पाया गया। डाक्टर भांडारकर के प्रकाशित किये हुए ताम्रपत्र की लिपि अधिक प्राचीन थी। लिपि तथा संवत् पर विचार करने से डॉक्टर ब्युहलर का प्रकाशित किया हुआ ताम्रपत्र पीछे से बनावटी माना गया। डॉक्टर ब्युहलर ने "जाईकदेव" को "जेठवा" वंश का अनुमान किया था। जेठवा वंश के राजाओं को उन के भाट हनुमान के वंशज बतलाते हैं जिस से लोग उन्हें "पूंछड़िया" भी कहते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व काठियावाड़ के जामनगर (नवानगर) राज्य के "गूंमली" (भूमली) नामक प्राचीन नगर के निकट सड़क के पास खुदाई करते समय बारह ताम्रपत्र जमीन से निकल आये जो छः अलग-अलग दानों के सूचक हैं। इन से जाईक के वंश और उस के पूर्वजों का निश्चय हो गया। पहले दानपत्र का केवल पहला ही पत्रा मिला है, दूसरे के तीन पत्रे हैं और बाकी प्रत्येक के दो-दो पत्रे हैं। इन तमाम पत्रों की भाषा कादंबरी की भाषा के सदृश प्रौढ़ दीर्घ-समास-युक्त संस्कृत है। इनका नागरी अक्षरांतर जामनगर राज्य ने अपने यहाँ के सुप्रसिद्ध विद्वान महामहोपाध्याय हाथी भाई हरिशंकर शास्त्री द्वारा

* इण्डियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द १२, पृष्ठ १५५।

गुजराती अनुवाद सहित प्रकाशित कराया है, जिसके लिये तमाम पुरातत्ववेत्ता और इतिहास-प्रेमी जामनगर राज्य और शास्त्री हाथीभाई के अनुगृहीत हैं। इनको प्रकाश में लाने का श्रेय महामहोपाध्याय हाथीभाई हरिशंकर शास्त्री को ही है। मेरा श्रम तो केवल उन की शोध को हिंदी भाषा-भाषियों के सम्मुख रख देने के लिए ही है। केवल टिप्पण का अंश मेरा है। इन ताम्रपत्रों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रथम दानपत्र

यह सोलह इंच लंबा, पौने तेरह इंच चौड़ा, बाईस पंक्तियों में खुदा हुआ है। इस में कड़ियों के लिए दो छेद बने हुए हैं। * इस का केवल पहला ही पत्रा प्राप्त होने के कारण इस का समय ज्ञात नहीं हो सका।

सारांश केवल इतना ही है कि "सैंधव" वंश (जयद्रथ वंश) में सब "महाशब्द" धारण करने वाला "महासामंत कृष्णराज" हुआ। उसका पुत्र "महासामंत" अग्गुक हुआ और अग्गुक का पुत्र "महासामंत राणक" हुआ। वह अपने मंत्री, पुरोहित, अमात्य सेनापति, युवराज, राजस्थानीय, बलाधिकारी आदि सब राजपुरुषों को, वहाँ के ब्राह्मण मुखियाओं को, वणिक् महत्तरों (महताओं) और कुनबियों को सूचित करता है कि मैंने अपने राज्य के पच्छत्री परगने का भोटालिका नाम का ग्राम रानी क्षेमेश्वरी.........(के समक्ष अमुक को दान में दिया)।

द्वितीय दानपत्र

यह तेरह इंच लंबे और पौने नव इंच चौड़े तीन पत्रों पर ४५ पंक्तयों में खुदा हुआ है। पहले पत्रे में बारह, दूसरे में पन्द्रह और तीसरे में अट्ठारह पंक्तियाँ हैं। ये तीनों पत्रे दो तांबे की कड़ियों से जुड़े हुए हैं। कड़ी के ऊपर मत्स्य का चिह्न है। इस का आशय यह है—

स्वर्गलोक की अमरावती नगरी की स्पर्धा करने वाली भूतांबिलिका नगरी का स्वामी अपर सुराष्ट्रा-मंडल-मंडन, सैंधववंश-शिरोमणि और पंच महाशब्द प्राप्त करने वाला महासामंत श्रीमान् अग्गुक हुआ। उसका पुत्र राणक हुआ

---

*ताम्र-पत्र प्रायः एक ही पत्रे पर बहुधा एक ही तरफ, खुदे हुए मिलते हैं। कभी-कभी जब दान पत्र लम्बा होता था तो दो या अधिक पत्रों पर खुदवाया जाता था और उस अवस्था में सब पत्रों में, समान रेखामें दो-दो छिद्र कर दिये जाते थे जिनमें कड़ी डालकर पत्रों को एक दूसरे से जोड़ दिया जाता था। और कभी-कभी कड़ी पर राजवंश का चिह्न भी खोद दिया जाता था। ऐसे ताम्रपत्रों के भीतर के दोनों पार्श्व खुदे हुए नहीं होते हैं, बाहरी पार्श्व खुदे हुए नहीं होते, जिस का कारण यह है कि अक्षर घिसकर मिट न सकें।

राणक का पुत्र कृष्ण राज हुआ और उसका ज्येष्ठ पुत्र अग्गुक हुआ। कृष्णराज का वैमात्र भाई जाईक अग्गुक को सिंहासनच्युत करके गद्दी पर बैठा। चापि-रिपु-समुदाय को पराभव करने वाला श्री जाईक अपने सब मंत्रियों, पुरोहित, अमात्य, जनपद, युवराज आदि समस्त राजपुरुषों, ब्राह्मणों, वणिक, महत्तरों, कुटुंबी लोगों को प्रकट करता है कि मैं ने ढंकतीर्थ ग्राम गुल्मिका गाँव की आय के दशांश सहित सोमेश्वर के निवासी चतुर्वेदी सांकृत्यगोत्री ब्राह्मण कल्याण के पुत्र माधव को दान में दिया। नीचे राणक के पुत्र महासामंत जाईक के हस्ताक्षर हैं। इस दानपत्र का दूतक महत्तम बाण कवि है। यह दानपत्र गुप्त संवत् ५१२ (विक्रम संवत् ८८८) का है।

तृतीय दानपत्र

यह तेरह इंच लंबे और दस इंच चौड़े दो पत्रों पर खुदा हुआ है। प्रत्येक पत्रे में दो-दो छेद हैं और दो तांबे की कड़ियों से दोनों शामिल जुड़े हुए हैं। पहले पत्रे में अट्ठारह और दूसरे में उन्नीस पंक्तियाँ हैं और दूसरे पत्रे के अन्त में मत्स्य का चिह्न है। सारांश यों है—

भूतांबिलिका नगरी में अपरसुराष्ट्रा-मंडल-मंडन सैंधव-वंश-शिरोमणि श्री अग्गुक हुआ। उस का पुत्र राणक हुआ। वह चापि-रिपुओं से लड़ा। उस का पुत्र जाईक हुआ। वह अपने सब अधिकारियों, ब्राह्मणों, वणिक, वैश्य, महत्तर, कुटुंबी आदि को सूचित करता है कि मैंने अपने राज्यान्तर्गत पच्छत्री प्रदेश का दधिपद्र नाम का गांव श्री भिन्नमाल के निवासी चतुर्वेदी वत्सगोत्री ब्राह्मण भट्टस्वामी को दिया। अन्त में महासामंत जाईक के हस्ताक्षर हैं और इस दानपत्र का दूतक प्रतिहार कृष्ण है।

चतुर्थ दानपत्र

यह पौने तेरह इंच लंबे और पौने नव इंच चौड़े दो पत्रों में खुदा हुआ है। ये दोनों पत्रे एक कड़ी में जुड़े हुए हैं। पहले पत्रे में चौवीस और दूसरे में बीस पंक्तियां हैं। दूसरे पत्रे के नीचे मत्स्य का चिह्न है।

सारांश—भूतांबिलिका नगरी में अपरसुराष्ट्रामंडल का मंडन सैंधव-वंश शिरोमणि महासामन्त श्रीजाईक हुआ। उसका पुत्र महासामन्त अग्गुक हुआ और उसका पुत्र महासामन्त राणक हुआ। वह अपने मंत्री; पुरोहित, अमात्य युवराज, सेनापति आदि समस्त राजपुरुषों तथा वहाँ के रहने वाले ब्राह्मण, महाजन, वध्य, महत्तर कुटुम्बी आदि को सूचित करता है कि सुवर्ण-मञ्जरी जिले के बीपलपद्र नाम के ग्राम का आधा भाग दण्डिनभट्ट गाँव के भट्टशंखधर के पौत्र, पूर्ण के पुत्र, वशिष्ठगोत्री, ऋग्वेदी, कार्पटिक शिवरुद्र ने हरि, हर, सूर्य, गणपति तथा मातृकाओं के प्रति भक्त होने के कारण दान कर दिया था।

उसी गांव का दूसरा आधा भाग एक देवालय के मठपति को इस अभिप्राय से दिया जाता है कि अब इस सारे गांव की आय वहाँ के टूटे हुए देवालय, मठ, बावली, कूए तालाव की मरम्मत में लगायी जावे। इस के नीचे राणक के हस्ताक्षर हैं। इस का दूतक युवराज जाईक है। समय गुप्त संवत् ५५५ है।

पञ्चम दानपत्र

यह साढ़े चौदह इंच लंबे और साढ़े नव इञ्च चौड़े दो पत्रों में खुदा हुआ है। ये पत्रे दो कड़ियों में जुड़े हुए हैं। पहले पत्रे में अठ्ठारह और दूसरे में उन्नीस पंक्तियां हैं। अन्त में मत्स्य का चिह्न है।

सारांश-- सैन्धव वंश का शिरोमणि अपर-सुराष्ट्रा-मंडल-मंडन महासामन्त जाईक हुआ। उस का पुत्र महासामन्त चामुंडराज हुआ। उस का पुत्र अग्गुक हुआ। गुप्त संवत् ५६७ की आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण के समय अग्गुक ने अपने राज्य के स्वर्णमञ्जरी जिले का हरिषेणालक ग्राम कच्छ-देश के गोमूत्रिका ग्राम के रहने वाले वत्सगोत्री, यजुर्वेदी, गुहेश्वर के पुत्र रुद्र और सागर को दान किया।

षष्ट दानपत्र

यह साढ़े तेरह इंच लंबे और साढ़े दस इंच चौड़े दो पत्रों में खुदा हुआ है। ये दोनों पत्रे दो कड़ियों से जुड़े हुए हैं। पहले पत्रे में इक्कीस और दूसरे में बीस पंक्तियां हैं।

सारांश—जयद्रथ के वंश में अपरसुराष्ट्रा-मंडल का मंडन श्री पुष्यदेव हुआ उसका पुत्र कृष्णराज हुआ। उसका पुत्र अग्गुक और उसका पुत्र राणक हुआ। राणक का पुत्र जाईक और जाईक का पुत्र चामुंडराज हुआ। उसका पुत्र अग्गुक हुआ और अग्गुक का पुत्र महासामन्त जाईक हुआ। वह अमात्य, युवराज, राजपुत्र, देशाधिपति आदि समस्त राजपुरुषों को विदित करता है कि उसने स्वर्ण स्वर्णमंजरी जिले का छंपाणक गांव भिन्नमाल देश से आये हुए नन्न सेठ के बनवाये हुए नन्नाम्बिका मन्दिर के खर्च के लिए भेंट किया। इस गांव की आय का चतुर्थांश प्रतिदिन ब्राह्मण-विद्यार्थियों के भोजन-खर्च में लगाने और बाकी का तीन चतुर्थांश कभी कोई अधिक खर्च होने पर लगाने के लिए रखने का आदेश किया गया। गुप्त संवत् ५९६, आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा।

टिप्पण

१—इन ताम्रपत्रों में सैंधव अर्थात् सिंध के राजा जयद्रथवंशीय बारह राजाओं के वंशक्रम के अतिरिक्त उनके शासन आदि के संबंध में कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। केवल कहा गया है कि उनमें से कई-एक चापि-रिपुओं

से लड़े थे। चापि-रिपुओं का अभिप्राय चापि-वंशीय शत्रु भी हो सकता है और चापियों के शत्रु भी। प्रथम अर्थ अधिक संभव है। ये चापि, चाप या चापोत्कट अर्थात् चावड़ा ही होने चाहिए; जो उस समय काठियावाड़ में थे और रघुवंशी प्रतिहारों के अधीन थे।

२—वंश-परिचय—पांच दानपत्रों में इन राजाओं के वंश का नाम सैंधव वंश लिखा है परन्तु छठे में सैंधव के स्थान पर जयद्रथवंश लिखा है। जयद्रथ सिंध का राजा था। इसी से उस के वंश को सैंधव वंश भी कहा गया है। वह सिंध देश के राजा वृद्धक्षत्र का पुत्र था और उसका विवाह धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला से हुआ था। तथा महाभारत युद्ध में कौरवों के पक्ष में रहकर लड़ा था और उसका शिरच्छेद अर्जुन ने किया था।*

संभव है कि सिंध पर मुसलमानों का अधिकार होने के समय ये जयद्रथ वंशीय क्षत्रिय राजा सिंध छोड़कर काठियावाड़ में आ रहे हों और वहां उन को जागीर मिली हो। ये राजा अपने को महासामंताधिपति लिखते हैं जिस से निश्चिय है कि ये दक्षिणी काठियावाड़ में रहते समय किसी स्वतन्त्र राजा के सामंत थे। यद्यपि इन ताम्रपत्रों में उस राजा का या उसके वंश का नाम नहीं दिया गया है तो भी यह निश्चित है कि ये कन्नौज के रघुवंशी प्रतीहारों के सामंत थे जिन का राज्य उन दिनों सारे काठियावाड़ पर भी था।

अलग-अलग दान-पत्रों के अनुसार वंशक्रम इस प्रकार है—

दानपत्र	६	१	२		३	५	४
वंशक्रम	पुष्यदेव	—	—		—	—	—
	कृष्णराज	कृष्णराज	—		—	—	—
	अग्गुक	अग्गुक	अग्गुक		अग्गुक	—	—
	राणक	राणक	राणक		राणक	—	—
	जाईक	+	कृष्णराज	जाईक (५१२)	जाईक	जाईक	जाईक
	चामुण्डराज		अग्गुक	+	+	चामुण्डराज	अग्गुक
	अग्गुक		×			अग्गुक (५६७)	राणक (५५५)
	जाईक (सं० ५६६)					+	जाईक युवराज

* महाभारत, आदिपर्व, अध्याय ६८, श्लोक ११०; अध्याय १३१, श्लोक १८, द्रोणपर्व, अध्याय १४७, श्लोक ७१-७५।

सब को एक साथ मिलाने से वंशवृक्ष इस प्रकार बनता है—
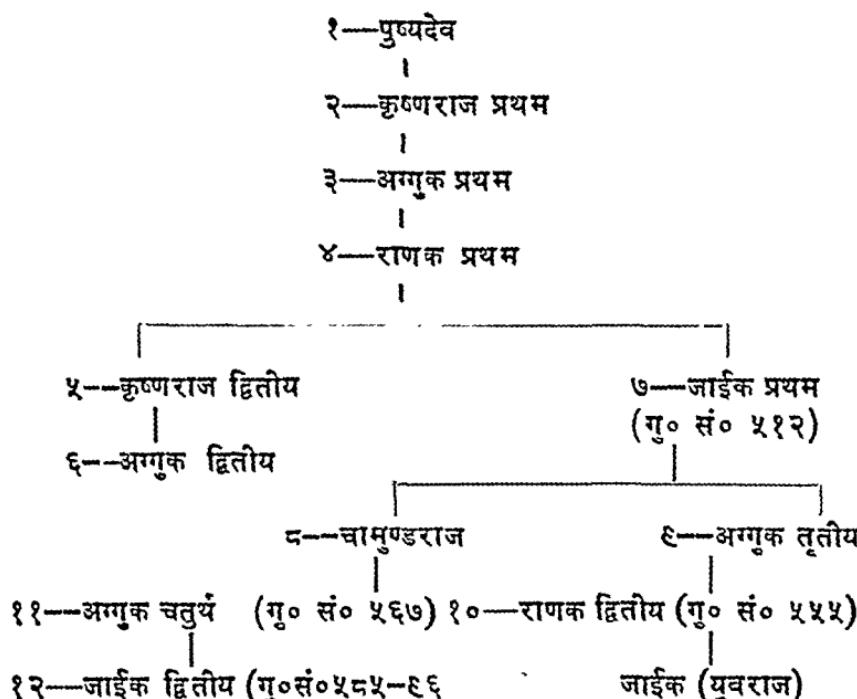
पुष्यदेव के प्रपौत्र राणक प्रथम के दो पुत्र हुए—कृष्णराज और जाईक। कृष्णराज के बाद उस का पुत्र अग्गुक द्वितीय गद्दी पर बैठा, जिसको हराकर जाईक राजा बन गया। जाईक प्रथम के दो पुत्र हुए और उनसे दो शाखाएँ चली हों। दोनों में कौन सी शाखा बड़ी थी, इसका निश्चय नहीं हो सकता, परन्तु अग्गुक की शाखा को बड़ी मानने से कठिनाई नहीं रहती। अग्गुक के बाद राणक राजा हुआ। उसके जाईक नामक युवराज था। जो सं० ५५५ में वर्त्तमान था। वह संभवतः राजा नहीं हो सका। इसलिए राणक द्वितीय के पश्चात् राज्य, चामुंडराज-वाली शाखा के हाथ में चला गया। चामुंडराज का लड़का अग्गुक चतुर्थ सं० ५६७ में विद्यमान था। उसके पश्चात् छठे दानपत्र में उल्लिखित जाईक द्वितीय राजा हुआ; जो डाक्टर भांडारकर-वाले दानपत्र का जाईक है।

३—भौगोलिक नामों का विवरण—

(१) अपर-सुराष्ट्रा-मंडल—काठियावाड़ का वह दक्षिणी हिस्सा जो समुद्र के निकट है।

(२) भूतांबिलिका—आजकल इसे घूमली कहते हैं। यह शब्द भूंमली से बना है। भूंमली और उसका प्राचीन रूप भूमिलिका दोनों भूतांबिलिका के अपभ्रंश हैं।

(३) स्वर्णमंजरी यह घूमली से पश्चिम में ओखामंडल की तरफ है।

(४) पिप्पलपद्र—इसका आधुनिक नाम पींपली है।

(५) हरिषेणालक—इसे अब हरियासण कहते हैं।

राजस्थानी (मा. प.), कलकत्ता, भाग ३, अंक १ जुलाई १६३६
(वि.सं.१६६६)

८—गुजरात देश और उस पर कन्नौज के राजाओं का अधिकार

प्राचीन काल में भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रदेशों अथवा विभागों के नाम विशेषतः उनके राज्यकर्त्ता क्षत्रियों के नाम से प्रसिद्धि में आए, जैसे कि यदु के भाई अनु के वंशधर राजा बलि के पांच पुत्रों–अंग, वंग, कलिंग, पुंड्र और सुह्म—से अनेक अधीनस्थ देशों के नाम अंग, वंग कलिंग, पुंड्र और सुह्म हुए*। इसी प्रकार यदुवंशी प्रतापी राजा शूरसेन के अधीन का देश शूरसेन, राजा शिवि के नाम से शिवि देश और आनर्त के नाम से आनर्त देश कहलाया। पिछले समय में भी ऐसा ही होता रहा है, जैसा कि जयपुर के कछवाहों के वंशधर शेखा तथा उनके वंशजों का देश-शेखावाटी, झाला के वंशजों अर्थात् झालों से झालावाड़ (राजपुताने में) और मेवाड़ के राजा गुहिल के वंशजों का अधीनस्थ प्रदेश गोहिलवाड़ (काठियावाड़ में) कहलाया। जिस देश पर काठियों का अधिकार रहा; वह काठियावाड़ नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी तरह भिन्न-भिन्न देशों पर राज्य करनेवाले राजा के लिये भी–चाहे वह किसी वंश का क्यों न हो–पीछे से संस्कृत साहित्य में वही देशवाची शब्द प्रयुक्त होने लगा †। फिर

---

* अंगो वंगः कलिंगश्च पुंड्रः सुह्मश्च ते सुताः।
तेषां देशाः समाख्याताः स्वनामकथिता भुवि ॥ ५३ ॥
अंगस्यांगो भवेद्देशो वंगो वंगस्व च स्मृतः।
कलिंगविषयश्चैव कलिंगस्य च स स्मृतः ॥ ५४ ॥
पुंड्रस्य पेंड्राः प्रख्याताः सुह्माः सुह्मस्य च स्मृतः।
—महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १०३।

† अपारपौरुषोद्गारं खंगारं गुरुमत्सरः।
सौराष्ट्रं पिष्टवानाजौ करिणं केसरीव यः ॥ २४ ॥
—कीर्त्तिकौमुदी, सर्ग १।

संवत् की नवीं शताब्दी के आस-पास एक शिलालेख में गुर्जरत्रा मंडल § के मंगलानक गांव का नामोल्लेख है। यह मंगलानक जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग का मंगलाना गांव है, जो मारोठ से १९ मील पश्चिम और डीडवाने से थोड़े ही अंतर पर है। हुएन्त्संग के कथन और इन दोनों लेखों से ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् की सातवीं से नवीं शताब्दी तक जोधपुर राज्य का उत्तर से दक्षिण तक सारा पूर्वी भाग गुर्जर देश (गुर्जरत्रा, गुजरात) के अन्तर्गत था। इसी प्रकार दक्षिण और लाट के राठोड़ों तथा मारवाड़ एवं कन्नौज के प्रतिहारों के बीच के युद्धों के वृत्तान्त से जाना जाता है कि गुर्जर देश की दक्षिणी सीमा लाट देश से जा मिली थी। अतएव जोधपुर राज्य का सारा पूर्वी भाग तथा उससे दक्षिण में लाट देश तक का वर्तमान गुजरात भी उस समय गुर्जर देश के अंतर्गत था। अब तो केवल राजपुताने के दक्षिण का प्रदेश ही गुजरात कहलाता है।

मारवाड़ पर से गुर्जरों का राज्य शीघ्र ही अस्त हो गया, परन्तु उस वंश की एक शाखा (जो भड़ौंच Broach तथा उसके आस-पास के प्रदेश पर शासन करती थी) का राज्य वहाँ पर विक्रम संवत् की आठवीं शताब्दी के मध्य के आस-पास तक बना रहा *। इस प्रकार गुर्जरवंशियों के अधिकार में रहने से

---

§ श्रीमद्गुर्ज्जरत्रमंडलांत:पातिमंगलानकविनिर्गत... ।

वही; जिल्द ५, पृ० २१० टिप्पण ३।

जोधपुर राज्य के घटियाला गाँव से मिले हुए मंडोर के प्रतिहार राजा कक्कुक के विक्रम संवत् ९१८ चैत्र शुदि २ के संस्कृत शिलालेख में 'गुर्ज्जरत्रा' और वहीं से मिले हुए उसी राज्य के उसी संवत् के प्राकृत (महाराष्ट्री) लेख में 'गुज्जरत्ता' नाम मिलता है, जो 'गुर्जरत्रा' का ही प्राकृत रूप है। इन दोनों लेखों के 'गुर्जरत्रा' शब्द का संबंध जोधपुर राज्य के अंतर्गत गुजरात के भाग से है। मेवाड़ के महाराणा कुंभकर्ण के समय के वि० सं० १४९६ के राणपुर के शिलालेख में गुजरात के सुलतान को 'गुर्जरत्रा सुरत्राण' कहा है। (प्रबलपराक्रमाक्रांतढिल्लीमंडलगुर्जरत्रासुरत्राणदत्तातपत्रप्रथितहिंदुसुरत्राणबिरुदस्य....। एन्युअल रिपोर्ट आफ दी आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया; ईसवी सन १९०७-८ पृष्ठ २१४-१५) इस लेख का 'गुर्जरत्रा' शब्द वर्तमान गुजरात का और गुर्जरत्रासुरत्राण, अहमदाबाद के सुलतान का सूचक है। 'कुमारपालप्रबंध' में वढ़ियार प्रदेश और पंचासर नगर (गुजरात और कच्छ के बीच का) का गुर्जरत्रा देश के अन्तर्गत होना लिखा है (पत्र १)। यहाँ भी गुर्जरत्रा शब्द वर्तमान गुजरात का सूचक है।

* बम्बई गैजेटियर, जिल्द १, भाग १, पृ० ११३-११८

(जेम्स कॅंपबेल द्वारा संपादित)

ही इस देश का गुजरात नाम प्रसिद्ध हुआ।

अब हम गुजरात पर राज्य करने वाले कन्नौज के राजाओं के संबंध में कुछ लिखते हैं। प्राचीन जनश्रुति के आधार पर लिखित महोपाध्याय जिनमंडनगणि रचित 'कुमारपालप्रबंध' में लिखा है कि छत्तीस राजवंशों में से चौलुक्य (सोलंकी) वंश का राजा भूयड ३६ लाख गाँव वाले कान्यकुब्ज (कन्नौज देश) के कल्याण कटकपुर में राज्य करता था। उस राजा ने अपनी पुत्री महणल्लदेवी को गुजरात देश कंचुक (काँचली) के निमित्त दे दिया'*। शास्त्री व्रजलाल कालिदास ने प्राचीन जैन ग्रन्थों का अवलोकन कर गुजरात के पुरातन इतिहास-संबंधी कई जनश्रुतियाँ प्रकाश में लाईं। व्रजलालजी ने लिखा है कि कन्नौज के आम नामक राजा ने अपनी पुत्री रत्नगंगा का विवाह वलभी के सूर्यवंशी राजा ध्रुवपट्ट से किया था, और अपना प्राप्त किया हुआ गुर्जर देश का राज्य रत्नगंगा के काँचली के निमित्त दे दिया †। शास्त्री जी ने कन्नौज के राजा आम को राष्ट्रकूट वंश का और 'कुमारपाल-प्रबंध' के कर्त्ता ने कन्नौज राज्य के कल्याणकटक के राजा को चौलुक्य अथवा सोलंकी माना है। केवल जनश्रुति पर आश्रित होने के कारण ये दोनों कथन विश्वास योग्य नहीं हैं। फिर भी इन दोनों कथनों से इतना तो निश्चित है कि कन्नौज के किसी राजा का गुजरात पर अधिकार अवश्य रहा था।

जेम्स कैंपबेल द्वारा संपादित बंबई गैजेटियर की पहली जिल्द के प्रथम भाग में प्रकाशित डाक्टर भगवानलाल इंद्रजी द्वारा लिखित, मि० ए. एम. टी. जैक्सन द्वारा संशोधित गुजरात के प्राचीन इतिहास में गुजरात पर शासन करने वाले कन्नौज के राजाओं का कोई इतिहास नहीं दिया गया। हड्डाला से मिले हुए वढवाण के महासामंताधिपति चापवंशी धरणीवराह के शक संवत ८३६ पौष सुदि ४ (वि० सं० ९७१) के दानपत्र में राजाधिराज महीपालदेव का नामोल्लेख है, जिसका सामंत धरणीवराह था। महीपालदेव का ठीक-ठीक पता न लगने के कारण इस लेख का संपादन करते समय प्रो० बूलर ने उसको काठियावाड़ का चूडासमा (यादव) राजा महीपाल मान लिया, ‡ जो वास्तव में कन्नौज का राजा था। कनाड़ी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि पंप के रचे हुए 'विक्रमार्जुनविजय' (पंपभारत) नामक काव्य में चोल के

* तत्र वंशा: षट्त्रिंशत्.....तेषु चौलुक्यवंशे षट्त्रिंशल्लक्षग्रामाभिरामे कान्यकुब्जदेशे कल्याणकटकपुरे श्रीभुवडराजा राज्यं करोति। तेन राज्ञा स्वपुत्र्या महणल्लदेव्या गुर्जरधरित्री कंचुकपदे दत्ता (कुमारपाल प्रबंध; पत्र १)।

† रासमाला का गुजराती अनुवाद (द्वितीय संस्करण), पृ० ३७, टिप्पण।

‡ इंडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द १२, पृष्ठ १९२।

सोलंकी राजा अरिकेसरी द्वितीय तथा उसके पूर्व पुरुषों का परिचय दिया गया है। उसमें पंप कवि ने लिखा है कि अरिकेसरी द्वितीय के पिता नरसिंह दूसरे ने (जो राठोड़ों का सामंत था) गुर्जरराज महीपाल को परास्त कर उसकी राज्यश्री छीन ली और उसका पीछा कर अपने घोड़ों को गंगा के संगम पर स्नान कराया† । पंपभारत की रचना पर उस कवि को अरिकेसरी द्वितीय ने शक संवत् ८६३ (वि सं० ९९८) में एक गांव दिया था‡ हड्डाला के दानपत्र में केवल महीपाल का ही उल्लेख मिलता है, परन्तु पंपभारत से उसके विषय में यह अधिक ज्ञात हुआ कि वह गुजरात देश का राजा था और उसकी राजधानी गंगा के निकट थी ।

पंपभारत में महीपाल को गुर्जरराज लिखा हुआ देखकर मि० जैक्सन ने भूल से यह मान लिया कि यह महीपाल गुर्जर अर्थात् गूजर वंश का था। 'गुर्जरराज' का वास्तविक अर्थ 'गुजरात (देश) का राजा' है। पीछे से कन्नौज के राजा भोजदेव का ग्वालियर से एक शिलालेख मिला। उक्त लेख से भोजदेव और उसके पूर्वपुरुषों का कन्नौज के स्वामी, प्रतिहारवंशी, और रामचन्द्र के भाई लक्ष्मण के वंशज होना ज्ञात हुआ। इस लेख का अँग्रेजी मे आशय प्रकाशित कर डाक्टर कीलहार्न ने कन्नौज के प्रतिहारवंशियों के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश डाला, क्योंकि इसी लेख में वहाँ के राजाओं को प्रतिहार लिखा मिलता है। जब मि० जैक्सन ने महीपाल के गुर्जरवंशी होने की कल्पना की, तब उसी के आधार पर श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने भिन्न-भिन्न प्रतिहारवंशियों का गूजरवंशी होना मान लिया। तब से कई अन्य ऐतिहासिकों ने अंधपरंपरा के अनुसार इस बात पर विश्वास कर सब वर्ण के प्रतिहारों का गूजर (गुर्जर) होना स्वीकार कर लिया, जो सर्वथा अविश्वसनीय है। आगे चलकर हम बतलावेंगे कि कन्नौज के प्रतिहारवंशी गुर्जर (गूजर) नहीं किंतु सूर्यवंशी क्षत्रिय थे।

ईस्वी सन् १९०२ में दिल्ली दरबार के साथ होने वाली प्रदर्शनी के समय मैंने जूनागढ़ (काठियावाड़ में) राज्य के ऊना गांव से मिले हुए दो ताम्रपत्र देखे और उन्हें महत्त्वपूर्ण जानकर मैंने वहीं उनके फोटो उतरवा लिए। फिर इन दोनों ताम्रलेखों का सारांश लिखकर मैंने अपने मित्र डाक्टर कीलहार्न (स्वर्गीय) के पास भेजा और उक्त पुरातत्त्ववेत्ता के विशेष आग्रह करने पर मैंने वे फोटो भी उनके पास भेज दिए; जिनके आधार पर उन्होंने वे दोनों ताम्रपत्र एपिग्राफिया इंडिका जिल्द ९, में प्रकाशित कर दिए। उनमें से पहला वलभी

† मेरा सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग पृष्ठ २०७।
‡ वही पृष्ठ २०७।

संवत् ५७४ (विक्रम संवत् ६५०) का सोलंकी राजा वलवर्मा के समय का है। यह वलवर्मा सोरठ पर शासन करने वाले सोलंकियों की एक शाखा का पाँचवाँ वंशधर था। और कन्नौज के परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमहेंद्रायुधदेव (महेंद्रपाल) का सामंत था* वि० सं० ६५६ का दूसरा दानपत्र उपर्युक्त वलवर्मा के पुत्र महासामंत अवनिवर्मा द्वितीय (योग) का है। यह अवनिवर्मा, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर भोजदेव का पुत्र और परमभट्टारक महाराजाधिराज महेंद्रपाल देव का सामंतA था†। वलवर्मा ने नक्षिसपुर की चौरासी (चौरासी गाँववाला प्रदेश) का जयपुर नामक ग्राम तरुणादित्यदेव नाम के सूर्यमंदिर को भेट किया, और अवनिवर्मा द्वितीय ने सौराष्ट्रमंडल के नक्षिसपुर की चौरासी का (अंबुलक) ग्राम जयपुर गाँव के निकटवाले उसी (तरुणादित्यदेव) सूर्यमंदिर को भेट किया। इन दोनों ताम्रपत्रों से यह निश्चिय हो गया कि पूर्वोक्त संवतों में सोरठ पर सोलंकी राज्य करते थे और वे कन्नौज के राजा भोजदेव के पुत्र महेंद्रपाल के सामंत थे। इससे यह भी निश्चित हो गया कि हड्डाला के ताम्रपत्र का महीपाल भी कन्नौज का ही राजा था और कन्नौज के राजाओं की अधीनता में चावड़े तथा सोलंकी दोनों वंशवाले काठियावाड़ में शासन करते थे।

गुजरात पर राज्य करने वाले कन्नौज के प्रतिहारवंशी राजाओं का संक्षिप्त परिचय देने से पूर्व हम प्रतिहार नाम के विषय में कुछ लिखना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि इस विषय को आधुनिक शोधकों ने वहुत कुछ भ्रमपूर्ण बना दिया है।

जिस प्रकार गुहिल, चौलुक्य (सोलंकी), चाहमान (चौहान) आदि राजवंशों के नाम उनके मूल पुरुषों के नाम से प्रचलित हुए हैं, वैसे प्रतिहार नाम वंशकर्त्ता के नाम से चलाया हुआ नहीं, राज्याधिकार पद से बना हुआ है। राज्य के भिन्न-भिन्न अधिकारियों में एक प्रतिहार भी था, जिस पर राजा के बैठने के स्थान अथवा निवास के महल के द्वार पर रहकर उसकी रक्षा करने का भार होता था। इस पद के लिये किसी जाति अथवा वर्ण विशेष का विचार नहीं रहता था. किंतु राजा के विश्वासपात्र पुरुष ही इस पद पर नियुक्त होते थे। प्रतिहार पद पाने के योग्य वही पुरुष समझा जाता था जो चेष्ठा एवं आकार

---

* एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ६, पृष्ठ ४–६।

† एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ६ पृष्ठ ६–१०।

A. 'यह अवनिवर्मा परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर भोजदेव के पुत्र-परम भट्टारक महाराजाधिराज महेंद्रपालदेव का सामंत था,' पढ़ना चाहिये। (संपा० टि०)

से ही मनुष्य को पहिचान जाय और बलवान्, रूपवान्, समय का ज्ञाता तथा स्वामिभक्त हो *। प्राचीन शिलालेखादि में प्रतिहार नाम मिलता है और भाषा में उसे पड़िहार कहते हैं। प्रतिहार नाम वैसा ही है जैसा कि पंचकुल (पंचोली)। पंचकुल राजकर वसूल करने वाले राजसेवकों की एक संस्था थी, जिसका प्रत्येक व्यक्ति पंचकुल कहलाता था। प्राचीन दानपत्रों में, शिलालेखों तथा 'प्रबंधचिंतामणि' आदि ग्रंथों में पंचकुल का उल्लेख मिलता है। राजपूताने में ब्राह्मण-पंचोली. कायस्थ-पंचोली, महाजन-पंचोली और गूजर-पंचोली है, जिनमें अधिकतर कायस्थ-पंचोली हैं, जिसका कारण यह है कि ये लोग विशेष कर राजाओं के यहाँ अहलकारी का पेशा ही करते थे। पंचकुल का पंचउल (पंचोल) और उससे पंचोली शब्द बना है। जैसे पंचोल नाम किसी जाति का सूचक नहीं, किंतु पद का सूचक है, वैसे ही प्रतिहार शब्द से किसी जाति-विशेष का नहीं किंतु पद का बोध होता है। इसी कारण शिलालेखादि में ब्राह्मण-प्रतिहार, चावड़ा-प्रतिहार, गुर्जर (गूजर)-प्रतिहार और रघुवंशी-प्रतिहारों का नामोल्लेख मिलता है। आधुनिक शोधकों ने प्रतिहार मात्र को गुर्जर (गूजर) मान लिया है; जो सर्वथा भ्रममूलक है।

मंडोर के प्रतिहार ब्राह्मण थे। उनके शिलालेखों से ज्ञात होता है कि हरिश्चन्द्र नामक विप्र (ब्राह्मण), जिसको रोहिल्लद्धि भी कहते थे, वेद और शास्त्रों का अर्थ जानने में पारंगत था। उसके दो स्त्रियाँ थीं—एक द्विज (ब्राह्मण) वंश की और दूसरी क्षत्रिय कुल की—जो बड़ी गुणवती थी। ब्राह्मणी से जो पुत्र उत्पन्न हुए वे ब्राह्मण-प्रतिहार कहलाए; और क्षत्रिय वर्ण की राज्ञी भद्रा से जो पुत्र जन्मे वे मद्य पीने वाले (अर्थात् क्षत्रिय) हुए †। मंडोर के प्रतिहारों के तीनों शिलालेखों से हरिश्चन्द्र का ब्राह्मण, एवं किसी राजा का प्रतिहार होना पाया जाता है। उसकी दूसरी स्त्री भद्रा को राज्ञी लिखा है, जिससे संभव है, कि हरिश्चन्द्र के पास जागीर भी हो। उसकी ब्राह्मण वंश की स्त्री के पुत्र ब्राह्मण-प्रतिहार कहलाए। जोधपुर राज्य में अब तक प्रतिहार

---

* इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो बलवान्प्रियदर्शनः।
समयज्ञः स्वामिभक्तः प्रतिहारः स इष्यते ॥ चाणक्यसंग्रह।

† विप्रः श्रीहरिचन्द्राख्यः पत्नी भद्रा च क्षत्रिया।....।
तेन श्रीहरिश्चन्द्रेण परिणीता द्विजात्मजा।]
द्वितीया क्षतृ (त्रि) या भद्रा महाकुलगुणान्विता।
प्रतिहारा द्विजा भूता ब्राह्मण्यां ये भवन्सुताः।
राज्ञी भद्रा च यान्सूते भूता मधुपायिनः ॥
राजपूताना म्यूजियम अजमेर में रखे हुए मूल लेख से।

ब्राह्मण * हैं, जो उसी हरिश्चन्द्र प्रतिहार के वंशज होने चाहिएं। उसकी क्षत्रिय वर्णवाली स्त्री भद्रा के पुत्रों की गणना उस समय की प्रथा के अनुसार मद्य पीनेवालों अर्थात् क्षत्रियों में हुई †। उन्होंने अपने बाहुबल से

* ईसवी सन् १९११ की जोधपुर राज्य की मनुष्य-गणना की हिन्दी रिपोर्ट हिस्सा, तीसरा; जिल्द पहली, पृष्ठ १६०।

† प्राचीन काल में प्रत्येक वर्ण का पुरुष अपने तथा अपने से नीचे वर्णों में विवाह कर सकता था, और ब्राह्मण पति का अन्य वर्ण की स्त्री से उत्पन्न हुआ पुत्र ब्राह्मण ही माना जाता था। ऋषि पराशर के पुत्र वेदव्यास की, जो धीवरी सत्यवती (योजनगंधा) से उत्पन्न हुए थे, गणना ब्राह्मणों में हुई। ऋषि जमदग्नि ने इक्ष्वाकुवंशी (सूर्यवंशी) क्षत्रिय रेणु की पुत्री रेणुका से विवाह किया, जिससे परशुराम का जन्म हुआ और उनकी भी गणना ब्राह्मणों में हुई। मनु के समय में कामवंश ब्राह्मण चारों वर्णों में विवाह कर सकता था, क्षत्रिय जाति की स्त्री से उत्पन्न ब्राह्मण-पुत्र-ब्राह्मण के समान माना जाता था, परन्तु वैश्य जाति की स्त्री से उत्पन्न होने वाला 'अंबष्ठ' और शूद्रा से उत्पन्न होनेवाला 'निषाद' कहलाता था।

स्त्रीष्वनंतरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान्।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान्॥ ६ ॥
अनन्तरासु जातानां विधिरेषः सुजात्तनः।
द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमं विधिम्॥ ७ ॥
ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्वष्ठो नाम जायते।
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते॥ ८ ॥

मनुस्मृति, अध्याय १०।

पीछे से याज्ञवल्क्य ने द्विजों के लिये शूद्रवर्ण की कन्या से विवाह करने का निषेध किया—

यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः।
नैतन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयम्॥ ५६ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय।

फिर तो क्षत्रिय वर्ण की स्त्री से उत्पन्न होनेवाले ब्राह्मण के पुत्र की गणना क्षत्रियवर्ण में होने लगी, जैसा कि शंख और औशनस आदि स्मृतियों से पाया जाता है।

यत्तु ब्राह्मणेन क्षत्रियायामुत्पादितः क्षत्रिय एव भवति क्षत्रियेण वैश्याया-मुत्पादितो वैश्य एव वैभवति वैश्येन शूद्रायामुत्पादितः शूद्र एव भवतीति शंखस्मरणम्।

मांडव्यपुर (मंडोर) का दुर्ग लेकर* वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। ये प्रतिहार पीछे से कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहारों के सामंत हुए †' ऐसा पाया जाता है। 'संगीतरत्नावली' से ज्ञात होता है कि उसका कर्त्ता चापोत्कट (चावड़ा) वंशी सोमराज, गुजरात के चौलुक्य राजा अजयपाल का प्रतिहार था ‡। अलवर राज्य के राजोरगढ़ नामक प्राचीन किले से मिले हुए विक्रम संवत् १०१६ माघ सुदि १३ के शिलालेख से पता लगता है कि उस समय राज्यपुर (राजोरगढ़) तथा आस-पास के प्रदेश पर गुर्जर वंश के प्रतिहार महाराजाधिराज सावट का पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर मथनदेव राज्य करता था, और वह परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर क्षितिपाल (महीपाल) के पुत्र विजयपाल का सामंत था §। यह विजयपाल कन्नौज का रघुवंशी प्रतिहार राजा था। उस शिलालेख में मथनदेव को 'महाराजाधिराज परमेश्वर' लिखा है, जिससे अनुमान होता है कि उसे कन्नौज के राजा विजयपाल के बड़े सामंतों में से होना चाहिए।

—याज्ञवल्क्यस्मृति; आचाराध्याय, श्लोक ९१ पर मिताक्षरा टीका।

नृपायां विधिना विप्राज्जातो नृप इति स्मृतः।

पूना की आनंदाश्रम ग्रंथावली में प्रकाशित 'स्मृतानां समुच्चय', में औशनस् स्मृति; पृ० ४७, श्लोक २८।

* चत्वारश्चात्मजास्तस्यां जाता भूधरणक्षमाः :
श्रीमान्भोगभटः कक्को रज्जिलो दद्द एव च ॥
माण्डव्यपुरदुर्गोस्मिन्नेभिर्निजभुजार्ज्जिते।...॥

एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द १८, पृ० ९५।

† मेरा 'राजपूताने का इतिहास;' जिल्द १ पृ० १५०–५१।

‡ क्षोणिकल्पतरुः समीकसुभश्चापोत्कटग्रामणीः
योगीन्द्रो नवचंद्र निर्मलगुणः स्फूर्जत्कलानैपुणः॥
श्रीचौलुक्यनरेन्द्र वेत्रितिलकः श्रीसोमराजः स्वयं
विद्वन्मण्डलमंडनाय तनुते संगीतरत्नावलीम् ॥ ५ ॥

§ परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीक्षितिपालदेवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीविजयपालदेवपादानामभिप्रवर्द्धमान कल्याणविजयराज्ये, संवत्सरशतेषु दशसु षोडशोत्तरकेषु माघमाससितपक्षत्रयोदश्यां शनियुक्तायामेवं सं० १०१६ माघसुदि १३ शनावद्य श्रीराज्यपुरावस्थितो महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमथनदेवो महाराजाधिराज श्रीसावटसूनुर्गुर्ज्जरप्रतिहारान्वयः कुशली....।

एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ३, पृ० २६६।

कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार राजाओं का, जिनका राज्य गुजरात पर था, वृत्तान्त आगे लिखा जायगा। राजोरगढ़ के शिलालेख में गुर्जर प्रतिहार शब्द देखकर आधुनिक शोधकों ने कन्नौज के इन राजाओं को गुर्जर अथवा गूजर वंश के मान लिया है, जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है और इसका संक्षिप्त विवेचन नीचे किया जाता है—

१—ग्वालियर से मिली हुई कन्नौज के प्रतिहार राजा भोजदेव (प्रथम) के समय की प्रशस्ति से जाना जाता है कि 'सूर्यवंश में मनु, इक्ष्वाकु, ककुत्स्थ आदि राजा हुए, उनके वंश में पौलस्त्य (रावण) को मारने वाले राम हुए; जिनका प्रतिहार* उनका छोटा भाई सौमित्र (लक्ष्मण) था, जो इंद्र का मानमर्दन करने वाले मेघनाद आदि के हराने वाला था†'। उसके वंश में नागभट आदि राजा हुए, जिनका वर्णन उक्त प्रशस्ति में किया गया है। आगे चलकर उसी प्रशस्ति में वत्सराज को इक्ष्वाकु वंश को उन्नत करनेवाला ‡ कहा है। इससे निश्चित है कि कन्नौज के प्रतिहार राजा रघुवंशी क्षत्रिय थे, न कि गुर्जरवंशी।

२—'काव्यमीमांसा' आदि अनेक ग्रंथों के रचयिता सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर ने, जो कन्नौज के प्रतिहार राजा भोज (प्रथम) के पुत्र महेन्द्रपाल (प्रथम) का गुरु (उपाध्याय) था और महेंद्रपाल तथा उसके पुत्र महीपाल के समय में भी कन्नौज में रहा था, अपनी 'विद्धशालभंजिका' नाटिका में अपने शिष्य महेंद्रपाल (निर्भयनरेंद्र) को 'रघुकुलतिलक' और 'बालभारत' में 'रघुग्रामणी

---

* यहाँ प्रतिहार शब्द का अर्थ द्वाररक्षक है।

† मन्विक्ष्वाकुककुस्थ (त्स्थ) मूलपृथवः क्ष्मापालकल्पद्रुमाः ।। २ ।।
तेषां वंशे सुजन्मा क्रमनिहतपदे धाम्नि वज्रेषु घोरं
रामः पौलस्त्यहिन्श्रं (हिंस्रं) क्षतविहितसमित्कर्म्म चक्रे पलाशैः।
श्लाघ्यस्तस्यानुजोसौ मघवमदमुषो मेघनादस्य संख्ये
सौमित्रिस्तीव्रदंडः प्रतिहरणविधेर्य्यः प्रतिहार आसीत् ।। ३ ।।

एन्युअल रिपोर्ट ऑफ दी आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया; ईस्वी सन् १९०३—४, पृष्ठ २८० ।

‡ तत्सूनुः प्राप्य राज्यं निजमुदयगिरिस्पर्द्धि भास्वत्प्रतापः
क्ष्मापालः प्रादुरासीन्नतसकलजगद्वत्सलो वत्सराजः····। ६ ।।
···एकः क्षत्रियपुङ्गवेषु च यशोगुर्वी धुरं प्रोव्दहन्
इक्ष्वाकोः कुलमुन्नतं सुचरितैश्चक्रे स्वनामांकितम् ।। ७ ।।
वही, पृ० २८०—८१ ।

(रघुवंशियों में अग्रणी), कहा है*। उसी कवि ने 'बालभारत' नाटक में महेंद्रपाल के पुत्र महीपाल को रघुवंश मुक्तामणि (रघुवंशी रूपी मोतियों में मणि के समान), एवं आर्यावर्त का महाराजाधिराज लिखा है†। राजशेखर के ये सब कथन ग्वालियर की प्रशस्ति के कथन की पुष्टि करते हैं।

३—शेखावाटी (जयपुर राज्य) के प्रसिद्ध हर्षनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति में, जो संवत् १०३० आषाढ़ सुदि १५ की साँभर के चौहान राजा विग्रहराज के समय की है, उक्त विग्रहराज के पिता सिंहराज के वर्णन में लिखा है कि 'उस विजयी राजा ने सेनापति होने के कारण उद्धत बने हुए तोमर (तवँर) नायक सलखण को मारा (या हराया, मूल लेख में 'हत्वा' या 'जित्वा' शब्द होगा जो जाता रहा है, केवल 'आ' की मात्रा बची है) और चारों ओर युद्ध में राजाओं को मारकर बहुतेरों को उस समय तक कैद में रखा, जब तक कि उनको छुड़ाने के लिये पृथ्वी पर का चक्रवर्ती रघुवंशी (राजा) स्वयं उसके यहाँ न आया‡।

इससे स्पष्ट है कि साँभर का चौहान राजा सिंहराज किसी चक्रवर्ती अर्थात् बड़े राजा का सामंत था। उस समय उत्तरी भारत में प्रबल राज्य प्रतिहारों का ही था, जिसके अधीन राजपूताने का अधिकांश ही नहीं, किंतु गुजरात, काठियावाड़, मध्यभारत (मालवा) एवं सतलज से लगाकर बिहार तक के प्रदेश थे। साँभर के चौहान भी पहले कन्नौज के प्रतिहारों के अधीन थे, क्योंकि उसी हर्षनाथ की प्रशस्ति में सिंहराज के पूर्वज गूवक (प्रथम) के संबंध में लिखा है कि उसने बड़े राजा नागावलोक (कन्नौज का राज्य छीननेवाला प्रतिहार राजा नागभट दूसरा) की सभा में 'वीर' कहलाने की प्रतिष्ठा पाई थी**। ऐसी दशा में सिंहराज की कैद से उन राजाओं को छुड़ाने वाला

---

* रघुकुलतिलको महेंद्रपालः (विद्धशालभंजिका, १, ६)।
देवो यस्य महेंद्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणिः—
('बालभारत' १, ११)

† तेन (= महीपालदेवेन) च रघुवंशमुक्तामणिना आर्यावर्तमहाराजाधिराजेन श्रीनिर्भयनरेन्द्रनंदनेनाधिकृताः सभासदः—(बालभारत)।

‡ ...तोमरनायकं सलव (ख?) णं सैन्याधिपत्योद्धतं
युद्धे येन नरेश्वरा प्रतिदिशं निर्न्ना(र्णा) शिता जिष्णुना।
कारावेश्मनि भूरयश्च विधृतास्तावद्धि यावद्गृहे
तन्मुक्तयर्थमुपागतो रघुकुले भूचक्रवर्ती स्वयम्।
एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द २, पृ० १२१-२२।

** आद्यः श्रीगूवकाख्या प्रथितनरपतिश्चाहमानान्वयोभूत्

रघुवंशी राजा कन्नौज का प्रतिहार राजा ही हो सकता है। सिंहराज का समकालीन कन्नौज का प्रतिहार राजा देवपाल या उसका छोटा भाई विजयपाल होना चाहिए। अतः उक्त प्रशस्ति से स्पष्ट है कि वि० सं० १०३० में साँभर के चौहान भी कन्नौज के प्रतिहारों को रघुवंशी मानते थे।

ऊपर उद्धृत किए हुए इन प्रमाणों से निश्चित है कि कन्नौज के प्रतिहार राजा रघुवंशी थे। इस प्रकार ब्राह्मण, चावड़े, गुर्जर और रघुवंशी, इन चार वंशों के प्रतिहारों का अब तक पता चला है। राजाओं के परम विश्वासपात्र पुरुषों को ही प्रतिहार पद दिया जाता था, उनको जागीरें भी मिलती थीं और समय पाकर कोई-कोई स्वतंत्र राजा भी बन जाते थे। कुतबुद्दीन एबक शहाबुद्दीन गोरी का गुलाम था, परन्तु पीछे से स्वतंत्र सुलतान होने पर उसका वंश गुलामवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी तरह ब्राह्मण, चावड़ा, गुर्जर आदि प्रतिहार प्रारंभ में प्रतिहार थे, परन्तु पीछे से सामंत अथवा स्वतंत्र राजा हो गए, जिससे उनसे भिन्न-भिन्न प्रतिहार वंश प्रसिद्ध हुए, किंतु प्रतिहारवंश मूलपुरुष से; नहीं प्रत्युत पद से ही प्रसिद्ध हुआ, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं।

रघुवंशी प्रतिहारों ने प्रथम चावड़ा से भीनमाल का राज्य छीना। फिर कन्नौज के महाराजा को अपने हस्तगत कर वहीं अपनी राजधानी स्थिर की, जिससे उनको कन्नौज के प्रतिहार भी कहते हैं। अब तक के शोध के अनुसार उनकी नामावली तथा संक्षिप्त वृत्तांत नीचे लिखा जाता है—

(१) नागभट—शिलालेखादि में कन्नौज के प्रतिहार राजाओं की नामावली नागभट से ही आरंभ होती है। उसको 'नागावलोक' भी कहते थे। भड़ौच जिले के अंक्लेश्वर तालुके के हांसोट गाँव से विक्रम संवत् ८१३ का चौहान राजा भर्तृवृढ्ढ (भर्तृवृद्ध) दूसरे का एक दानपत्र मिला है, जिससे भर्तृवढढ् दूसरे के नागावलोक का सामंत होने का पता लगता है*। इस दानपत्र का नागावलोक यही प्रतिहार नागभट (नागावलोक) होना चाहिए। यदि यह अनुमान ठीक हो तो उसका राज्य उत्तर में मारवाड़ से लगाकर दक्षिण में भडौंच जिले तक माना जा सकता है। मुसलमान वलचों (विलोचों) ने उसके राज्य पर आक्रमण किए, परन्तु उसमें वे परास्त हुए†। इन विलोचों ने सिंध की तरफ से मारवाड़ पर चढ़ाई की होगी।

श्रीमन्नागावलोकप्रवरनृपसभालव्ध (ब्ध) वीरप्रतिष्ठः।

एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द २, पृ० १२१।

* एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द १२, पृ० २०२—३।

† तद्वन्शे (वंशे) प्रतिहारकेतनभृति त्रैलोक्यरक्षास्पदे

(२) ककुस्थ (संख्या १ का भतीजा)—वह कक्कुक भी कहलाता था।

(३) देवराज (संख्या २ का छोटा भाई) उसको देवशक्ति भी कहते थे और वह परम भागवत (वैष्णव) था। उसकी रानी भूयिकादेवी से वत्सराज उत्पन्न हुआ।

(४) वत्सराज (संख्या ३ का पुत्र)—उसने गौड़ और बंगाल के राजाओं को विजय किया। गौड़ के राजा के साथ की गई लड़ाई में उसका सामंत मंडोर का प्रतिहार कक्क भी उसके साथ था। जिस समय उसने मालवा के राजा पर चढ़ाई की उस समय दक्षिण का राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा ध्रुवराज अपने सामंत लाट देश के राठोड़ राजा कर्क्कराज सहित, जो इन प्रतिहारों का पड़ोसी था, मालवा के राजा को बचाने के लिये गया, जिससे वत्सराज को हारकर मरु (मारवाड़) देश में लौटना पड़ा और गौड़ देश के जो दो श्वेत छत्र उस (वत्सराज) ने छीने वे राठोड़ों ने उससे ले लिए *। उस क्षत्रियपुंगव

देवो नागभट: पुरातनमुनेर्मूर्तिर्ब्बभूवाद्भुतम् ।।
येनासौ सुकृतप्रमाथिवलच म्लेच्छाधिपाक्षौहिणी: ।
क्षुन्दानस्फुरदुग्रहेतिरुचिरैर्दोर्भिश्चतुर्भिर्वभौ ।। ४ ।।

प्रतिहार राजा भोजदेव की ग्वालियर की प्रशस्ति; रिर्पोट आफ दी आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया; ईस्वी सन् १६०३-४ पृ० २८० ।

* गौडेंद्रवंगपतिनिर्ज्जयदुर्व्विदग्ध-
सद्गूर्ज्जरेश्वरदिग्गर्गलता च यस्य ।
नीत्वा भुजं विहतमालवरक्षणार्थं
स्वामी तथान्यमपि राज्यछ (फ) लानि भुंक्ते ।।

——वड़ौदे का दानपत्र, इंडियन ऐंटिक्वेरी, जि० १२, पृ० १६० ।

हेलास्वीकृतगौड़राज्यकमलामत्तं प्रवेश्याचिरा-
द्दूर्मार्गं मरुमध्यमप्रतिव (ब) लैर्यो वत्सरो (रा) जं व (ब) लैः।
गौडीयं शरदिन्दुपादधवलं छत्रद्वयं को (के) वलं
तस्मान्नाहृततद्यशोपि कुकुंभा प्रांते स्थितं तत्क्षणात् ।।

—इंडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द ११, पृष्ठ १५७ ।

हम ऊपर वतला चुके हैं कि वि० सं० ८१३ में भड़ौंच जिले के अंक्लेश्वर तालुके पर चौहानों का राज्य था, और चौहान भर्तृवड्ड (दूसरा) नागावलोक (नागभट) का सामंत था। पीछे से दक्षिण के राठोड़ों ने लाट देश अपने अधीन कर लिया, इसलिये दक्षिण के राठोड़ों और वत्सराज के बीच लड़ाई हुई होगी। इसके विशेष वृत्तांत के लिये देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ० ३४५-४६ और पृ० ३४५ का टिप्पण (१)।

ने वलपूर्वक भंडि* के वंश का राज्य छीनकर इक्ष्वाकु वंश उन्नत किया। शक संवत् ७०५ (विक्रम संवत् ८४०) में दिगंबर जैन आचार्य जिनसेन ने 'हरिवंश-पुराण' लिखा जिसमें उक्त संवत् में उत्तर (कन्नौज) में इंद्रायुध और पश्चिम (मारवाड़) में वत्सराज का राज्य करना लिखा है†। वह परम माहेश्वर (शैव) था, और उसकी रानी सुंदरीदेवी से नागभट का जन्म हुआ। वत्सराज का मारवाड़ से दक्षिण में जाकर दक्षिण के राठोड़ों से लड़ना निश्चित है, अतएव वर्तमान गुजरात के किसी न किसी विभाग पर उसका अधिकार होना माना जा सकता है।

(४) नागभट दूसरा—(संख्या ४ का पुत्र) उसको 'नागावलोक' भी कहते थे। उसने चक्रायुध‡ को परास्त कर कन्नौज का साम्राज्य उससे छीना। उसी के समय से गुर्जर देश के इन प्रतिहारों की राजधानी कन्नौज स्थिर होनी चाहिए। उसने आंध्र, सैंधव, विदर्भ (वराड़), कलिंग और वंग के राजाओं को जीता; तथा आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स और मत्स्य आदि देशों के पहाड़ी किले ले लिए, ऐसा उपर्युक्त ग्वालियर की प्रशस्ति में लिखा मिलता है¶। राजपूताने में जिस नाहड़राव पड़िहार का नाम बहुत

---

* ख्याताद्भण्डिकुलान्मदोत्कटकरिप्राकारदुर्ल्लंघतो
य: साम्राज्यमधिज्यकार्म्मुकसखा संख्ये हठादग्रहीत् ।

राजा भोजदेव की ग्वालियर की प्रशस्ति; रिपोर्ट आफ दी आर्कियालॉजिकल सर्वे आफ इंडिया, ईस्वी सन् १९०३-४, पृ० २८०। भंडि का वंश कहाँ राज्य करता था, इसका ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो सका। एक भंडि तो प्रसिद्ध वैसवंशी राजा हर्षवर्द्धन के मामा का पुत्र और उक्त राजा का मंत्री था। यहाँ उससे अभिप्राय हो ऐसा पाया नहीं जाता। यह चावड़ा वंश का कोई राजा हो तो आश्चर्य नहीं।

† शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पंचत्तरेषूत्तरां
पातीन्द्रायुधि नाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम् ।
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादि (धि) राजेऽपराम् ।।
बंबई गैजेटियर, जिल्द १, भाग २, पृ० १९७, टिप्पण २।

‡ चक्रायुध कन्नौज के उपर्युक्त राजा इन्द्रायुध का उत्तराधिकारी था। ये दोनों किस वंश के थे यह ज्ञात नहीं हुआ, परन्तु संभव है कि ये राठोड़ हों।

¶ आद्य: पुमान्पुनरपि स्फुटकीर्तिरस्मा-
ज्जातस्स एव किल नागभटस्तदाख्य: ।
यत्रान्ध्रसैन्धवविदर्भकलिंगभूपै:
कौमारधामनि पतंगसमैरपाति ।। ८ ।।

प्रसिद्ध है और जिसके विषय में पुष्कर के घाट बनवाने की ख्याति चली आती है, वह यही नागभट (नाहड़) होना चाहिए, न कि उक्त नाम का मंडोर का प्रतिहार। उसके समय का विक्रम संवत् ७७२ का एक शिलालेख जोधपुर राज्य के बीलाड़ा परगने के बुचकला ग्राम से मिला है।†B। नागभट भगवती (देवी) का परम भक्त था। उसकी रानी ईसटादेवी से रामभद्र उत्पन्न हुआ। नागभट का स्वर्गवास वि०संवत् ८९० भाद्रपद सुदि ५ को होना जैन चन्द्रप्रभसूरि ने अपने 'प्रभावकचरित' में लिखा है‡C। कई जैन लेखकों ने कन्नौज के राजा

त्रय्यास्पदस्य सुकृतस्य समृद्धिमिच्छ-
र्यः क्षत्रधामविधिवद्धबलिप्रबंधः।
जित्वा पराश्रयकृतस्फुटनीचभावं
चक्रायुधं विनयनम्रवपुर्व्यराजत॥ ९॥
दुर्वारवैरिवरवारणवाजिवार-
याणौघसंघटनघोरघनान्धकारम्।
निर्जित्य वंगपतिमाविरभूद्विवस्वा-
नुद्यन्निव त्रिजगदेकविकासकोषः॥ १०॥
आनर्तमालवकिराततुरुष्कवत्स-
मत्स्यादिराजगिरिदुर्गहठापहारैः।
यस्यात्मवैभवमतीन्द्रियमाकुमार-
माविर्बभूव भुवि विश्वजनीनवृत्तेः॥११॥

रिपोर्ट आफ दी आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया, ईसवी सन् १९०३-४ पृ० २८१।

† एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ९, पृ० १९९-२००।

‡ विक्रमतो वर्षाणां शताष्टके सनवतौ च भाद्रपदे।
शुक्रे सितपंचम्यां चन्द्रे चित्राख्यऋक्षस्थे॥ ७२॥
माभूत्संवत्सरोऽसौ वसुशतनवतेर्मा च ऋक्षेषुचित्रा
धिग्मासं तं नभस्यं क्षयमपि स खलः शुक्लपक्षोपि यातु।
संक्रान्तिर्या च सिंहे विशतु हुतभुजं पंचमी यातु शुक्रे

B. बुचकला का उपरोक्त शिलालेख वि० सं० ८७२ (ई० स० ८१५) का है। डा० ओझा ने भी अपने राजपूताना का इतिहास जिल्द १, पृ. १८१ द्वि० सं० में तथा अन्यत्र इस शिलालेख का संवत् ८७२ (ई० स० ८१५) ही दिया है। यहां लेखक तथा छापे के दोष से वि० स० ७७२ छपा है। (स० हि०)।

C. जैन चन्द्र प्रभसूरि ने अपने 'प्रभावक चरित' में लिखा है, पढ़ना चाहिए। (स० हि०)।

नागभट के स्थान में आम नाम लिखा है; परन्तु चन्द्रप्रभसूरि ने 'आम' और 'नागावलोक' दोनों एक ही राजा के नाम होना बतलाया है* ।

(६) रामचन्द्र (संख्या ५ का पुत्र)--उसको राम तथा रामदेव भी कहते थे। उसने बहुत थोड़े समय तक राज्य किया। वह सूर्य का भक्त था और उसकी रानी अप्पादेवी से भोज का जन्म हुआ।

(७) भोजदेव (संख्या ६ का पुत्र) उसको 'मिहिर' और 'आदिवहार' भी कहते थे। वह अपने पड़ोसी लाट देश के राठोड़ राजा ध्रुवराज (दूसरे) से लड़ा, जिसमें राठोड़ों के कथनानुसार उसकी हार हुई थी। उसके समय के विक्रम संवत् ९०० से लेकर ९३८ तक पाँच † शिलालेखादि मिले हैं और चाँदी और ताँबे के सिक्के भी मिले हैं जिनके एक तरफ 'श्रीमदादिवराह' लेख और दूसरी ओर 'वराह' (वरवराह) की मूर्त्ति बनी है‡। वह भगवती (देवी) का भक्त था। उसकी रानी चंद्रभट्टारिकादेवी से महेंद्रपाल उत्पन्न हुआ था। भोजदेव के युवराज नागभट का नाम मिलता है, परन्तु महेंद्रपाल और विनायकपाल के दान-पत्रों में उसका नाम राजाओं की नामावली में न मिलने से अनुमान होता है कि उसका देहांत भोजदेव की विद्यमानता में ही हो गया हो, जिससे भोजदेव का उत्तराधिकारी उसका दूसरा पुत्र महेंद्रपाल हुआ हो। काठियावाड़ से मिले हुए भोजदेव के एक शिलालेख का फोटो श्रीयुत दत्तात्रेय बालकृष्ण डिस्कलकर ने हमारे पास भेजा है। यह शिलालेख उल्लिखित शिलालेखों से भिन्न है और उससे भोजदेव का काठियावाड़ पर अधिकार होना निश्चित है।

(८) महेंद्रपाल (संख्या ७ का पुत्र)—उसे 'महेंद्रायुध', 'महेंद्रपाल', 'निर्भयराज' और 'निर्भयनरेंद्र' भी कहते थे। उसके समय के दो शिलालेख और तीन ताम्रपत्र मिले हैं, जो वि० सं० ९५० से ९६४ तक के हैं। उन तीन ताम्रपत्रों में से दो जूनागढ़ राज्य के ऊना गाँव से मिले हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इससे निश्चित है कि काठियावाड़ के दक्षिण

गंगातोयाग्निमध्ये त्रिदिवमुपगतो यत्र नागावलोकः ॥ ७२५ ॥
'प्रभावकचरित' में बप्पभट्टिप्रबंध; पृ० १७७ ।

* निर्णयसागर प्रेस में मुद्रित प्रभावकचरित के अंतर्गत बप्पभट्टिप्रबन्ध के श्लोक ७९ तथा ११६ में 'आम' नाम है और श्लोक १८८, ७२२ तथा ७२५ में 'नागावलोक' नाम मिलता है।

† मेरा 'राजपूताने का इतिहास', जिल्द १, पृ० १६२ ।

‡ स्मिथ; कैटेलाग आफ दी कॉइंस इन दी इंडियन म्यूजियम, पृ० २४१-४२, प्लेट २५ संख्या १८ ।

विभाग पर भी उसका राज्य था, जहाँ उसके सोलंकी सामंतों की जागीरें थीं*। काठियावाड़ में महेंद्रपाल की तरफ से धीइक नामक शासक या सूबेदार रहता था, जैसा कि उक्त दानपत्रों से जान पड़ता है। 'काव्यमीमांसा' 'कर्पूरमंजरी' 'विद्धशालभंजिका', 'बालरामायण', 'बालभारत' आदि ग्रंथों का कर्त्ता सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर उसका गुरु था। अपने पिता के समान महेंद्रपाल भी भगवती (देवी) का परम भक्त था। उसके तीन पुत्रों—महीपाल (क्षितिपाल), भोज और विनायकपाल—के नामों का पता लगा है। भोज की माता का नाम देहनागदेवी और विनायकपाल की माता का नाम महीदेवी मिला है।

(९) महीपाल (संख्या ८ का पुत्र)—उसको क्षितिपाल भी कहते थे। उसके समय में 'काव्यमीमांसा' आदि का कर्त्ता राजशेखर कवि कन्नौज में विद्यमान था; वह उसको आर्यावर्त का महाराजाधिराज तथा मुरल, मेकल, कलिंग, केरल, कुलूत, कुंतल और रमठ देशवालों को पराजित करनेवाला लिखता है†। महीपाल दक्षिण के राठोड़ इंद्रराज (तीसरे, नित्यवर्ष) से भी लड़ा था, जिसमें राठोड़ों के कथनानुसार उसकी हार हुई थी। उसके समय का एक दानपत्र हड्डाला गाँव (काठियावाड़) से शक संवत् ८३६ (विक्रम संवत् ९७१) का मिला, जिससे पाया जाता है कि उस समय वढवाण में उसके सामंत चाप (चावड़ा) वंशी धरणीवराह का अधिकार था। विक्रम संवत् ९७४ का एक और शिलालेख * मिला है।

(१०) भोज दूसरा (संख्या ९ का छोटा भाई)—उसने थोड़े ही समय तक राज्य किया। अब तक यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुआ कि भोज (दूसरा) बड़ा था या महीपाल।

(११) विनायकपाल (संख्या १० का छोटा भाई)—उसके समय का एक दानपत्र विक्रम संवत् ९८८† का मिला है। उसकी रानी प्रसाधनादेवी से महेंद्रपाल (दूसरे) का जन्म हुआ। उसके अंतिम समय से कन्नौज के प्रतिहारों का राज्य निर्बल होता गया और सामंत लोग स्वतंत्र बनने लग गए।

---

* नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग १, पृ० २१२-१५।

† नमितमुरलमौलिः पालको मेकलानां रणकलितकलिंगःकेलितृट् केरलेंदोः। अजनि जितकुलूतः कुंतलानां कुठारो हठहृतमठश्रीः श्रीमहीपालदेवः।
—बालभारत की प्रस्तावना।

* इंडियन ऐंटिक्वेरी; जिल्द १६, पृ० १७४-७५।

† इंडियन ऐंटिक्वेरी; जिल्द १५, पृ० १४०-४१। छपी हुई प्रति में संवत् १८८ पढ़ा जाकर उसको हर्ष संवत् माना है जो अशुद्ध है; उसके फोटो में शुद्ध संवत् ९८८ है।

(१२) महेंद्रपाल दूसरा (संख्या ११ का पुत्र)—उसके समय का विक्रम संवत् १००३ का एक शिलालेख प्रतापगढ़ से मिला है। उससे ज्ञात होता है कि घोंटावर्षिका (घोटार्सी, प्रतापगढ़ से अनुमान ६ मील पर) का चौहान इंद्रराज उसका सामंत था; उस समय मंडपिका (मांडू) में बलाधिकृत (सेनापति) कोक्कट का नियुक्त किया हुआ श्रीशर्मा रहता था और मालवा का तंत्रपाल (शासक हाकिम) महासामंत, महादंडनायक माधव (दामोदर का पुत्र) था, जो उज्जैन में रहता था। चौहान इंद्रराज के बनवाए हुए घोंटावर्षिका के 'इंद्रराजादित्यदेव' नामक सूर्यमंदिर को 'खर्परपद्रक' गाँव महेंद्रपाल (दूसरे) ने भेंट किया, जिसकी सनद (दानपत्र) पर उक्त माधव ने हस्ताक्षर किए थे* ।

महेंद्रपाल द्वितीय के पीछे संभवतः काठियावाड़के उपर्युक्त सोलंकियों के वंशधर मूलराज ने प्रबल होकर अनहिलवाड़े (पाटण) के अंतिम चावड़ावंशी राजा सामंतसिंह को जो उसका मामा माना जाता है, विक्रम संवत् १०१७ में मारकर पाटण का राज्य उससे छीन लिया। फिर उसने आबू के परमारों का राज्य भी अपने अधीन किया और कच्छ के जाड़ेचा (यादव) राजा लाखाफूलाणी को मारकर उसने कच्छ के राज्य पर अपना आधिपत्य जमाया। कल्याण के चौलुक्य राजा तैलप के सामंत बारप को युद्ध में मारकर उसने लाट देश अपने अधीन किया और सौराष्ट्र के चूडासमा राजा ग्रहरिपु पर चढ़ाई कर काठियावाड़ को अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार वर्तमान गुजरात के प्रतिहार राजाओं का राज्य अस्त हो गया।

उधर कन्नौज में महेंद्रपाल दूसरे के पीछे क्रमशः देवपाल और विजयपाल राजा हुए; ये दोनों निर्बल राजा थे। फिर विजयपाल के पुत्र राज्यपाल के समय में वि० सं० १०७५ (ईसवी सन् १०१८) में गजनी के सुलतान महमूद ने कन्नौज पर आक्रमण किया, तब उसने सुलतान की अधीनता स्वीकार करली, जिस पर वह अपने सामंतों के हाथ से मारा गया। उसके पीछे त्रिलोचनपाल और यशपाल का कन्नौज पर अधिकार होना पाया जाता है। अंत में विक्रम संवत् ११३५ के आस-पास गाहड़वालवंशी महीचन्द्र का पुत्र चन्द्रदेव कन्नौज का राज्य प्रतिहारों से छीनकर वहाँ का स्वामी बन गया। इस प्रकार कन्नौज के महाराज्य की इतिश्री हो गई।

ना. प्र. त्रै. पत्रिका नवीन संस्करण, भाग ६, सं. ३,
वि. सं. १९८५ (ई. स. १९२८)

---

* एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द १४, पृ० १८२-८४।

९—राजपूताना के गुर्जर राजाओं का संक्षिप्त वृत्तान्त

इस समय गुर्जर अर्थात् गूजर जाति के लोग विशेष कर खेती या पशुपालन से अपना निर्वाह करते हैं; परन्तु पहिले इनकी गणना राजवंशियों में थी। अब तो केवल इनका एक राज्य समथर (बुन्देलखंड में) और कुछ ज़मीदारियाँ युक्तप्रदेश आदि में रह गई हैं परन्तु पहिले पंजाब, राजपूताना तथा गुजरात में इनके राज्य थे। चीनी यात्री हुएन्तसंग विक्रम संवत् की सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दुस्थान में आया। वह अपने यात्रा की पुस्तक में गुजर देश का वर्णन करता है और उसकी राजधानी भीनमाल (भिल्लमालश्रीमाल—जोधपुर राज्य के दक्षिणी विभाग में) होना लिखता है। हुएन्तसंग का बतलाया हुवा गुर्जर देश महाक्षत्रप रुद्रदामा के राज्य के अन्तर्गत था, तो भी उक्त राजा के गिरनार के शक सं० ७२ (वि० सं० २०७) के कुछ ही बाद के शिलालेख में उसके अधीन के जो देशों के नाम दिये हैं उनमें गुजर नाम नहीं; किन्तु उसके स्थान में श्वभ्र* और मरु‡ नाम दिये हैं जिससे अनुमान होता है कि उक्त लेख के खोदे जाने तक गुर्जर देश (गुजरात) नाम प्रसिद्धि में नहीं आया था।

क्षत्रपों के राज्य के बाद किसी समय गुर्जर (गूजर) जाति के अधीन का देश गुर्जर देश या गुर्जरत्रा (गुजरात) कहलाया होगा।

हुएन्तसंग गुर्जर देश की परिधि ८३३ मील बतलाता है जिससे पाया जाता है कि वह देश बहुत बड़ा था और उसकी लम्बाई अनुमान ३०० मील या उससे भी अधिक होना चाहिए। प्रतिहार (पड़िहार) राजा भोजदेव (प्रथम) के विक्रम सं० ९०० के दानपत्र में लिखा है कि उसने गुर्जरत्रा (गुजरात) भूमि (देश) के डेंड्वानक विषय (ज़िले) का सिवागांव दान किया। वह दानपत्र जोधपुर राज्य के डींडवाना जिले के सिवागांव के एक टूटे हुए मन्दिर से मिला था। उक्त दानपत्र का डेंड्वानक ज़िले जोधपुर राज्य के उत्तर पूर्वी हिस्से का डींडवाना ही है और सिवागांव डीडवाने से ७ मील पर का सेवागांव ही है जहाँ से वह ताम्रपत्र मिला है। कालिंजर से मिले हुए विक्रम संवत् की नवीं शताब्दी के आस-पास के एक शिलालेख में गुर्जरत्रा मंडल (देश) के मंगलानक गांव से निकले हुए जेंदुक के बेटे देद्दुक की बनाई हुई मंडपिका के प्रसंग में उसकी स्त्री लक्ष्मी के द्वारा उमा महेश्वर के पट्ट की प्रतिष्ठा किये जाने का उल्लेख है।

---

* उत्तरीय गुजरात, साबरमती नदी के तट का सारा प्रदेश।

‡ मारवाड़।

मंगलानक जोधपुर राज्य के उतरी विभाग का मंगलाना गाँव है जो मारोठ से १६ मील पश्चिम में और डींडवाने से थोड़े से ही अन्तर पर है। हुएन्तसंग के कथन और इन दोनों शिलालेखों से पाया जाता है कि विक्रम संवत् की ७वीं से ६वीं शताब्दी तक जोधपुर राज्य का सारा उत्तर पूर्वी हिस्सा गुर्जर देश (गुर्जरत्रा, गुजरात) के अन्तर्गत था। इसी तरह दक्षिण और लाट * के राठौड़ों तथा प्रतिहारों के बीच की लड़ाइयों के वृत्तान्त से पाया जाता है कि गुर्जर देश की दक्षिणी सीमा 'लाट' देश से जा मिलती थी।

अतएव गुर्जर देश के अन्तर्गत उस समय जोधपुर राज्य का सारा उत्तर पूर्वी हिस्सा तथा उससे दक्षिण का लाट देश तक का वर्तमान गुजरात देश था। अब तो राजपूताने का वह हिस्सा गुजरात नहीं कह-लाता परन्तु पहिले गुजरात के अन्तर्गत था। देशों के नाम बहुधा उनपर अधिकार करनेवाली जातियों के नाम से प्रसिद्ध होते रहे हैं जैसे कि मालवों से मालवा, शेखावतों से शेखावाटी, राजपूतों से राजपूताना आदि ऐसे ही गुर्जरों (गुर्जरों) के अधिकार होने से गुर्जर देश (गुजरात) नाम से प्रसिद्ध हुआ। गुर्जर देश के राजपूताने के विभाग पर गुर्जरों (गुजरों) का राज्य कब हुआ और कब तक रहा यह ठीक निश्चित नहीं, तो भी यह तो निश्चित है कि रुद्रदामा के समय अर्थात् विक्रम संवत् २०७ तक तो गुर्जरों का राज्य भीनमाल में नहीं हुआ था। सम्भव है कि क्षत्रपों का राज नष्ट होने पर गुर्जरों का राज्य वहां हुआ हो।

विक्रम संवत् ६८६ के पूर्व उसका राज्य वहाँ से उठ गया था क्योंकि उक्त संवत् में वहाँ पर चाप (चावड़ा) वंशी राजा व्याघ्रमुख का राज्य होना भीनमाल के ही रहनेवाले (भिल्लमालकाचार्य) प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त के "ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त" से पाया जाता है। लाट देश के चालुक्य (सोलंकी) सामन्त पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) के कलचुरि संवत् ४६० (विक्रम संवत् ७६६) के दानपत्र से पाया जाता है कि चावोटक (चाप-चावड़े) गुर्जर वंश से भिन्न वंश था। भीनमाल का गुर्जरों का राज्य चावड़ों के हाथ में चला जाने के बाद विक्रम संवत् की ११वीं शताब्दी के आरम्भ के आस-पास के प्रदेश पर गुर्जरों का एक राज्य होने का भी

---

* लाट देश की उत्तरी सीमा बम्बई हाते के खेड़ा ज़िले में बहनेवाली सेढी नदी तक और दक्षिणी सीमा तापी नदी से कुछ दक्षिण तक होना ताम्र-पत्रादि से पाया जाता है, सामान्य रूप से मही और तापी नदियों के बीच का देश 'लाट' माना जाता है।

पता चलता है । अलवर राज्य के राजोरगढ़ नामक प्राचीन क़िले से एक शिलालेख विक्रम संवत् १०१६ माघ सुदी १३ का मिला है जिससे पाया जाता है कि उस समय राज्यपुर (राजोरगढ़) पर प्रतिहार गोत्र के गुर्जर महाराजाधिराज सावट का पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर मथनदेव राज्य करता था और वह परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर क्षितिपाल कन्नौज का रघुवंशी प्रतिहार राजा था । उस शिलालेख में मथन देव को महाराजाधिराज परमेश्वर लिखा है जिससे अनुमान होता कि वह क्षितिपाल देव (महीपाल) के वड़े सामन्तों में से हो । उसी शिलालेख से यह भी जाना जाता है कि उस समय वहाँ पर गुर्जर (गूजर) जाति के किसान भी थे ।

वर्तमान गुजरात में भड़ौच पर भी गुर्जरों का विक्रम संवत् ६४५ से ७९३ तक रहने का पता तो उनके दानपत्रों से ही लगता है । संभव है कि उक्त संवतों के पहिले और पीछे भी उसका राज्य वहाँ रहा हो । इससे यह यह भी संभव है कि भीनमाल के गुर्जरों का राज्य भड़ौच तक फैला हुआ हो और भीनमाल का राज्य उनके हाथ से निकल जाने पर भी भड़ौच के राज्य पर उनका अधिकार बना रहा हो । भड़ौच के गुर्जर राजाओं के दानपत्रों से पाया जाता है कि भड़ौच के गुर्जर राज्य के अन्तर्गत भड़ौच ज़िला सूरत जिले के ओरपाड 'चोरासी' और वारडोली ताल्लुके तथा उनके पास के वड़ौदा राज्य, रेवाकांठा और सचीन राज्य के इलाके होने चाहियें ।

गूजर जाति की उत्पत्ति के विषय में आधुनिक प्राचीन शोधकों ने अनेक कल्पनायें की हैं, जनरल कॉनिंगहॉम ने इनका यूची अर्थात् कुशन वंशी होना अनुमान किया है । वी० ए० स्मिथ ने इनकी गणना हूणों में की है । सर जेम्स कैंपवेल का कथन है कि ईस्वी सन् की छठी शताव्दी में खज़र नाम की एक जाति जहां यूरोप और ऐशिया की सीमा मिलती है, वहां रहती थी । उसी जाति के लोग गुर्जर या गूजर हैं । श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर ने कैंपवेल का कथन स्वीकार किया है* यह सब कल्पना ही है क्योंकि

---

* भण्डारकर महाशय ने साथ में यह भी लिखा है कि वम्बई अहाते में गूजर (गुर्जर) नहीं हैं । पाया जाता है कि यह जाति हिन्दुओं में मिल गई । वहां गूजर (गुर्जर) वाणिये (वणिये, महाजन) और वाणिये (महाजन) गूजर (गुर्जर) कुम्भार और गूजर (गुर्जर) सिलावट और सिलावट हैं । खानदेश में देशी कुनवी और गूजर (गुर्जर) कुनवी हैं । एक मराठा कुटम्व गुर्जर कहलाता है जो महाराष्ट्र के आधुनिक इतिहास में प्रसिद्ध

उनमें से कोई भी यह सप्रमाण नहीं वतला सका कि अमुक समय में अमुक कारण से यह जाति बाहर से यहाँ आई। खज़र से गुर्जर या गूजर जाति की उत्पत्ति मानना वैसी ही कपोल कल्पना है, जैसाकि कोई यह कहे सक्सेने कायस्थ यूरोप की सेक्सन जाति से हैं।

नवसारी से मिले हुऐ भड़ौच के गुर्जर वंशी राजा जयभट (तीसरे) के कलचुरि संवत् ४५६ (विक्रम संवत् ७६२) के दानपत्र में गुर्जरों का महाराज कर्ण (भारत प्रसिद्ध) से होना लिखा है।

रहा है। करहाड़ा ब्राह्मणों में भी गुर्जर नाम मिलता है। राजपूताने में भी गुजर गौड़ ब्राह्मण हैं, ये सव गूजर (गुजर) हैं। भण्डारकर महाशय को इन नामों की उत्पत्ति को जानने में भ्रम हुआ है और उसी से इन सबको गूजर (गुर्जर) ठहरा दिया; परन्तु वास्तव में ऐसी वात नहीं है जैसे श्रीमाल नगर (भीनमाल जोधपुर राज्य में) के ब्राह्मण, महाजन, जड़िये आदि बाहर जाने पर अपने मूल निवास स्थान पर से वहां के ब्राह्मणों आदि से भिन्न वतलाने के लिये श्रीमाली ब्राह्मण श्रीमाली महाजन, आदि कहलाये, ऐसे ही मारवाड़ के दधिमति (दाहिमा) क्षेत्र के रहनेवाले ब्राह्मण, राजपूत, जाटादि, दाहिमें ब्राह्मण, दाहिमें राजपूत, दाहिमें जाट आदि कहलाये और गौड़ देश के ब्राहम्ण, राजपूत, कायस्थ आदि बाहर जाने पर अपने मूल निवासस्थान के नाम से गौड़ ब्राह्मण गौड़ राजपूत, और गौड़ कायस्थ कहलाये वैसे ही प्राचीन गुर्जर देश के रहनेवाले ब्राह्मण, महाजन, कुम्हार, सिलावट आदि गुर्जर ब्राह्मण गुर्जर वनिये, गुर्जर कुम्हार, गुर्जर सिलावट कहलाये हैं। अतएव गुर्जर ब्राह्मण आदि का अभिप्राय यह नहीं है कि (गूजर गुर्जर) जाति के ब्राह्मण आदि। उनके नाम के पूर्व लगने वाला गुर्जर नाम उनके आदि निवास के देश का सूचक है, न कि जाति का। उक्त महाशय ने एक करहाड़ा ब्राह्मण कुटुम्ब के यहां के ई० स० ११९१ (वि० सं० १२४८) के दानपत्र से थोड़ा सा अवतरण भी दिया है जिसमें दान देने वाले गोविन्द ब्राह्मण को काश्यप, अवत्मार और नैध्रुव इन तीन प्रवर वाले नैध्रुव गोत्र का और गुर्जर उपनाम वाला (गुर्जर समुपाभिधान) कहा है।

यदि गूजर जाति का एशिया की खज़र जाति से होना माना जावे तो क्या उनके यहाँ भी जाति और प्रवर का प्रचार था? उन्होंने गूजर गौड़ उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि इस नाम का तात्पर्य गूजर जाति के गौड़ ब्राह्मण से है परन्तु वास्तव में गुर्जरगौड़ का अर्थ यही है कि

वड़गूजर

कर्नल टॉड ने लिखा है कि "वडगूजर सूर्य्य वंशी हैं और गुहिलोतों को छोड़कर केवल यही एक वंश ऐसा है जो अपने को रामचन्द्र के बेटे लव (?) से निकला बतलाते हैं। वड़गूजर लोगों के बड़े-बड़े इलाके ढूंढाड़ (जयपुर राज्य) में थे और माचेड़ी अलवर के राजाओं का मूल स्थान) के राज्य में राजोर (राजोरगढ़) का पहाड़ी क़िला उनकी राजधानी थी, राजगढ़ और अलवर भी उनके इलाके थे। वड़गूजर लोगों को कछवाहों ने इन निवास स्थानों से निकाल दिया। इस वंश के एक दल ने गंगा किनारे जाकर शरण ली और वहाँ पर नया निवास स्थान अनूप शहर बसाया"। कर्नल टॉड ने वड़गूजरों की राजधानी राजोरगढ़ बतलाया है और हम ऊपर वि० सं० १०१६ के शिलालेख से बतला चुके हैं कि गुर्जरवंश के राजा मथनदेव के वंशधर हों। इनका राज्य उस प्रदेश पर बहलोल लोदी के समय तक रहना तो उनके शिलालेख से निश्चित है, जिसके पीछे कछवाहों ने उनकी जागीरें छीनी हों। 'वड़गूजर' नाम शिलालेख लेखों में पहिले-पहल माचेड़ी की बावड़ी के वि० सं० १४३६ के शिलालेख में देखने में आया, जिसमें उक्त संवत् में वैशाख सुदि ६ को खन्डेलवाल महाजन के द्वारा सुरताण (सुलतान) पेरोज-साहि (फिरोजशाह तुग़लक) के राज्य समय, जब कि माचाड़ी (माचेड़ी) पर वडगूजर वंश के राजा आसलदेव के पुत्र महाराजाधिराज गोगदेव का राज्य था, उक्तबावड़ी के बनाये जाने का उल्लेख है। इसी गोगदेव के शिलालेख वि० सं० १४२१ और १४२६ के भी देखने में आये। गोगदेव फिरोजशाह तुग़लक का सामंत था। वहीं की एक दूसरी बावड़ी में एक शिलालेख वि० सं० १५१५, शाके १३८० का सुरताण (सुल्तान) बहलोलसाहि (बहलोल लोदी) के समय का बिगड़ी हुई दशा में है। उस समय माचेड़ी में बड़गूजर वंशी महाराज रामसिंह के पुत्र महाराज रजपालदेव (राज्यपालदेव) का राज्य होना लिखा है। उक्त लेख का महाराज रामसिंह, गोगदेव का पुत्र या पौत्र होना चाहिये।A

गुर्जर देश के गौड़ ब्राह्मण न कि गूजर जाति के गौड़ ब्राह्मण।

भारत के इतिहास में गुर्जर वंशी राजाओं का विक्रम की तीसरी शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक वर्णन मिलता है, जिनका राज्य भीनमाल और भड़ौच में था। गुर्जर नरेश, गुर्जर कैसे कहलाये, इसका अभी तक स्पष्टीकरण नहीं हुआ है। गुर्जर संस्कृत का शब्द है, जो वंश, जाति तथा देश-वाचक बन गया है, जैसे गुर्जर-गुर्जर नरेश, गुर्जर-गूजर जाति, गुर्जर-गुर्जरत्रा, गुजरात प्रदेश। 'गर्जर' शब्द से 'गुजरात' बन सकता है, यह असंभव नहीं है; पर मूल में

'गुर्जर' शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई, जिससे यह शब्द देश तथा जाति वाचक बना, इस पर विचार होना आवश्यक है।

वि० सं० की तीसरी शताब्दी के प्राप्त लेखों से गुजरात का वह विभाग जहाँ भीनमाल और भडौच आदि है, 'मरु और श्वभ्र' नाम से प्रसिद्ध था। इनके पीछे वि० सं० की सातवीं शताब्दी में आनेवाले चीनी यात्री हुएन्त-संग ने अपने यात्रा विवरण में 'गुर्जर देश' का नामोल्लेख किया है, जो वर्तमान गुजरात प्रदेश के एक भाग का सूचक है, जबकि गुर्जर नरेशों का गुजरात पर आधिपत्य स्थिर हो गया था। गुर्जरों के शिलालेखों में इनको 'कर्ण' का वंशधर बतलाया है। कर्ण कौन था, यह निश्चित नहीं हुआ है। यदि भारत प्रसिद्ध सूतपुत्र कर्ण से आशय हो तो गुर्जर नरेश मूल में कुरु-पाञ्चाल के निवासी हो सकते हैं, जहाँ गुजरान वाला प्रांत भी है, जो उनके किसी पूर्वज के नाम पर गुजरान वाला कहलाता है और वहाँ के निवासी होने से ये लोग गुर्जर कहलाये हों। गुर्जरों का क्षत्रपों के बाद उत्थान होता है, फलतः उनके नाम से उनका अधिकृत प्रदेश 'गुर्जरत्रा (गुजरात)' कहलाया हो।

भारत की सैनिक जातियों में गुर्जर जाति का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है और वह सैनिक सेवा के अतिरिक्त पशु-पालन और कृषि-कर्म से जीविका चलाती हैं। कुछ विदेशी तथा एतद्देशीय विद्वानों का अनुमान है कि वे बाहर से आई हुई 'कुशन', 'हूण' और 'खज़र' जातियों में से हैं। हमारे अनुमान से जातिवाचक गूजर शब्द गुर्जर देश में निवास करने से ही परिचय के लिए प्रयोग में आने लगा और वहाँ के रहनेवाले क्षत्रिय गुर्जर (गूजर), ब्राह्मण गुर्जर, ब्राह्मण (गुजराती ब्राह्मण, गूर्जर गोड़), गुर्जर महाजन बनिया कहलाने लगे।

बड़गूजरों को कर्नल टॉड ने सूर्यवंशी बतलाते हुए रामचन्द्र के पुत्र लव के वंशधर होने का उल्लेख किया है। लव की राजधानी लाहोर होना और उसके नाम से लाहोर बसाये जाने का उल्लेख मिलता है। अतएव बड़गूजर लव के वंशधर हों तो मूल में पंजाब के निवासी होना चाहिये। ये लोग बड़गूजर कैसे कहलाये, इसका स्पष्टीकरण नहीं हुआ है। यदि गूर्जरों से इनका संबन्ध हो तो गूजर ही कहलाना चाहिये। जो हो, यह भी भारत का प्राचीन क्षत्रिय वंश है, ऐसा जान पड़ता है। श्री. ओझाजी ने इनको गूर्जर वंशी मथनदेव के वंशधर बतलाये हैं, जो संभव भी है। मूल में ये गूर्जर कहलाते हो और पीछे से किसी कारणवश 'बड़' शब्द को मिलाकर उन्होंने अपने को 'बड़गूजर' बनाया हो। वि० सं० की पंद्रहवीं शताब्दी और सोलहवीं

गुर्जरों (गूजरों) के साथ इस समय राजपूतों का शादी व्यवहार नहीं है; परन्तु बड़गूजरों (गूजरों में बड़े-बड़े गूजर) के साथ है और जयपुर के राजाओं की कितनी एक रानियाँ इस वंश की थीं। ग्वालियर के तंवर राजा मानसिंह की गूजरी राणी के नाम पर उसने गूजरी, बहुल-गूजरी, माल गूजरी और मंगल-गूजरी नामकी चार रागनियाँ बनाई, ऐसा जनरल कनिंग्हाम का कथन है।

१०–चित्तौड़ के किले पर मालवा के परमारों का अधिकार

मेवाड़ और मालवा के शिला-लेखों से यह नहीं पाया जाता कि मालवे के परमार राजाओं में से किसी ने मेवाड़ पर चढ़ाई की अथवा चित्तौड़ का किला उनके अधिकार में रहा, परन्तु अन्य साधनों से ऐसा होना सिद्ध है। बीजापुर (जोधपुर राज्य के गोडवाड़ इलाके में) से मिले हुए हस्तिकुंडी (हथुंडी, जोधपुर राज्य) के राष्ट्रकूट राजा धवल और उसके पुत्र बालप्रसाद के समय के वि० सं० १०५३ (ई० सं० ९९७) माघ शुक्ल १३ के शिलालेख से पाया जाता है कि मुञ्ज ने मेदपाट के मदरूपी आघाट (आहाड़)[1] को तोड़ा उस समय धवल ने मेवाड़ की सेना को शरण दी थी।[2] इससे निश्चित है कि मालवे के परमार राजा मुञ्ज ने मेवाड़ की राजधानी आघाटपुर को नष्ट किया था। यह चढ़ाई मेवाड़ के किस राजा के समय में हुई इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता, परन्तु राजा शक्तिकुमार के समय यह चढ़ाई हुई होगी क्योंकि वह मुंज का समकालीन था।[3] संभव है कि उस समय चित्तौड़ का सुप्रसिद्ध किला भी मुंज के हाथ

---

1 उदयपुर से अनुमान दो मील पूर्व में।

2 एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द १०, पृ० १२–२१

3 देखो मेरा राजपूताने का इतिहास (प्रथम संस्करण), जिल्द १। पृ० ४३५।

शताब्दी तक अलवर के इलाके में इनका अधिकार था, जिसको मेवात-प्रदेश कहते हैं। मुगल दर्बार में भी सम्राट् जहांगीर के वर्णन में अनिरायसिंह दलन का उल्लेख आता है, जो मंसवदारों की श्रेणी में था। बड़गूजरों के संबन्ध राजपूतों में हुए हैं, जो आश्चर्य की बात नहीं है।

में चला गया हो । यदि ऐसा हुआ हो तो चित्तौड़ के क़िले पर मालवा के परमारों का कोई स्मारक अवश्य मिलना चाहिए ।

मुंज के छोटे भाई सिंधुराज के पुत्र भोजदेव के चित्तौड़ के गढ़ में रहने और वहाँ पर त्रिभुवननारायण नामक विशाल शिव-मंदिर बनवाने के उल्लेख मिलते हैं ।

उदयपुर (मेवाड़) राज्य के चीरवा नामक गांव (एकलिंगजी से तीन मील दक्षिण में) के नये बने हुए विष्णु के मंदिर की दीवार में, वहीं के किसी प्राचीन मन्दिर की एक प्रशस्ति लगी हुई है, जो वि० सं० १३३० कार्तिक सुदि १ (ई० सं० १२७३ ता० १३ अक्टोबर) शुक्रवार की मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय की है । जिस मूल मन्दिर की यह प्रशस्ति थी, वह मेवाड़ के राजाओं की नियत किये हुए नागहृद (नागदा, मेवाड़ की पुरानी राजधानी, जो एकलिंगजी के निकट है) के तलारक्षों (नगर के रक्षक, कोतवालों) के पूर्वज ने बनवाया था । उसमें तलारक्ष उद्धरण के वंश का पूरा परिचय देने के अतिरिक्त उसके वंशजों ने जो लड़ाइयां लड़ीं, या जो राजकीय सेवाएँ कीं, उनका भी उल्लेख है। उसमें चित्तौड़ के तलारक्ष मदन के विषय में लिखा है—"रत्न का छोटा भाई निष्पापी मदन राजा समरसिंह की कृपा से चित्तौड़ में वंशपरम्परागत तलारता पाकर, श्री भोज-राज (राजा भोज) के बनवाये हुए त्रिभुवननारायण नामक मन्दिर में अपने कल्याण की इच्छा से सदाशिव की पूजा किया करता था।"[4]

चित्तौड़ के किले के रामपोल दरवाजे के बाहर के चबूतरे पर मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय का वि० सं० १३५८ का एक शिलालेख बिगड़ी हुई दशा में मुझे मिला। उससे पाया जाता है कि महाराजधिराज श्री समरसिंह के राज्य-समय-प्रतिहार (पडिहार) वंशी महारावत राजश्री ....राज (राजपुत्र) माता के बेटे राजा धारसिंह ने श्री भोज-स्वामी देवजगती (भोजस्वामी नामक मन्दिर या राजा भोज के बनवाये

4 रत्नानुजोऽस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचारः ।
मदनः प्रसन्नवदनः सततं कृतदुष्टजनकदनः ।।२७।।
श्री चित्रकूटदुर्गे तलारतां यः पितृक्रमायातां ।
श्रीसमरसिंहराजप्रसादतः प्राप निःपापः ।।३०।।
श्रीभोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्यदेवगृहे ।
यो विरचयति स्म सदाशिवपरिचर्यां स्व शिवलिप्सुः ।।३१।।
(चीरवा का शिलालेख)

हुए देव-मन्दिर के अहाते में) में प्रशस्ति पट्टिका सहित''''''बनवाया[5]।

ऊपर के दोनों शिलालेखों से पाया जाता है कि चित्तौड़ के किले पर भोज नाम के किसी राजा ने एक शिवमन्दिर बनवाया था, जिसको पहले शिलालेख में त्रिभुवननारायण का और दूसरे में भोजस्वामी का मन्दिर कहते हैं और वह मन्दिर मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय विद्यमान था। अब यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि चित्तौड़ पर के उक्त मन्दिर को बनवाने वाला भोजदेव (राजा भोज)कौन था ?

मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा बापा (कालभोज) ने चित्तौड़ का किला मोरियों (मौर्य वंशियों) से लिया। उसके पीछे उस वंश में भोज नाम का कोई राजा हुआ ही नहीं। मेवाड़ के पड़ोसियों अर्थात् सांभर और अजमेर के चौहानों, आबू के परमारों और गुजरात के चौलुक्यों में भी भोज नाम का कोई राजा नहीं हुआ। मेवाड़ के निकट के पड़ोसी मालवा के परमारों में भोजदेव नाम के प्रसिद्ध राजा का होना पाया जाता है, जैसा हमने इस लेख के आरम्भ में बतलाया है। सम्भव है मुञ्ज ने आहाड़ को तोड़ने पर चित्तौढ़ का किला और उसके आस-पास का मालवे से मिला हुआ प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया हो, परन्तु इससे भी यह निश्चय नहीं होता कि चित्तौड़ के त्रिभुवननारायण के मन्दिर या भोज स्वामीजगती का बनाने-वाला उपर्युक्त मुञ्ज के छोटे भाई सिंधुराज का पुत्र प्रसिद्ध परमार भोज ही था। इसके निर्णय के लिये और प्रमाण अपेक्षित हैं, परन्तु वे भी मिल जाते हैं।

वि० सं० १०८८ में पोरवाड़ महाजन विमल (विमलशाह) ने आबू पर के देलवाड़ा गांव में करोड़ों रुपयों के व्यय से आदिनाथ का जैन मन्दिर बनवाया। उसका जीर्णोद्धार वि० सं० १३०८ ज्येष्ठ सुदि ९ को हुआ। तत्-सम्बन्धी प्रशस्ति में लिखा है कि चन्द्रावतीपुरी का राजा धन्धु (परमार) वीरों का अग्रणी था। जब उसने राजा भीमदेव की सेवा स्वीकार न की तब भीमदेव उस पर क्रुद्ध हुआ, जिससे वह (धन्धुक) धारानगरी के स्वामी भोज-देव के पास चला गया। इससे इतना तो निश्चय हुआ कि आबू का परमार राजा धन्धु (धन्धुक) भीमदेव के क्रुद्ध होने पर भोज की सेवा में जा रहा था[6]।

5 नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका; भाग १, (नवीन संस्करण)पृ. ४१३ और टि० ५७।

6 ततकुल कमलमरालः कालः प्रत्यर्थिमंडलीकानां।
चन्द्रावतीपुरीशः समजनि वीराग्रणीर्धन्धुः ॥५॥

उसी मन्दिर के बनाये जाने के सम्बन्ध में जिनप्रभसूरि जो मेवाड़ के राजा समरसिंह का समकालीन था, अपने "तीर्थ-कल्प" में लिखता है--"जब गुर्जरेश्वर (भीमदेव) राजानक धांधुक (राजा धन्धुक) पर क्रुद्ध हुआ तब उस (विमलशाह) ने भक्ति से उस (भीमदेव) को प्रसन्न कर उस (धन्धुक) को चित्रकूट (चित्तौड़) से लाकर वि० सं० १०८८ में उस (धन्धुक) की आज्ञा लेकर बड़े खर्च से विमलवसती नामक आदिनाथ का उत्तम मन्दिर बनवाया[7] ।

उपर्युक्त दोनों कथनों को साथ लेने से यही पाया जाता है कि गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव से बिगाड़ हो जाने पर आबू का परमार राजा धन्धुक मालवे के परमार राजा भोज के चित्तौड़ में रहते समय उसके पास चला गया था, जहाँ से विमलशाह उसे वापस लाया । इससे चित्तौड़ में परमार राजा भोज का रहना स्पष्ट है और उसने ही वहाँ त्रिभुवननारायण का मन्दिर बनवाया था ।

उक्त मन्दिर का नाम "त्रिभुवननारायण" क्यों हुआ, यह भी बतलाना आवश्यक है । गोविन्द सूरि के शिष्य वर्द्धमान ने 'गणरत्न महोदधि' नामक ग्रन्थ वि० स० ११९७ (ई० सं० ११४०) में बनाया ।[8] उक्त ग्रन्थ में श्लोक बद्ध व्याकरण के गण दिये हैं और गण के प्रत्येक पद की व्याख्या और उदाहरण हैं । तद्धित प्रकरण के गणों का विवेचन वर्द्धमान ने बहुत अच्छी जगह किया है । अपत्यावाचक तद्धित रूपों के उदाहरण में गणरत्न महोदधि में श्लोकों के लम्बे अवतरण स्थान-स्थान पर दिये हैं । उनकी रचना से जान पड़ता है कि वे किसी भट्टि काव्य के सदृश व्याकरण के उदाहरणमय काव्य के एक ही सर्ग में से हैं, क्योंकि छन्द एक ही है । उससे यह

श्रीभीमदेवस्य नृपस्य सेवामलभ्य (!) मानः किलधुंधराजः ।
नरेशरोषाच्च ततो मनस्वी धाराधिपं भोजनृपं प्रपेदे ।।६।।
(आबू का शिलालेख)

7 राजानकश्रीधांधुके क्रुद्धं श्रीगुर्ज्जरेश्वरम् ।
प्रसाद्य भक्तया तं चित्रकूटादानीय तद्गिरा ।।३९।।
वैक्रमे वसुवस्वासा १०८८ मितेऽब्दे भूरिरैव्ययात् ।
सत्प्रासादं सविमलवसत्याह्वं व्याधापयत् ।।४०।।
(तीर्थकल्प का अर्बुदकल्प)

8 सप्त नवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु ।
वर्षाणां विक्रमतो गणरत्न महोदधिर्विहितः ।।
(एगलिंग का संस्करण; पृ० ४८०)

भी जान पड़ता है कि वह काव्य व्याकरण के उदाहरणों के अतिरिक्त द्वयाश्रम काव्य की शैली का है और मालवा के परमार राजा भोज और उसके पूर्वजों की यश-गाथाओं से परिपूर्ण है। सम्भव है कि भोजराज-रचित प्रसिद्ध व्याकरण के उदाहरण दिखलाने के साथ-साथ परमार वंश और भोज के गौरव का वर्णन करने के लिए भोज के किसी सभा-पंडित ने उसकी रचना की हो। उक्त सर्ग का कथा-प्रसंग ऐसा जान पड़ता है कि भोज क्षिप्रा नदी के तट पर महाकाल वन में किसी ऋषि के आश्रम में गया। वहाँ अनेक ऋषियों ने उसका स्वागत किया। किसी [ऋषि] ने यह भी कहा कि [आपके पूर्वज] वैरिसिंह आदि में शिव-भक्ति थी, किंतु आपकी तरह शिवका प्रत्यक्ष दर्शन किसी ने नहीं पाया। जहाँ पर राजा की सवारी आश्रम की ओर जा रही थी वहाँ कई ऋषि-पत्नियों के उत्सुकता के साथ दौड़कर आने, दर्शन करने आदि का वर्णन भी है। उसमें ऋषि-पत्नियों के प्रसंग में जिस राजा को उत्सुकता से वे देखने आयीं और देखती हैं उसको मालवराज, त्रिलोकनारायण और भोज इन तीनों नामों से बतलाया है[9] अर्थात् भोज और त्रिलोकनारायण दोनों एक ही राजा के नाम हैं, जो मालवे का राजा था। लोक और भुवन पर्याय शब्द है, इसलिए त्रिभुवननारायण और त्रिलोकनारायण एक ही राजा के सूचक हैं। अतएव उपर्युक्त भोज स्वामी और त्रिभुवननारायण नाम एक ही मन्दिर के बोधक हैं और त्रिभुवननारायण भोज का विरुद (उपनाम) होना चाहिए। मालवा के कई परमार राजाओं के विरुद भी मिलते हैं, यथा—वैरिसिंह (दूसरा) का 'वज्रट', हर्ष का 'सीयक' मुंज का 'वाक्पतिराज', 'अमोघवर्ष' और 'उत्पलराज' तथा सिंधुराज का 'नवसा-

---

9 नाडायनि व्रीडजडेह मा। भूरचारायणि स्फारम् चारुचक्षुः विलोक (?)
वाकायति मुञ्जकुञ्जा-न्मौञ्जायनीं (?) मालवराज एति ॥
वीक्षस्व तैकायनि शंसकोऽयं शाणायनि क्वायुधवाणशाणः।
प्राणायनि प्राणसमस्त्रिलोक्या। स्त्रिलोकनारायणभूमिपालः ॥
(पृ० २७७)

द्वैपायनीतो भव सायकाय का न्युपेहि दौर्गायणि देहि मार्गम्।
त्वरस्व चैत्रायणि चाटकाय न्यौदुम्बरायण्ययमेति भोजः ॥
(पृ० २७८)

मा होसकायन्यनुधाव हंसान्, मा शांश पायन्यु पर्शिशपे स्थाः।
मा पैङ्गरायण्यनु पैङ्गलाय, न्युपैहिदृष्टो नृपतिर्व्रजामः ॥
(पृ० २७९)

हसांक'। इससे हम कह सकते हैं कि यहाँ रहते समय भोज ने जो शिवमन्दिर बनवाया उसका नाम अपने उपनाम पर "त्रिभुवननारायण" का मन्दिर रखा[10]।

मालवा के परमारों का अधिकार चित्तौड़ पर परमार यशोवर्मा तक रहा। यशोवर्मा के पिता नरवर्मा के समय गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) राजा जयसिंह (सिद्धराज) ने मालवे पर चढ़ाई की और उसका देश विजय करता हुआ वह आगे बढ़ता गया। नरवर्मा का देहान्त होने पर उसका पुत्र यशोवर्मा जयसिंह से लड़ता रहा और १२ वर्ष की लड़ाई के बाद जयसिंह ने यशोवर्मा को जीतकर बहुधा सारा मालवा अपने राज्य में मिला लिया जिससे चित्तौड़ का क़िला भी सोलंकियों के अधिकार में चला गया। जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल के दो शिलालेख चित्तौड़ से मिले हैं। कुमारपाल का उत्तराधिकारी अजयपाल अयोग्य था। उसके मारे जाने के बाद गुजरात के राज्य में अव्यवस्था फैली, जिसका लाभ उठाकर मेवाड़ के राजा जैत्रसिंह ने अपने पैतृक चित्तौड़ के क़िले पर फिर अधिकार कर लिया।*

---

10 यह विशाल मन्दिर महाराणा कुम्भकरण के बनवाये हुए चित्तौड़ के प्रसिद्ध कीर्ति-स्तम्भ से दक्षिण में है, उसके गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है और पीछे की दीवार में अनुमान ६ फुट की ऊँचाई पर शिव की विशाल त्रिमूर्ति बनी हुई है, जिसकी अद्भुत आकृति देखकर ग्रामीण लोग उक्त मन्दिर को अदद्बद्जी (अद्भुतजी) का मन्दिर कहते हैं। वि० सं० १४८५ में चित्तौड़ के महाराणा मोकल ने उक्त मन्दिर का जीर्णोद्धार कराकर वहाँ पर एक बड़ी प्रशस्ति लगवायी, जिससे लोग उसे 'मोकलजी का मन्दिर' भी कहते हैं।

वीणा मा० प०, इन्दौर

धार-अंक, कार्तिक सं० १९९८ ई० स० १९४१।

---

* इस निबन्ध में प्रायः उन्हीं सारी बातों का संक्षेप में समावेश हुआ है, जो 'परमार राजा भोज उपनाम त्रिभुवननारायण' में वर्णित हैं। 'परमार राजा भोज उपनाम त्रिभुवननारायण' शीर्षक निबन्ध में श्री ओझाजी ने मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा सामन्तसिंह के गुजरात के सोलंकी राजा अजयपाल को हराने के बाद गुहिलवंशियों का चित्तौड़ पर अधिकार होने का अनुमान किया है। (देखो आगे का निबन्ध संख्या १२ पृ०, १९४ टिप्पण संख्या २)। सम्भव है, उनका यह अनुमान ठीक हो।

११–सिन्धुराज की मृत्यु और भोज की राजगद्दी

प्रसिद्ध विद्यानुरागी परमारवंशी राजा भोज के पिता, तथा राजा मुंज के छोटे भाई, राजा सिंधुराज का देहान्त कब और कैसे हुआ यह अभी तक अनिश्चित है। परमारों के शिलालेख, दानपत्रों तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों में इसका कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यही है कि विशेष प्रसंग को छोड़ कर हमारे यहाँ ऐसी घटनाओं का उल्लेख नहीं किया जाता। राजा युद्ध में जीतता हुआ वीरगति पावे, या असाधारण रीति पर देह छोड़े, तब तो वह बात कही जाती है, परन्तु जब कभी कोई राजा शत्रु के हाथ युद्धक्षेत्र में मारा जाता है, या हार जाता है अथवा क़ैद होकर मरता है तब उसके वंश के इतिहास लेखक तो उस घटना का अपलाप या गोपन करते हैं किंतु विपक्ष के लोग अपने वंश का उत्कर्ष प्रकट करने के लिये, कभी-कभी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर, उसका उल्लेख अवश्य करते हैं।

जयसिंहसूरि अपने कुमारपालचरित में गुजरात के सोलंकी राजा चामुंडराय के वृतान्त में लिखता है कि 'चामुंडा के वर से प्रबल होकर चामुंडराज

इसके बाद ऐसा पाया जाता है कि गुजरात के राजा भीमदेव 'द्वितीय' (भोला भीम) के समय गुजरातियों की सामन्तसिंह पर चढ़ाई हुई, उसमें सामन्तसिंह के हाथ से उसका नवस्थापित बागड़ राज्य भी शत्रुओं के हाथ में चला गया और गुजरात की सेना ने आगे बढ़कर मेवाड़ पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर आहाड़ में झण्डा जा खड़ा किया, एवम् चित्तौड़ पीछा गुजरातवालों के हाथ में आगया। वि० सं० की तैरहवीं शताब्दी के पिछले भाग में गुजरात के राजा भीमदेव के समय पुनः वहाँ विशृंखलता फैली, जिसका लाभ उठाकर मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा जैत्रसिंह ने (जो कुम्भलगढ़ के शिलालेख के अनुसार सामन्तसिंह का चचेरा भाई था) पराक्रम प्रदर्शित कर गुजरातवालों के अधिकार में गई हुई बागड़ तथा मेवाड़ की भूमि पीछी छीन ली और आहाड़ से गुजरातियों का दखल उठाकर चित्तौड़ पर भी पुनः गुहिलवंशियों का आधिपत्य स्थिर कर लिया।

(सं० टि०)

ने मदोन्मत्त हाथी के समान सिंधुराज को युद्ध में मारा,[1] । यहां पर सिन्धु-राज का अर्थ सिन्धु देश का राजा और सिन्धुराज नामक राजा दोनों ही प्रकार से हो सकता है । यह निर्णय करना है कि दोनों में से कौनसा अर्थ ठीक है ।

वड़नगर से मिली हुई सोलंकी राजा कुमारपाल की प्रशस्ति में जो वि० सं० १२०८ (ई० स० ११५१) आश्विन शुदि ५; गुरुवार* की है, लिखा है कि उस (मूलराज) का पुत्र राजाओं का शिरोमणि चामुंडराज हुआ, जिसके मस्त हाथियों के मदगन्ध की हवा के सूंघने मात्र से, दूर से ही, मदरहित होकर भागते हुए अपने हाथियों के साथ राजा सिन्धुराज इस तरह से नष्ट हुआ कि उसके यश की गन्ध तक न रही[2] ।'

इस श्लोक में 'नष्ट' के अर्थ 'भागा' और 'मारा गया' दोनों ही हो सकते हैं, किन्तु कुमारपालचरित से ऊपर उद्धृत् किए गए श्लोक में और इसमें एक ही चामुंडराज से एक ही सिन्धुराज के पराजय का वर्णन होने से दोनों को मिलाने से 'मारा गया' अर्थ करना ही ठीक है । यहां पर 'सिन्धुराजः' का विशेषण 'क्षोणिपतिः' होने से 'सिन्धुराज नामक राजा' ही अर्थ कर सकते हैं, सिन्धुदेश का राजा नहीं; क्योंकि वैसा होने से क्षोणिपतिः (= भूपति) पद 'सिन्धुराजः' के साथ नहीं आ सकता । इस प्रशस्ति का सम्पादन करते समय डाक्टर बूलर भ्रम में पड़ गये और असली अर्थ को न निकाल सके । उन्होंने 'सिन्धुराज' का अर्थ 'सिन्धदेश का राजा' किया[3]

---

1 रेजे चामुण्डराजोऽथ यश्चामुण्डावरोद्धुरः ।
सिंधुरेंद्रमिवोन्मत्तं सिंधुराजम् मृधेऽवधीत् ।।

जयसिंहसूरि ने वि० सं० १४२२ (ई० सं० १३६५) में इस काव्य की रचना की थी ।

(कुमारपालचरित १।३१)

2 सूनुस्तस्य बभूव भूपतिलकश्चामुण्डराजाह्वयो
यद्गन्धद्विपदानगन्ध पवनाघ्राणेन दूरादपि ।
विभ्रस्यन्मदगन्धभग्नकरिभि श्रीसिंधुराजस्तथा
नष्टः क्षोणिपतिर्यथास्य यशसां गन्धोपि निर्नाशितः ।।

(एपिग्राफिआ इन्डिका, जिल्द १, पृ० २९७)

3 एपि० इन्डिका, जि० १, पृ० २९४,३०२ ।

और उससे क्षोणिपतिः का मेल न मिलता देखकर पाद टीका में 'क्षोणिपति-र्यस्य' की जगह 'क्षोणिपतेर्यस्य' पाठ सुधार कर अर्थ किया। 'जिस राजा के (यश का गंध इत्यादि)'। परन्तु जब मूल में प्रत्यक्ष 'क्षोणिपतिर्यस्य' पाठ है, तब उसके बदलने की क्या आवश्यकता है ?

अतएव यह निश्चित है कि चामुंडराज के हाथ से युद्ध में सिन्धुराज नामक राजा ही मारा गया, सिंध देश का राजा नहीं। चामुंडराय का सम-कालीन परमार सिंधुराज को छोड़कर और कोई सिन्धुराज न था, इसलिये यही सिन्धुराज चामुन्डराज के हाथों मारा गया।

इन दोनों श्लोकों में चामुंडराज के युद्ध का समय नहीं दिया गया, इस-लिये इस घटना का समय निश्चित करने की आवश्यकता है। सिन्धुराज अपने भाई मुंज (वाक्पतिराज) के पीछे गद्दी पर बैठा। संवत् १०५० (ई० स० ९९३) में अमितगति ने 'सुभाषितरत्नसन्दोह' बनाया, उस समय मुंज विद्यामान था[4]। उसके पीछे किसी समय वह कल्याण के सोलंकी राजा तैलप के हाथों परास्त हुआ और क़ैद होकर शत्रु के यहाँ मारा गया। तैलप का देहान्त सं० १०५६ (ई० स० ९९७) में हुआ, इसलिये मुंज की मृत्यु संवत् १०५० और १०५४ (ई० सं० ९९३ और ९९७) के बीच में किसी समय हुई[5]।

मुंज ने अपने भाई सिंधुराज के पुत्र भोज को, उसके सद्‌गुणों से प्रसन्न होकर, अपना उत्तराधिकारी बनाया था; किन्तु मुंज की मृत्यु के समय भोज बालक था इसलिये उसका पिता सिंधुराज ही भाई के स्थान पर मालवा (उज्जैन) की गद्दी पर बैठा। गुजरात के सोलंकी राजा चामुंडराज ने, जिसने सिन्धुराज को परास्त करके मारा,[6] विक्रम संवत् १०५२ से १०६६

---

4 समारूढे पूतत्रिदिववसतिं विक्रमनृपे
सहस्त्र वर्षाणां प्रभवति हि पन्चाशदधि कें।
समाप्तम् पन्चम्यामवति धरणिं मुन्जनृपतौ
सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदम् शास्त्रमनघम ॥
(अमितगति का सुभाषितरत्न सन्दोह)

5 गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—सोलंकियों का इतिहास, प्रथम भाग पृ० ७७, ८०।

6 गुजरात (अनहिलवाड़ा) के सोलंकियों और धार के परमारों में वंशपरम्परागत अस्थिवैर हो गया था, दोनों बराबर लड़ते रहे। इस वैर का आरम्भ चामुण्डराज के द्वारा सिंधुराज के मारे जाने ही से हुआ हो।

(ईसवी सन् ९९६ से १०१०) तक चौदह वर्ष राज्य किया। अतएव सिन्धुराज की मृत्यु इन्हीं संवतों के बीच किसी समय हुई और उसकी मृत्यु का संवत् ही भोज के गद्दी बैठने का संवत् मानना चाहिए। डाक्टर बूलर ने भी भोज के सिंहासनारूढ़ होने का समय ई० सन् १०१० (विक्रम संवत् १०६६–६७ अनुमान किया है[7]।

जैन लेखक मुनि सुन्दरसूरि के शिष्य शुभशील ने अपने भोज-प्रबन्ध में भोज के राज्यसिंहासन पर बैठने का समय विक्रम संवत् १०७८ (ई० स० १०२१) लिखा है—

विक्रमाद् वासरादष्टमुनिव्योमेंदुसंमिते।
वर्षे मुंजपदे भोजभूपो (?) पट्टेनिवेशितः॥[8]

यह कथन सर्वथा मान्य नहीं क्योंकि प्रथम तो भोज, मुंज के स्थान पर नहीं बैठा और वह सिन्धुराज के पीछे गद्दी पर बैठा। दूसरे भोज का एक दानपत्र विक्रम संवत् १०७६ (ई० सन् १०२०) माघ शुक्ल ५ का मिल गया है[9]। इस ताम्रपत्र का उल्लिखित दान 'कोंकण[10] विजयपर्वणि' अर्थात् कोंकण देश (के राजा) के विजय के वार्षिकोत्सव पर दिया गया है।

भोज ने कोंकण विजय करके तैलप के हाथों मुंज के मारे जाने का बदला लिया। इस दानपत्र से सिद्ध होता है कि संवत् १०७६ से कम से कम एक वर्ष पहले कोंकण विजय हो चुका था, और भोज को राजगद्दी पर बैठे भी कुछ समय बीत चुका था, तभी तो वह इतना प्रबल और पराक्रमी हुआ कि कोंकण विजय कर सका, जो राज्यसिंहासन पर बैठने के प्रथम या द्वितीय वर्ष में संभव नहीं।

बल्लाल पंडित के भोज-प्रबन्ध के अनुसार हिन्दी की पुस्तकों में भी यह प्रवाद प्रचलित हो गया है कि सिन्धुल (सिंधुराज) अपने बालक पुत्र भोज को अपने छोटे भाई मुंज को सौंप गया और मुंज ने राज्यलोभ से उसे मार डालना चाहा इत्यादि। बल्लाल पंडित, या प्रबन्धचिंतामणि के जैन लेखक

---

7 एपि० इन्डिका, जिल्द १, पृ० २३२।

8 प्रबन्धचिंतामणि, बम्बई की छपी, पृ० ३३९।

9 यह दानपत्र एपि० इन्डिका, जि० ११, पृ० १८१–१८४ में छपा है और असली ताम्रपत्र राजपूताना म्युजिअम, अजमेर में है।

10 उस समय कोंकण पर जयसिंह (दूसरे) सोलंकी का राज्य था, जो तैलप का पुत्र था (गौ० ही० ओझा—सोलंकियों का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १३३)

और भोजचरित्र के कर्त्ता आदि भोज के इतिहास से ठीक-ठीक परिचित न थे, जिससे उनके ग्रन्थों में अनेक उटपटांग बातें मिलती हैं। परमारों का वंशक्रम यह है कि वैरिसिंह, उसके पीछे उसका पुत्र सीयक (श्रीहर्ष), उसका पुत्र मुंज (वाक्पतिराज), उसका छोटा भाई सिन्धुराज, उसके पीछे सिन्धुराज का पुत्र भोज। नागपुर से मिले हुए वि० संवत् ११६१ (ई० सं० ११०४) के शिलालेख में,[11] तथा उदयादित्य के लेख में[12] यही क्रम दिया है। सिन्धुराज के राजत्वकाल में परिमल (पद्मगुप्त) कवि ने 'नवसाहसांकचरित' काव्य लिखा, उसमें सिन्धुराज तक का यही क्रम हैं। 'तिलकमन्जरी' का कर्त्ता धनपाल कवि मुंज, सिन्धुराज और भोज तीनों का समकालीन था और उसने भोज के राज्य में अपना काव्य रचा। उसने भी यही वंशानुक्रम बताया है[13]। इन प्रमाणों से इन प्रबन्धों का कथन निर्मूल सिद्ध होता है।

ना० प्र० प० (त्रै० न०) काशी, भाग १, ई० सं० १६७७ ई–१६८०।

१२—परमार राजा भोज का उपनाम 'त्रिभुवननारायण'

प्राचीनकाल के हिन्दुराजा कभी-कभी एक या अधिक उपनाम (विरुद) धारण किया करते थे। जैसे मालवा के परमार राजा वैरिसिंह (दूसरे) का 'वज्रट', हर्ष का 'सीयक', मुंज का 'वाक्पतिराज' और 'अमोघवर्ष' और भोज के पिता सिन्धुराज का 'नवसाहसांक' उपनाम मिलता है, वैसे ही भोज का 'त्रिभुवननारायण' उपनाम होना पाया जाता है।

उदयपुर (मेवाड़) राज्य के चीरवा नामक गांव (एकलिंगजी के मन्दिर से ३ मील दक्षिण में) के नये बने हुए विष्णु के मन्दिर की दीवार में

---

11 एपि० इन्डिका, जि० २, पृ० १८३–८५।

12 एपि० इन्डिका, जि० १, पृ० २६५।

13 श्रीवैरिसिंह इति दुर्धरसैन्यदन्तिदन्ताग्रभिन्नचतुरर्णवकूलभित्तिः ।।४०
तत्राभूदवन्तिः श्रियामपरया श्रीहर्ष इत्याख्यया विख्यातः······
श्रीसीयकः··।।४१।।तस्योदग्रयशाः··सुतः··श्रीसिंधुराजोऽभवत् ।··
यस्य स श्रीमद् वाकपतिराजदेवनृपतिर्वीराग्रणीरग्रजः ।।४२।।····
तस्याजायत मांसलायतभुजः श्रीभोज इत्यात्मजः। प्रीत्या योग्य इति प्रतापवसतिः ख्यातेन मुञ्जाख्यया: स्वे वाकपतिराजभूमिपतिना राज्येऽभिषिक्तः स्वयम् ।।४३।।

(तिलकमन्जरी)

वहाँ के किसी पुराने मन्दिर का एक शिलालेख[1] लगाया गया है, जो वि० सं० १३३० कार्तिक सुदि १ का और मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय का है। मूल में जिस मन्दिर का यह शिलालेख था, वह मेवाड़ के राजाओं के नियत किए हुए नागहृद (नागदा-मेवाड़ की पुरानी राजधानी जो एक-लिंगजी के निकट है) के तलारक्षों के एक पूर्वज ने बनवाया था। उसमें तलारक्ष[2] उद्धरण के वंश का पूरा परिचय देने के अतिरिक्त उसके जिस वंशज ने जो-जो लड़ाइयाँ लड़ी, या जो राजकीय सेवाएँ की, उसका भी उल्लेख है। उसमें चितौड़ के तलारक्ष मदन के विषय में लिखा है कि 'रत्न का छोटा भाई निष्पापी मदन' राजा समरसिंह की कृपा से चितौड़ में वंश परम्परागत तलारता पाकर श्री भोजराज (राजा भोज) के बनाए

---

1 शिलालेख—यह शिलालेख मेरी भेजी हुई छाप परसे विएना ओरिएँटल जर्नल में छप चुका है (जि० २१, पृ० १४३ आदि)।

2 तलारक्ष—तलारक्ष और तलार दोनों नाम किसी राज कर्मचारी के सूचक हैं। संस्कृत के कोशों में यह नाम नहीं मिलते, परन्तु कभी-कभी प्राचीन शिलालेखों या संस्कृत पुस्तकों में मिलते हैं। चीरवा के शिलालेख में तलारक्ष उद्धरण के वंश का विस्तृत वर्णन मिलता है। उद्धरण के दुष्टों को सजा देने और शिष्टों का रक्षण करने में समर्थ होने के कारण राजा मथनसिंह ने नागदे का तलारक्ष बनवाया था (श्लोक ६–१०)। राजा पद्मसिंह ने उस (उद्धरण) के पुत्र योगराज को उसके पिता का स्थान दिया था (श्लोक ११–१२)। योगराज का ज्येष्ट पुत्र पमराज, जब सुरत्राण (सुलतान समशुद्दीन अल्तिमश) की सेना ने नागदा का भंग किया; उस समय भूताले के पास लड़ाई में लड़ता हुआ मारा गया (श्लोक १५–१६)। योगराज के दूसरे बेटे महेंद्र का ज्येष्ट पुत्र बाला या बालाक राजा जैत्रसिंह के समय कोटड़ा लेने में राणक (राणा) त्रिभुवन (त्रिभुवन-पाल, गुजरात का राजा) के साथ की लड़ाई में मारा गया (श्लोक १७ और १६। राजा जैत्रसिंह ने योगराज के चौथे पुत्र क्षेम को चित्रकूट (चित्तौड़) की तलारता (तलार का पद) दी (श्लोक १५ और २२)। क्षेम का ज्येष्ट पुत्र रत्न चित्रकूट की तलहट्टिका (तलहटी = किले या पहाड़ी स्थान के नीचेवाली समान भूमि पर की आबादी) में शत्रु से लड़ने में मारा गया (श्लोक २५ और २६)। रत्न का छोटा भाई मदन श्री जयसल (जैत्र-सिंह) के लिये उत्थूणक (अर्थूणा, बाँसवाड़ा राज्य में) की लड़ाई में

हुए 'त्रिभुवननारायण' नामक देवमन्दिर में अपने कल्याण की इच्छा से सदाशिव की पूजा किया करता था[1]।

चित्तौड़ के क़िले के रामपोल दरवाजे के बाहर नीम के वृक्षवाले चबूतरे पर पड़ा हुआ मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय का वि० सं० १३५८

जैत्रमल्ल से लड़ा (श्लोक २७ और २६)। राजा समरसिंह ने मदन को चित्रकूट की तलारता दी (श्लोक ३०)। इन सब बातों को देखते हुए यही प्रतीत होता है, उद्धरण के वंशज मेवाड़ के राजाओं की सैनिक सेवा करनेवाले थ। उद्धरण को 'दुष्टों को सज़ा देने और शिष्टों का रक्षण करने में समर्थ होने के कारण मथनसिंह ने नागदे का तलारक्ष बनाया'; यह कथन यही सूचित करता है कि 'तलारक्ष' या 'तलार' नाम नगर की रक्षा करनेवाले अधिकारी (कोतवाल) का सूचक होना चाहिये। सोड्ढल–रचित 'उदयसुन्दरी कथा' में एक राक्षस का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसको घृणा उत्पन्न करनेवाली आकृति के कारण वह नरकरूपी नगर के तलारक्ष के सदृश था (घृणावद्रूपतया तलारमिवनरक नगरस्य–पृ० ७५)। यह कथन भी उक्त नाम के नगर की रक्षा करनेवाले अधिकारी (कोतवाल) का ही सूचक होना बतलाता है। अन्चलगच्छ के माणिक्यसुन्दर सूरि ने वि० सं० १४७८ में 'पृथ्वीचन्द चरित्र' रचा, जिसमें एक जगह बहुत से राजकीय अधिकारियों की नामावली दी है, जिसमे 'तलवर' और 'तलवर्ग नाम भी हैं (प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह–बड़ौदा सीरीज, पृ० ६७)। कहीं शिलालेखों में 'तलवर्गिक' भी आता है। सम्भव है कि ये नाम भी तलारक्ष के ही सूचक हों। गुजराती भाषा में अबतक 'तलाटी' शब्द प्रचलित है जो 'तलारक्ष' या 'तलार' का ही अपभ्रन्श होना चाहिये। अब 'तलाटी' शब्द पटवारी का सूचक है; परन्तु प्राचीन काल में तलारक्ष या तलार सैनिक अधिकारी का सूचक था। उस समय पुलिस भी सेना का ही अंग समझी जाती थी।

1 रत्नानुजोस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचारः ।
मदनः प्रसन्नवदनःसतत कृत दुष्टजनकदनः ॥२७··॥
श्रीचित्रकूटदूर्गेतलारतां यः पितृक्रमायतां ।
श्रीसमरसिंहराजप्रसादतः प्राय निःपाप ॥३०॥
श्रीभोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्य देवगृहे ।
योविरचयति स्म सदाशिवपरिचर्यां स्व शिवलिप्सुः ॥३१॥
(चीरवा का शिलालेख)

माघ सुदि १० का एक शिलालेख गत वर्ष मुझे मिला। उसकी दाहिनी ओर का कुछ अंश नष्ट हो जाने से प्रत्येक पंक्ति के अन्त के कहीं एक, कहीं दो अक्षर जाते रहे हैं और बीच के कुछ अक्षर भी कहीं-कहीं बिगड़ गए हैं। तिस पर भी उसका संवत् बच गया है और उससे पाया जाता है कि 'महाराजाधिराज श्री समरसिंह देव के राज्य समय प्रतिहार (पड़िहार) वंशी महारावत राज श्री'''राज० माता के बेटे राज० (राजपुत्र) धारसिंह ने श्री भोजस्वामी देवजगती[1] (भोजस्वामी' नामक या राजा भोज के बनवाये हुए देव मन्दिर) में प्रशस्ति प्रट्टिका सहित''''बनवाया[2]।'

ऊपर के दोनों शिलालेखों से पाया जाता है कि चित्तौड़ के क़िले पर भोज नामक किसी राजा ने एक देवमन्दिर बनाया था, जिसको पहले शिलालेख में 'त्रिभुवननारायण' का और दूसरे में 'भोजस्वामी' का मन्दिर कहा है और वह मन्दिर मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय विद्यमान था।

अब यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि चित्तौड़ के किले पर उक्त मन्दिर को बनवाने वाला श्री भोजदेव (राजा भोज) कौन था। मेवाड के गुहिलवंशी राजा बापा (कालभोज) ने चित्तौड़ का किला मौरियों (मोरवंशियों) से लिया। उसके पीछे उस वंश में तो भोज नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ। पिछले समय में मेवाड़ वालों के पड़ोसी राजा सांभर, अजमेर और नाड़ोल के चौहान, आबू और मालवा के परमार, तथा गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) थे, जिसके पूर्व गुर्जर देश[3] तथा कन्नौज के प्रतिहार (पड़िहार) थे। इन पड़ोसी राजवंशों में से मालवा के परमार और प्रतिहारों में ही भोज या भोजदेव नामक राजा का होना पाया जाता है। प्रतिहारवंशी किसी राजा के चित्तौड़ पर रहने या मेवाड़ पर चढ़ाई करने का अब तक कोई उल्लेख नहीं मिला, परन्तु बीजापुर (जोधपुर राज्य में) से मिले हुए हस्तिकुंडी (हथूँड़ी) के राष्ट्रकूट (राठौड़) राजा धवल और उसके पुत्र बालप्रसाद के समय के वि० सं० १०५३ माघ सुदी

---

1 जगती = मन्दिर, देवालय; या देवालय का हाता (विख्यातो देवम् पितु नाम्ना महेश्वरम। श्री सोमनाथदेवस्य जगत्यापुण्य वृद्धये।। मांगरोल का वि० स० १२०२ का शिलालेख, भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १५८)

2 नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० ४१३ और टि० ५७।

3 ना० प्र० पत्रिका, भाग २, पृ ३४१।

१३ के शिलालेख से पाया जाता है कि 'मुंजराज (मालवे के परमार राजा मुंज) ने मेदपाट (मेवाड़) के मदरूपी आघाट (आहाड़ मेवाड़ की पुरानी राजधानी) को तोड़ा', उस समय धवल ने मेवाड़ की सेना की रक्षा की थी[1]। इससे संभव है कि मुंज ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर आहाड़ को तोड़ने पर चित्तौड़ का क़िला और उसके आस-पास का मालवे से मिला हुआ प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया हो।

पोरवाड़ महाजन विमलशाह के बनवाए हुए आबू पर के देलवाड़ा गाँव के प्रसिद्ध जैन मन्दिर (आदिनाथ) विमलवसही के जीर्णोद्धार के वि० सं० १३७८ ज्येष्ठ सुदी ९ के शिलालेख में उक्त मन्दिर के बनने के विषय में लिखा है कि 'चन्द्रावती पुरी का राजा धंधु (धंधुक) वीरों का अग्रणी था। जब उसने राजा भीमदेव की सेवा स्वीकार न की, तब राजा (भीमदेव) उस पर क्रुद्ध हुआ, जिससे वह मनस्वी (धन्धुक) धारा के राजा भोज के पास चला गया। फिर राजा ने प्राग्वाट (पोरवाड़) वंशी मन्त्री विमल को अर्बुद (आबू) का दण्डपति (सेनापति, हाकिम) बनाया। उसने वि० सं० १०८८ में आबू के शिखर पर आदिनाथ का मन्दिर बनवाया[2]।'

---

1 भंक्त्वाघाटम धटाभि:प्रकटमिवमिदम् मेदपाटेभटानां
जन्ये राजन्यजन्येजनयति जनताजं (!) रणंमुंजराजे ॥
श्री' 'माणे प्रणष्टे हरिण इव भिया गुर्जरेशेनिनष्टे ।
तत्सैन्यानां स(श)रण्यो हरिरिव शरणे यः सुराणा व(ब)भूव ॥१०॥
(एपि० इंडिका, जि० १०, पृ० १२–१३)

मुंज की मेवाड़ पर चढ़ाई का वहाँ के राजा शक्तिकुमार के समय में होना अनुमान किया जा सकता है। यदि मूल शब्द में त्रुटित अक्षर 'खुं' हो तो खुंमाण के वंशज से अभिप्राय है। यह प्रचलित रीति है, चारण लोग मेवाड़के महाराणाओं को 'खुंमाणा' अर्थात् खुंमाण के गोत्रज कहकर सम्बोधन करते हैं।

2 तत्कुल कमलमरालः कालः प्रत्यर्थि मण्डलीकानां ।
चन्द्रावती पुरीशः समजनि वीराग्रणीर्धंधुः ॥५॥
श्री भीमदेवस्य नृपस्य सेवामलभ्य(!)मान:किल धुन्धुराजः ।
नरेश रोषाश्च ततोमनस्वी धाराधिपम् भोजनृपं प्रवेदे ॥६॥

उसी मन्दिर के बनवाए जाने के सम्बन्ध में जिन प्रभसूरि, जो मेवाड़ के राजा समरसिंह का समकालीन था, अपने 'तीर्थ कल्प' में लिखता है कि 'जब गुर्जरेश्वर (भीमदेव) राजानक धांधुक (राजा धन्धुक) पर क्रुद्ध हुआ, तब उस (विमलशाह) ने भक्ति से उस (भीमदेव) को प्रसन्न करके उस (धन्धुक) को चित्रकूट (चित्तौड़) से लाकर वि० सं० १०८८ में उस (धन्धुक) की आज्ञा लेकर बड़े खर्च से विमलवसती नामक उत्तम मन्दिर बनवाया।'

इन दोनों कथनों को साथ लेने से यही पाया जाता है कि गुजरात के सोलंकी (चौलुक्य) राजा भीमदेव से बिगाड़ हो जाने पर आबू का परमार राजा धन्धुक मालवा के परमार राजा भोज के पास चला गया, जो चित्तौड़ में रहता था। विमलशाह ने धंधुक को समझाया और चित्तौड़ से लाकर उसे भीमदेव की सेवा स्वीकार कराई। उसके बाद उसने आबू पर आदिनाथ का मन्दिर बनवाया। इससे स्पष्ट है कि चित्तौड़ में रहने और वहाँ पर मन्दिर बनाने वाला भोज मालवे का राजा ही था।

प्राग्वाटवंशाभरणंबभूव रत्नप्रधानम् विमलाभिधान ॥७॥
तपश्च भीमेन नराधिपेन प्रताप वह्नि विमलो महामतिः।
कृतोर्बुदे दंडपतिःसतां प्रियो प्रियंवदो नन्दतु जैनशासने ॥८॥
श्रीविक्रमादित्यनृपाद्व्यतीतेऽष्टाशीतियाते शरदां सहस्त्रे।
श्री आदिदेवम् शिखरेर्बुदस्य निवेसि(शि)तं श्री विमलेन वन्दे ॥१२॥

(आबू का शिलालेख—अप्रकाशित)

राजानकश्रीधांधुके क्रुद्धं श्रीगुर्जरेश्वरम्।
प्रसाद्य भक्तया तं चित्रकूटादानीयतद्गिरा ॥३९॥
वैंक्रमे वसुवस्वाशा १०८८ मितेऽब्दे भूरिरैव्ययात्।
सत्प्रसादं सविमलवसत्याह्लं व्याधापयत् ॥४०॥

(तीर्थकल्प का अर्बुदकल्प)

2 भोज के पीछे चित्तौड़ पर मालवा के परमारों का अधिकार कब तक रहा और कैसे उठा, इस विषय में कुछ भी लिखा हुआ नहीं मिलता। परन्तु गुजरात के राजा सोलंकी राजा कुमारपाल के दो शिलालेख चित्तौड़ से मिले हैं। जिनमें एक वि० सं० १२०७ का (एपि० इंडि०, जि० २, पृ० ४२२–२४) और दूसरा जो बड़ा है, बिना संवत का (अप्रकाशित) है। गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह के किसी पूर्वज ने या उसने

यह कहा जा चुका है कि 'भोजस्वामी जगती' का अर्थ भोजस्वामी नामक देव मन्दिर व उसके हाते की भूमि है। यह भी आ गया है कि 'भोजदेव-कारितदेवगृह' का नाम 'त्रिभुवननारायणाख्य' था। स्थापित देवता का नाम 'भोजस्वामी' क्यों पड़ा ? आराधक जिस देवता की प्रतिष्ठा करता है उसका नाम अपने नाम पर रखने की चाल है। महाराणाकुंभा के बनवाए हुए चित्तौड़, कुंभलगढ़ और आबू पर के देवालयों के नाम 'कुंभस्वामी' है। आमेर के कुंवर जगतसिंह का बनवाया हुआ मन्दिर 'जगतशिरोमणि' का महाराज प्रतापसिंह का स्थापित शिवलिंग 'प्रतापेश्वर' गुलेर की राणी कल्याणदेई की प्रतिष्ठापित विष्णुमूर्ति 'कल्याणराय' कहलाते हैं। ऐसे उदाहरण कई मिलते हैं। इसलिए भोजस्वामीभोज की प्रतिष्ठापित देवमूर्ति। उसी भोजस्वामी का नाम त्रिभुवननारायणाख्य देवगृह क्यों हुआ ? आगे बतलाया जायगा कि भोज परम माहेश्वर था और वह मन्दिर नारायण का नहीं, शिव का है। तलारक्ष मदन के विषय में यह कहना कि त्रिभुवननारायणाख्य देवगृह में वह शिव पूजा करता था, इसी बात को स्पष्ट करता है। भोजस्वामी के मन्दिर की 'आख्या' 'त्रिभुवननारायण' तभी हो सकती है, जबकि भोज का विरुद त्रिभुवननारायण किसी और स्वन्तत्र प्रमाण से सिद्ध हो।

अथवा कुमारपाल ने मेवाड़ पर चढ़ाई की हो, या लड़कर चित्तौड़ लिया हो, ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। अतएव अनुमान होता है कि सिद्धराज जयसिंह ने बारह वर्ष तक मालवे के राजा नरवर्मा और उसके पुत्र यशोवर्मा से लड़कर मालवा अपने राज्य में मिलाया। उस समय मालवे के अधीन का चित्तौड़ का क़िला भी गुजरात के राजाओं के अधीन हुआ होगा। यही कारण कुमारपाल के शिलालेखों के चित्तौड़ में मिलने का भी होना चाहिये। वि० सं० १२३० में कुमारपाल के मरने पर उसके बड़े भाई महीपाल का पुत्र अजयपाल गुजरात का स्वामी हुआ। उस अत्याचारी और निर्बुद्धि राजा के समय में या उसके मारे जाने पर मालवा के परमारों ने मालवे पर फिर अधिकार कर लिया। मेवाड़ के राजा सामंतसिंह ने अजयपाल को लड़ाई में घायल कर भगाया और वि० सं० १२३३ में अजयपाल अपने एक द्वारपाल के हाथ से मारा गया। इन घटनाओं से पाया जाता है कि चित्तौड़ का क़िला मुंज के समय से लगाकर यशोवर्मा के सिद्धराज जयसिंह के हाथ क़ैद होने तक अर्थात् लगभग १५० वर्ष मालवा के परमारों के अधिकार में रहा। इसके पीछे वह गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के

वसा स्वतन्त्र प्रमाण है, गोविन्दसूरि के शिष्य वर्द्धमान ने 'गणरत्नमहोदधि' नामक ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० ११९७ (= ई० स० ११४०) में हुई[1]। वर्द्धमान सिद्धराज जयसिंह के आश्रित रहा हो[2]। आश्चर्य है न हेमचन्द्र उसका उल्लेख करता है, न वह हेमचन्द्र का[3]।

गणरत्न महोदधि में व्याकरण के गण श्लोकबद्ध किये गये हैं और फिर गण के प्रत्येक पद की व्याख्या और उदाहरण हैं। वर्द्धमान ने कई वैयाकरणों के मतों का उल्लेख किया है। उदाहरणों में कई कवियों की रचना

अधिकार में आया। सम्भव है कि मेवाड़ के राजा सामन्तसिंह के अजयपाल को हराने पर यह क़िला फिर गुहिलवंशियों के अधीन हुआ हो।

1 सप्तनवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु।
वर्षाणां विक्रमतो गणरत्नमहोदधिर्विहितः ॥
(एगलिंग का संस्करण, पृ० ४८०)

2 ग्रन्थ के आरम्भ में कहा है कि अपने शिष्यों की प्रार्थना से हम गणरत्न महोदधि की रचना करते हैं (स्वशिष्य' प्रार्थिताः कुर्मो गणरत्नमहोदधिम्) और इसकी व्याख्या में 'स्वशिष्य' को यों खोला है कि 'कुमारपाल–हरिपाल, मुनिचन्द्र, प्रभृति'। सम्भव है कि यह कुमारपाल ही आगे चलकर 'परमार्हत कुमारपाल' सिद्धराज जयसिंह का उत्तराधिकारी हो।

गणरत्न महोदधि में कई श्लोक या श्लोक खण्ड सिद्धराज की प्रशंसा के हैं, जिनसे जान पड़ता है कि वर्द्धमान ने सिद्धराजवर्णन भी लिखा था। इनमें कई जगह मम कई जगह 'मम सिद्धराज वर्णने तथा कहीं कुछ भी उल्लेख नहीं है। वे यहाँ उदधृत किये जाते हैं—

(१) मेघो नर्कवर्पति सिद्धराजः। (पृ० १६)

(२) निःसीमाश्चर्यधाम त्रिभुवनविदितं पत्तनं यत् त्वदीयं
तन्मध्ये वृद्धिमीयुः फल भरनमिताःशाखिनश्चूतमुख्याः।
नैतच्चित्रं विचित्राद्विहितकृतयुग त्वत्प्रभावात् क्षितिशः।
प्रादुःषन्ति प्रभूता यदि सुरतरवश्चित्रमेतद्‌बुधानाम् ॥
(ममैव, पृ० १३९)

(३) मतिमतां मधुरं कवितामृतम् ददति मन्त्रिललामवलाहके।
विदधति निखिलार्थविवेचनम जयति कल्पलता चिरदीधितिः ॥
(ममैव, पृ० १८२)

नाम से और कितनों की विना नाम के उद्धृत की है, इससे यह ग्रन्थ बड़े ही महत्त्व का है।

---

(४) दूरादपि रिपुलक्ष्यो मनीषितम् यन्त्रयन्ति सावेगाः ।
अब्धिमिवेतरभूभृन्निरुद्धगतयोऽपि कूलिन्यः ।। (ममैव, पृ० १८३)

(५) उद्यत्तीव्रानङ्गनाराचविद्धा स्वप्राणेभ्यो वल्लभम् त्वामदृष्टवा ।
वेगादेषा चक्रवाकी वराकी तीरात्तीरे प्रातरेव प्रयाति ।।
(ममैव क्रिया गुप्तके पृ० १९०)

(६) प्रत्युप्तमुक्ताफलपद्मरागप्रस्पर्धिभिस्तोषितविश्वलोकैः ।
यशोनुरागैस्त्व सिद्धनाथ चक्रे जगत्कार्किकलौहितीकम् ।।
(ममैव सिद्धराजवर्णने, पृ० २३५)

(७) जाते यस्य प्रयाणे तुरगखुरपुटोत्खातरेणुप्रपंचे
तीव्रं ध्वान्तायमाने प्रसरति वहले सर्वतोदिक्कमस्मिन् ।।
भास्वच्चन्द्रार्कविम्बग्रहगणरहितम् व्योम विक्ष्य प्रमुग्धाः
सान्ध्यंकर्मारभन्ते शिशुमुनिवटवो जातसन्ध्याभिशङ्काः ।।
(ममैव सिद्धराजवर्णने, पृ० ३७२)

(८) नवे यौवनिकोद्भेदे यस्य न स्खलितम् मनः ।
वृहितम् नापि सिद्धेशप्रसादेन मनीषिणः ।। (ममैव, पृ० ४३५)

वर्द्धमान ने अपने समसामयिक पण्डित सागरचन्द्र के नाम से भी कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं। उसने भी सिद्धराज जयसिंह के वर्णन में कोई काव्य लिखा था, ऐसा पाया जाता है--

(१) मुष्णातु कल्मषमलानि मनोऽपकूल-
खेलन्मरालमिथुनात्तपनात्मजेव ।। (सागरचन्द्रस्य, पृ० १०६)

(२) कंटकः कंटकान्यस्य दलया मास निर्दयम् ।
स हि न क्षमते किंचिद्विन्दुना प्यात्मनोऽधिकम् ।।
(सागरचन्द्रस्य, पृ० ११५)

(३) द्रव्याश्रयाः श्रीजयसिंहदेव गुणाः कणादेन महर्षिणोक्ताः ।
त्वया पुनः पण्डितदानशौण्ड गुणाश्रयम् द्रव्यमपि व्यधायि ।।
(पण्डित श्रीसागरचन्द्रस्य, पृ० १४४)

अकल्पितप्राणसमासमागमा मलीमसाङ्गा वृतभैक्षवृत्तयः ।
निर्ग्रन्थतां त्वत्परिपन्थिनोगता जगत्पते किंत्वजिनावलम्बिनः ।।
(श्री सागरचन्द्रस्य, पृ० ३०४)

3 यों परस्पर उल्लेख न करने का कारण साम्प्रदायिक मतभेद के कारण उपेक्षा हो सकती है, या अपने समय के ग्रन्थकारों को प्राचीनों की तरह प्रामाणिक न मानना हो सकता है।

तद्धित प्रकरण के गणों का विवेचन वर्द्धमान ने बहुत अच्छी तरह किया है। उसकी यह प्रौढोक्ति कि 'जिन तद्धितसिंहों से वैयाकरण रूपी हाथी भागते फिरते थे, उनके गणों के सिर पर मैंने पैर रख दिया, यद्यपि मैं गव्य (= गौवंशी) हूं, चमत्कार युक्त भी है', सच्ची भी[1]। अपत्यवाचक तद्धित रूपों के उदारण में गणरत्न महोदधि में कई-कई श्लोकों के लम्बे अवतरण स्थान-स्थान पर दिये गये हैं। उनकी रचना से जान पड़ता हैं कि वे किसी भट्टि काव्य के सदृश व्याकरण के उदाहरणमय काव्य के एक ही सर्ग में से है, क्योंकि छन्द एक ही है। यह भी जान पड़ता है कि वह व्याकरण के उदाहरणों के अतिरिक्त द्वयाश्रय काव्य की तरह मालवा के परमार राजा भोज के यश का वर्णन करता है। संभव है कि भोजराज रचित प्रसिद्ध व्याकरण के उदाहरण दिखाने के साथ-साथ परमारवंश और भोज के गौरव का वर्णन करने के लिये भोज के किसी सभा पंडित ने उसकी रचना की हो। यों तो कई फुटकर श्लोक गणरत्न महोदधि में और भी जगह-जगह मिलते हैं, जिन्हें इस काव्य का मान ले सकते हैं, किन्तु यह विचार उन एक छन्द के अवतरणों का ही करते हैं, जो एक ही सर्ग के माने जाने चाहियें। इस सर्ग का कथा प्रसंग ऐसा जान पड़ता है कि भोज क्षिप्रा नदी के तट पर[2] महाकाल वन में[3] किसी ऋषि के आश्रम में गया[4]। वहाँ अनेक ऋषियों ने उसका स्वागत

---

1 येभ्यस्तद्धितसिंहेभ्यः शाब्दिकेभैः पलायितम्।
गव्येनापि मया दत्तम् पदम् तद्गणमूर्धसु ॥ (पृ० ४६१)

यहाँ अपने को 'गव्य' कहकर अपने गुरू गोविन्दसूरि की ओर संकेत किया है।

2 स कौकिलश्यामवनेन कूजत्क्रौंचेन् सिप्रोपतटेन गच्छन्।
(पृ० २५७)

अथैष वातण्ड्यवतण्ड्यभीकवातण्डवातण्ड्यभिकप्रियाणि।
आश्वायनाश्मायनसेवितानिशुचीनिसिप्रापुलिनान्यगच्छत्॥
(पृ० २८५)

3 राजन्यमहाकालवनेऽत्र गार्ग्यो वात्स्यात्मजावत्सलवालवत्सम्।
वाज्याज्यसौवाजिवटुप्रियेण विलोक्यतामाश्रममण्डनं वः॥
(पृ० २९६)

4 तथेति गौरिपलये प्रणम्य साँकृत्यपत्रीकृतपादपं सः।
आसंकृतीनर्तितमत्तवर्हि मुनेःपदम् राजमुनिर्जगाम ॥ (पृ० २९७)

किया[1] और भोज ने ऋषियों का आदर और उनसे संभाषण। किसी-किसी[2] ऋषि ने यह भी कहा कि आपकी तरह शिव का प्रत्यक्ष दर्शन किसी ने नहीं पाया[3]। जहाँ पर राजा की सवारी आश्रम की ओर जा रही है, वहाँ कई ऋषि पत्नियों के उत्सुकता के साथ दौड़ कर आने; दर्शन करने आदि का वर्णन भी है। कवि ने ऋषि और स्त्रियों के स्त्रीलिंग और पुंलिग अपत्यवाचक तद्धित प्रयोगों की माला गूँथने के लिये यह सब प्रसंग बहुत अच्छा कल्पित किया है। अस्तु, ऋषि पत्नियों के प्रसंग में जिस राजा को वे उत्सुकता से देखने आई और देखती हैं, उसको मालवराज, त्रिलोकनारायण, भूमिपाल और भोज इन तीनों नामों से बतलाया है,[4] अर्थात् भोज और त्रिलोकनारायण दोनों एक ही राजा के नाम हैं, जो मालवे का राजा था। 'लोक' और 'भुवन' पर्याय शब्द हैं, इसलिये त्रिभुवन नारायण'

---

1 वैयाघ्रपद्योपह्नितापार्घ्यः प्राचीनयोग्योदितमङ्गलाशीः।
स तत्र रैभ्यायणपृष्टवार्तः पौलस्त्यहा्त्रेरिव धाम्न्यभासीत्॥
(पृ० २९७)

2 स काण्ठ्यगौकक्ष्यसमक्षमस्मिन्नागस्त्यकौण्डिन्यकृतातिथेयः।
सुभाषितान्यादित पार्णवल्क्यो यजूंषि सूर्यादिव याज्ञवल्क्यः॥
सवार्हदग्न्यायनजामदग्न्यः स्थौर्यौ कृथ्यतैतिक्ष्यजिघृक्षिताभिः।
कौटिल्यशास्त्रार्णवपारदृश्वा ननन्दगौलन्य्यमुनीन्द्रवाग्भिः॥
काष्पर्यैकलव्यायनपैप्पलव्यदाल्भ्यैन्द्रहव्यायनदैवहव्यान।
राराक्यचाणक्यवदारक्यमौलुक्यचौलुक्यजुषं सिषेवे॥
(पृ० २९८)

3 दृष्टोडुलोमेषु मयौडुलोमे श्रीवैरसिंहादिषु रुद्रभक्तिः।
अपार्थिवा सा त्वयि पार्थिवी यां नौत्स्यौदपान्योऽपि न वर्णयन्ति॥
कस्तारुणस्तालुनवाष्कयो वा सौवष्कयिर्वा हृदये करोति।
विलासिनोर्वीपतिना कलौ यद्व्यलोकि लोकेऽत्र मृगाङ्कमौलिः॥
न भारतेनैक्षि न कौरवेण नैन्द्रावसेन न सात्वतेन।
पांचालमाहानदवैनदैर्नो नौशीनरेणाद्य यथा त्वयेशः॥
(पृ० ३०३)

4 नाडायनि व्रीडजडेह मा भूश्चारायणि स्फारय चारुचक्षुः।
विलोक(!)वाकायनि मुञ्जकुञ्जान्मौञ्जायनी (!) मालवराजएति॥
वीक्षस्व तैकायनि शंसकोऽयं शाणायनि क्वायुध बाणशाणः।
प्राणायनि प्राणसमस्त्रिलोक्यास्त्रिलोकनारायणभूमिपालः॥
(पृ० २७७)

और 'त्रिलोकनारायण' दोनों एक ही राजा के सूचक हैं। अतएव ऊपर कहे हुए 'भोजस्वामी' और 'त्रिभुवननारायण' नाम की एक ही मन्दिर के बोधक हैं।

जैसे पद्मगुप्त (परिमल) कवि ने भोज के पिता सिन्धुराज के चरित्र ग्रन्थ का नाम उक्त राजा के मुख्य नाम पर 'सिन्धुराज चरित' न रक्खा; किन्तु उसके उपनाम (विरुद, खिताब) 'नवसाहसांक' पद से उक्त पुस्तक का नाम 'नवसाहसांक चरित' दिया, वैसे ही भोज उपनाम 'त्रिभुवन-नारायण' पर से उक्त मन्दिर का नाम रक्खा गया होगा। ऊपर चीरवा के लेख से यह बताया जा चुका है कि चित्तौड़ का तलारक्ष (तलार) मदन त्रिभुवननारायण नामक देवालय में शिवका पूजन किया करता था। अत-एव निश्चित् है कि भोज का बनाया हुआ वह मन्दिर शिव का मन्दिर था। भोज परम शैव था, इसका उल्लेख ऊपर गणरत्न महोदधि के अव-तरणों में किया जा चुका है। नारायण नाम विष्णु का सूचक होने से यह भ्रम होना संभव है कि वह मन्दिर विष्णु का हो; परन्तु उक्त नाम से नारायण शब्द विष्ण का सूचक नहीं, किन्तु भोज के उपनाम का अंश होने से उसको चीरवा के शिलालेख के अनुसार शिव का मन्दिर मानने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।

मेरे इस लेख को पढ़ने के बाद कोई इतिहास-प्रेमी अथवा प्राचीन शोधक चित्तौड़ के क़िले की सैर करने को जावें तो उसको यह जिज्ञासा अवश्य होगी कि प्रसिद्ध विद्यानुरागी राजा भोज का बनाया हुआ 'त्रिभुवन-नारायण' या 'भोज स्वामी' नामक शिवालय अब विद्यमान है या नहीं, यदि है तो कौनसा और कहाँ है? इसलिये उक्त मन्दिर का पता लगाने का यत्न किया जाता है।

अब तो चित्तौड़ के क़िले या तलैटी के रहने वालों में से कोई भी यह नहीं जानता कि राजा भोज वहाँ रहा था और उसने वहाँ एक शिवालय भी

द्वैपायनीतो भव सायकायन्युपेहि दौर्गायणि देहि मार्गम्।
त्वरस्य चैत्रायणि चाटकायन्यौदुम्बरायण्ययमेतिभोजः॥

(पृ० २७८)

मा हांसकायन्यनुधाव हंसान् मा शांशपायन्युपशिंशपे स्थाः।
मा पैङ्गरायण्यनु पैङ्गलायन्युपैहि दृष्टो नृपतिर्व्रजामः॥

(पृ० २७९)

बनाया था । ऐसे ही न वे 'त्रिभुवननारायण' या 'भोजस्वामी' का नाम जानते हैं। इन बातों का पता अब प्राचीन शोध से ही लगा है। राजपूताने में सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध क़िला चित्तौड़ ही है, जिस पर हिन्दुओं तथा मुसलमानों की अनेक चढ़ाइयाँ हुईं। वि० सं० १३६० में देहली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर छः मास से कुछ अधिक समय तक लड़ने के बाद वह किला लिया। उसने वहीं अपने सब से बड़े बेटे खिजरखाँ को वलीअहद (युवराज) बनाया और चित्तौड़ के राज्य का शासक भी उसी को नियत किया। वह सात-आठ वर्ष तक वहाँ रहा, जिसके पीछे सुलतान ने वह किला जालोर के सोनगरों (चौहानों) के वंशज मालदेव को सौंपा। अलाउद्दीन की विजय तथा ख़िज़रखाँ के अधिकार के समय वहाँ के बौद्ध, जैन तथा हिन्दू मन्दिरों को मुसलमानों ने नष्ट कर दिया। भोज ने वह मन्दिर वि० सं० १०८८ से कुछ पहले बनाया होगा; क्योंकि उसी समय उसका चितौड़ में रहना ऊपर बतलाया गया है। भोज के समय अथवा उसके पहले के प्राचीन चिन्हों में चित्तौड़ पर अब ठोस पत्थर के बने हुए बौद्धों के आठ स्तूप[1] तथा हिन्दुओं के दो मन्दिर, जिनका जीर्णोद्धार हुआ है, हैं। इन दो प्राचीन सुन्दर विशाल और दृढ़ मन्दिरों में से एक तो सूर्य का[2] है, जो पीछे से उसमें देवी की मूर्ति स्थापित किये जाने के कारण अब कालिकाजी का मन्दिर कहलाता है और दूसरा शिवालय है, जिसको अदबदजी (अद्भुतजी) का मन्दिर और मोकलजी का मन्दिर भी कहते हैं। वह शिवालय गोमुख नामक प्रसिद्ध तीर्थ (जलाशय) के ऊपर के ऊँचे हिस्से

---

1 इन सब स्तूपों के ऊपर शंकु की आकृति का अंश नष्ट कर दिया गया है। उसके नीचे का मोटा गोलाकृति वाला अंश तथा उसके नीचे का चौरस भाग जिस पर वज्र के चिह्न सहित बुद्ध की मूर्तियाँ बनी हुई हैं, विद्यमान है। ये स्तूप पहले राठौड़ जयमल की हवेली से पद्मिनी के महलों की ओर जानेवाली सड़क की दाहिनी ओर के तालाब में एक चट्टान पर थे, जहाँ से उठाकर अनुमान बारह वर्ष पहले रियासत ने उनको तोपखाने के मकान की एक ओबरी में रखवा दिया है। ऐसा करने में दो के तो टुकड़े भी हो गये हैं।

2 उस मन्दिर को आरम्भ में सूर्य का मन्दिर मानने का कारण यह है कि उसके सुन्दर और विशाल द्वार पर सूर्य की मूर्ति बनी हुई है और भीतरी परिक्रमा में तीनों ओर की ताकों में भी सात घोड़ों सहित सूर्य (सप्ताश्व) की प्राचीन मूर्तियाँ विद्यमान हैं। मुसलमानों के समय में यहाँ की मूर्ति तोड़ दी गई और मन्दिर अरसे तक बिना मूर्ति

में है और महाराणा कुम्भा (कुम्भकर्ण) के बनाए हुए कीर्तिस्तम्भ के दक्षिण में उससे थोड़ी ही दूरी पर है । यही चित्तौड़ परके शिवालयों में सब से पुराना और सबसे अधिक प्रसिद्ध है । उसमें नीचे (छः सीढ़ी नीचे) तो शिवलिंग और अनुमान छः-सात फुट की ऊँचाई पर पीछे की दीवार में सटी हुई शिव की विशाल त्रिमूर्ति[1] प्राचीन बनी है । जिसकी अद्भुत आकृति के कारण ही लोग उसको अदबुदजी (अद्भुतजी) का मन्दिर कहते हैं । वि० सं० १४८५ में महाराणा मोकल ने उसका जीर्णोद्धार कराकर अपने नाम की एक बड़ी प्रशस्ति उसमें लगाई,[2] जिससे लोग उसको मोकलजी का मन्दिर भी कहते हैं । वह इस समय ही चित्तौड़ के शिवालयों में सब से अधिक प्रसिद्ध है, ऐसा ही नहीं; किन्तु देहली पर मुसलमानों का अधिकार होने से पहले भी वैसा ही प्रसिद्ध था; क्योंकि गुजरात के राजा कुमारपाल ने वि० सं० १२०७ में अजमेर के चौहान राजा आना (अर्णोराज, आनल्लदेव आनाक) पर चढ़ाई कर उसको हराया । वहाँ से वह चित्तौड़ की शोभा देखने को चला । शालिपुर (सालेरा गांव, चित्तौड़ से थोड़े ही मील पर) में अपना

के पड़ा रहा । पीछे से उसमें कालिका की मूर्ति स्थापित की गई जिसको अनुमान १५० वर्ष हुए हें । जब से यह नवीन मूर्ति स्थापित की गई, तब से उसके पुजारी 'गिरि' नामांत वाले बाबा (साधू) हैं । वर्तमान पुजारी भैरूंगिरि मूल पुजारी का नवां वंशधर है । उक्त मन्दिर का जीर्णोद्धार (मरम्मत) वि० सं० १८६३ में नागेंद्रगिरि के चेले दौलतगिरि तथा कुशालगिरि ने करवाया । ऐसा उस मन्दिर के छज्जे के नीचे खुदे हुए लेख से पाया जाता है । उस मन्दिर के बड़े चौक में उन पुजारियों की समाधियां बनी रहने से उसका कितना एक अंश तो उन्हीं से भर गया है । यदि ऐसा ही चलता रहा तो समय पाकर वहाँ पर एक ख़ासा क़बरिस्तान बन जायगा और उस अपूर्व प्राचीन मन्दिर और चौक की शोभा बिल्कुल नष्ट हो जायगी ।

1 शिव की त्रिमूर्ति के लिये देखो मेरा लिखा हुआ 'सिरोही राज्य का इतिहास', पृ० ३६-३७ टिप्पण । कर्नल टॉड ने त्रिमूर्ति के तीन मुख पर से उस मन्दिर को ब्रह्मा का और महाराणा कुम्भा द्वारा बनाया हुआ माना है, जो भ्रम ही है (टॉड राजस्थान, जि० ३, पृ० १८०२-१७ आक्सफोर्ड संस्करण) ।

2 एपि० इन्डि०, जिल्द २, पृ० ४१०-२१ ।

शिविर (सेना का पड़ाव) रखकर चित्तौड़ गया। वहाँ पर उसने उक्त त्रिमूर्तिवाले) मन्दिर में शिव की आराधना कर एक गाँव भेंट किया और स्मरणार्थ उक्त मन्दिर में एक शिलालेख लगाया, जो अब तक विद्यमान है[1]। इन सब बातों का विचार करते हुए यही अनुमान होता है कि जिस शिवालय में तलारक्ष मदन शिव की पूजा किया करता था। वह उपर्युक्त त्रिमूर्ति वाला मन्दिर ही होना चाहिये। उक्त मन्दिर का सभा मण्डप तथा मुख्य अंश, जहाँ शिवलिंग तथा त्रिमूर्ति बनी हुई है, पहले के ही हैं, जिनके शिल्प की ओर दृष्टि देते हुए उनका भोज के समय का होना मानना पड़ता है[2] उसके बनने के बाद उसके निकट ही शिव और और विष्णु आदि के भी मन्दिर बने, जो ऐसे दृढ़ और विशाल न होने से अब टूटी हुई दशा में है। कुमारपाल की मृत्यु के पीछे जब चित्तौड़ पर गुहिलवंशियों का अधिकार फिर हुआ और वहीं मेवाड़ की राजधानी स्थिर हुई, तब से चित्तौड़ के राजाओं की महासती[3] (दाहस्थान) का स्थान भी उसी मन्दिर के निकट नियत हुआ। वि० सं० १३३१ में रावल समरसिंह ने उन सब मन्दिरों तथा महासतियों के इर्द गिर्द एक विशाल द्वार सहित हाता[4] बनवाया और उसके सम्बन्ध की प्रशस्ति[5] दो बड़ी-बड़ी शिलाओं पर खुदवा कर द्वार के भीतर दोनों ओर की दीवारों में लगाई, जिनमें से पहली शिला सं० (१३३१) सहित अब तक विद्यमान है। उक्त प्रशस्ति की रचना वेदशर्मा ने की थी। वि० सं० १३४२ में उसी कवि ने उसी राजा की आबू पर के अचलेश्वर के मठ की प्रशस्ति बनाई, जिसमें वह अपनी बनाई हुई पहली प्रशस्ति (चित्तौड़

---

1 एपि० इन्डि०, जिल्द २, पृ० ४२२, २४।

2 कर्नल टॉड के 'राजस्थान' के ऑक्सफोर्ड संस्करण, जिल्द ३, पृ० १८ पर, उसके सम्पादक विलिअम् क्रुक का टिप्पण २।

3 ना० प्र० पत्रिका, भाग १, पृ. १०४।

4 बड़ी-बड़ी दो शिलाओं पर खुदी हुई उस प्रशस्ति से यह सम्भव नहीं प्रतीत होता कि मन्दिरों का हाता, जो अब नष्ट-सा हो गया है, बनाने की यादगार में ऐसी बड़ी प्रशस्ति लगाई गई हो। सम्भव है कि उक्त हाते के बनवाने के साथ वहाँ कोई मन्दिर भी समरसिंह ने बनवाया हो, परन्तु दूसरी शिला के न मिलने से इसका कुछ भी निश्चय नहीं हो सकता।

5 भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ७४-७७।

वाली) का भी उल्लेख करता हुआ, उसके स्थान का परिचय इस तरह देता है कि चित्रकूट के रहने वाले नागर जाति के ब्राह्मण उसी वेदशर्मा ने इस (अचश्लेवर के मठ की) प्रशस्ति की रचना की, जिसने कि एकलिंग, त्रिभुवन इस नाम से प्रसिद्ध समाधीश (= शिव) और चक्र स्वामी (= विष्णु) के मन्दिरों के समूह की प्रशस्ति बनाई थी[1]। वेदशर्मा आबू की प्रशस्ति की रचना के पूर्व अपनी बनाई हुई एक ही और प्रशस्ति का उल्लेख करता है। वह चित्तौड़ की वि० सं० १३३१ की प्रशस्ति ही है। चित्तौड़ के उक्त हाते के भीतर दो शिवालय टूटी हुई दशा में मौजूद हैं, परन्तु उनमें शिलालेख न होने से यह जाना नहीं जा सकता कि उनमें से कौन सा मन्दिर एकलिंग का था। मेवाड़ के राजाओं के इष्टदेव एकलिंग होने के कारण उसके नाम का मन्दिर चित्तौड़ में भी बनाया गया हो, यह सम्भव है। त्रिभुवन नाम से प्रख्यात समाधीश (त्रिभुवन विदित श्री समाधीश) का मन्दिर ऊपर बतलाया हुआ त्रिमूर्ति वाला[2] शिव मन्दिर ही है। क्योंकि उसी मन्दिर में लगी हुई उसी के जीर्णोद्धार की महाराणा मोकल की वि० सं० १४८५ की प्रशस्ति में उक्त मन्दिर के नाम का परिचय 'समाधीश[3]' और 'समिद्धेश[4]' दोनों नामों से दिया है और उसी मन्दिर में लगे हुए कुमारपाल के वि० सं० १२०७ के शिलालेख में उसका नाम समिद्धेश्वर[5] मिलता है। आबू की प्रशस्ति का

1 यो्कार्षीदेकलिंगत्रिभुवनविदितश्रीसमाधीशचक्र
स्वामिप्रासादवृन्दे प्रियपटुतनयो वेदशर्म्मा प्रशस्तिम्।
तेनैषापि व्यधायि स्फुट गुण विषदा नागरज्ञातिभाजा
विप्रेणाशेष विद्वज्जनहृदयहरा चित्रकूट स्थितेन ।।६०।।

(आबू पर के अचलेश्वर के मठ की प्रशस्ति—इन्डि० एंटि०, जि० १६. पृ० ३५)

2 चित्तौड़ के क़िले पर त्रिमूर्ति तया शिवलिंग वाला एक और भी मन्दिर है, जिसको भी लोग अदब्रुदजी (अद्भुतजी) का मन्दिर कहते हैं। वह सूरजपोल दरवाजे के निकट हैं और वि० सं० १५४० में बना था, ऐसा वहाँ के शिलालेख से पाया जाता है।

3 श्रीमन्समाधीशमहेश्वरस्य प्रसादतो० (पंक्ति ५३)।

4 समिद्धेशः श्रीमानिह वसति गौरी सहचरः।

5 श्रीसमिद्धेश्वरम् देवम् प्रसिद्धं जगती``। (पंक्ति २२—२३)।

'त्रिभुवन विदित भी समाधीश' समास वाला पद यद्यपि दो अर्थों में 'त्रिभुवन नाम से प्रसिद्ध समाधीश' (शिव) और त्रिभुवन में प्रसिद्ध समाधीश[1] का सूचक हो सकता है, तो भी उसका 'त्रिभुवन विदित (त्रिभुवन नामक)' अन्श 'त्रिभुवननारायण' नामक भोज के शिवालय की स्मृति दिलाता है, इसलिये उसे "त्रिभुवन इति विदितः" इसी व्यास (विग्रह) का मध्यम पद लोपी समास मानना अधिक उचित जान पड़ता है। चक्र स्वामी (विष्णु) का मन्दिर वहाँ पर कौनसा था, इस विषय का निर्णय नहीं हो सका; क्योंकि वहाँ कई पुराने मन्दिर टूटे हुए पड़े हैं, परन्तु यह निश्चय है कि वहाँ चक्र स्वामी (विष्णु) का कोई मन्दिर अवश्य था; क्योंकि उपर्युक्त महाराणा मोकल की वि० सं० १४८५ की प्रशस्ति के प्रारम्भ में शिव को नमस्कार करने के बाद गजास्य (गणपति), एकलिंग (शिव या उक्त नाम के शिव), गिरिजा (पार्वती) और अच्युत (विष्णु) की आशीर्वादात्मक प्रार्थना की है[2]।

महाराणा कुम्भा (कुम्भकर्ण) की वि० सं० १५१७ की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में उसके पिता मोकल के वर्णन में लिखा है कि 'उसने चित्तौड़ में समाधीश्वर के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। दुर्गा के मन्दिर के आँगन में सर्व धातु का सिंह स्थापित किया और चक्रपाणि (चक्रस्वामी, विष्णु) के मन्दिर में सोने का गरूड़ बनवाया[3]।

ऊपर के सारे कथन का सार यही है कि जिस त्रिमूर्ति वाले शिवालय का जीर्णोद्धार महाराणा मोकल ने कराया, वही राजा भोज का बनाया

---

1 समाधीश, समिद्धेश और समिद्धेश्वर ये तीनों नाम उपर्युक्त शिलालेखों में शिव के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

2 श्लोक १–४ (एपि० इन्डि०, जि० २, पृ० ४१०–११)।

3 नृपः समाधीश्वरसिद्धतेजाः समाधिभाजां परमं रहस्यम्।
आराध्य तस्यालयमुद्धार श्रीचित्रकूटे मणितोरणांकं ।।२२२।।
यः सुधांशुमुकुटप्रियांगणे वाहनम् मृगपति मनोरमं ।
निर्मितम् सकलधातुभक्ति भिः पीठरक्षणविधाविव व्यधात् ।।२२४।।
पक्षिराजमपि चक्रपाणये हेमनिर्मितमसौ ददौ नृपः ।
येन नीलजलदच्छविर्विभु श्चंचलायुत इवाधिकं बभौ ।।२२५।।

(कुम्भलगढ़ की. प्रशस्ति—अप्रकाशित)

हुआ 'त्रिभुवन नारायण' नामका शिवालय होना चाहिये, जो पीछे से 'भोजस्वामी,' 'समिद्धेश्वर,' 'समाधीश,' 'समाधीश्वर,' 'अद्‌वद्‌जी' और 'मोकलजी का मन्दिर' कहलाया। *

ना० प्र० प० काशी, (त्रै०न०) भाग ३, ई० स० १९२२-२३, वि० सं० १९७९

सम्पादकीय टिप्पण

* मालवे के परमार राजा भोज के विषय में श्री ओझाजी द्वारा यह अपूर्व खोज हुई है और अपने असाधारण अध्ययन द्वारा उन्होंने इस निबन्ध में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि परमार राजा भोज चित्तौड़ में भी रहा करता था और उसने वहाँ शिवमन्दिर बनवाया। उसका उपनाम 'त्रिभुवननारायण' था, जिससे वह मन्दिर 'भोजस्वामि देव जगती' और 'त्रिभुवननारायण' नामक देव मन्दिर कहलाता था। भोज का उपनाम 'त्रिभुवननारायण' था, इस विषय में इसके पूर्व तक लोग अज्ञात थे।

हटूंदी के राष्ट्रकूट राजा धवल के वि० सं० १०५३ (ई० स० ९९६) के शिलालेख से यह स्पष्ट है कि परमार राजा भोज के पिता सिंधुराज के ज्येष्ठ भ्राता मुन्ज ने मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेशों के सुसमृद्ध नगर आघाटपुर (आहाड़) को जो उस समय राजधानी रहना सम्भव है, नाश किया था। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि मुंज ने इस विजय के साथ-साथ मेवाड़ का बहुत सा भाग अपने अधिकार में कर लिया हो और चित्तौड़ भी। मुन्ज के साथ संघर्ष का मेवाड़ के शिलालेखों में तो कुछ भी उल्लेख नहीं है; पर परमारों के शिलालेखों एवम् उनके काव्यों में तो इनका वर्णन होना चाहिये, किन्तु वहाँ भी कुछ उल्लेख नहीं मिलता। इधर-उधर जो कुछ भी मिला, श्री ओझाजी ने यह वर्णन किया है। वस्तुतः चित्तौड़ पर भोज ने कोई देवालय बनाया हो तो उसका निर्माण काल वि० सं० १०६६-८८ (ई० स० १०१०-३१) तक मानना पड़ेगा।

परमारों का राज्य भोज की मृत्यु के बाद पतन को प्रारम्भ होता है। परमारों और सोलंकियों के बीच आरम्भ से ही वैमनस्य चला आता है। फलस्वरूप गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंह द्वारा मालवा विजय होकर परमार राज्य ह्रास को प्राप्त होता है। लगभग १२५ वर्ष भोज के चित्तौड़ पर बनवाये हुए मन्दिर को होते हैं कि परमार राज्य का परम शत्रु सोलंकी राजा जयसिंह (सिद्धराज) का भ्रातृज पुत्र कुमारपाल वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) में अजमेर के राजा अर्णोराज चाहमान पर विजय पाकर चित्तौड़ जाता है और वह जिस मन्दिर को श्री ओझाजी

भोज का वतलाते हैं, उसके दर्शन कर वहाँ ग्राम भेंट करता है। कुमारपाल वहाँ अपनी तरफ से प्रशस्ति भी लगवाता है, जो अवतक विद्यमान है और उसमें वह इस देवालय का नाम 'श्रीसमिद्धेश्वरम् देवम् प्रसिद्धम् जगती' होना उल्लेख करता है। वहीं एक दूसरी प्रशस्ति वि. सं. १४८५ (ई. स. १४२९) की महाराणा मोकल के समय की लगी हुई है, जिसमें उक्त देवालय का नाम 'समिद्धेश' और 'समाधीश दिया है। महारावल समरसिंह के समय की वि. सं. १३४२ (ई. स. १२८५) की आबू की प्रशस्ति तथा महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) के समय की वि. सं. १५१७ (ई. स. १४६०) की कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति में भी इस ही प्रकार के नामोल्लेख हुए हैं। यह स्पष्ट है कि महाराणा मोकल द्वारा पंद्रहवीं शताब्दी के अन्त में इस शिवालय का जीर्णोद्धार होने से जनसाधारण में वह 'मोकलजी का मन्दिर कहलाता है और मूर्ति की वैचित्र्यता के कारण उस ही को 'अद्‌वद्‌जी का मन्दिर' भी लोग कहा करते हैं।

परमारों द्वारा आघाटपुर का पतन तथा चित्तौड़ पर उनका अधिकार होना एवं भोज द्वारा, चित्तौड़ पर देवालय निर्माण का उल्लेख उनके इतिहास में नहीं होने और इस मन्दिर में लगे हुए शिलालेखों में 'समिद्धेश', वा 'समाधीश' नाम उल्लिखित होने से इस मन्दिर के भोज द्वारा निर्माण होने के कथन में सन्देह हो सकता है, परन्तु श्री ओझाजी ने अनेक प्रमाणों और प्रवल युक्तियों से यह सिद्ध कर दिया है कि जिसको इस समय 'मोकलजी का मन्दिर' कहते हैं तथा जो महाराणा कुम्भकर्ण के वनवाये हुए कीर्तिस्तम्भ और गोमुख कुंड के सन्निकट है, वही परमार राजा भोज द्वारा निर्मित 'त्रिभुवननारायण' अथवा 'भोजस्वामि देव जगति' देवालय होना चाहिये। भोज को 'त्रिभुवननारायण' (त्रैलोक्यनारायण) नाम से गणरत्न महोदधि में सम्वोधन किया है, जो उसका उपनाम (विरुद) सूचक है।

समय-समय पर इस शिवालय के जीर्णोद्धार होते रहे हैं। गुजरात के प्रसिद्ध सोलंकी नरेश कुमारपाल के समय की उक्त प्रशस्ति में इस मन्दिर के दर्शन कर वहाँ एक गाँव भेंट करने का उल्लेख है, इससे स्पष्ट है कि वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) में जव कुमारपाल चित्तौड़ आया, तव वहाँ मन्दिर विद्यमान था। इससे उसके पूर्व का ही उक्त मन्दिर होना चाहिये। सम्भव है कि उस (कुमारपाल) ने वहाँ जीर्णोद्धार भी कराया हो। तदनन्तर गुहिलवंशी महारावल समरसिंह के

समय इसके आस-पास नवीन मन्दिर बने, तब इसका जीर्णोद्धार होना सम्भव है। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़ का नाश होने पर इस मन्दिर की बड़ी भारी क्षति हुई, अतएव महाराणा मोकल ने इसका पन्द्रहवीं शताब्दी में जीर्णोद्धार कराकर प्रशस्ति लगवाई। तत-पश्चात् चारसौ वर्ष तक इस देवालय का कोई जीर्णोद्धार नहीं हुआ। गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह और मुगल सम्राट अकबर द्वारा होनेवाले समय-समय पर चित्तौड़ पर भयंकर आक्रमणों, अनेक तूफानों और बरसातों को सहते-सहते यह मन्दिर भग्नावशेष हो गया था और गिरने में कुछ भी सन्देह नहीं था कि बीसवीं शताब्दी के अन्त में परलोकवासी महा-राणा फतहसिंहजी का इसके जीर्णोद्धार की तरफ ध्यान आकर्षित हुआ और महाराणा भूपालसिंहजी के समय इसका जीर्णोद्धार का कार्य समाप्त होकर वह यात्री-गणों के देखने लायक वस्तु हो गया है।

तक्षण कला—बनावट आदि से इस देवालय का निर्माण काल ग्यारहवीं शताब्दी का पाया जाता है। परमारों और सोलंकियों के बीच परम शत्रुता रही; अतएव कुमारपाल द्वारा इस मन्दिर के दर्शन कर गाँव भले ही भेंट किया जावे; परन्तु भोज की कीर्ति स्थिर न रहे, इस कारण से समिद्धेश्वर नामक नये नाम की सृष्टि हुई हो तो भी आश्चर्य की बात नहीं है। परमारों और गुहिलवंशियों के बीच भी वैमनस्य था, अतएव महारावल समरसिंह के लेख में भी भोज का चित्तौड़ में मन्दिर बनाने का उल्लेख होना असम्भव है; क्योंकि उसने कुमारपाल का ही पथ ग्रहण किया। कालान्तर से फिर तो भोज का नाम ही भूल गये और महाराणा मोकल तथा कुम्भकर्ण (कुम्भा) के समय तक इस मन्दिर को बने, लगभग चारसौ वर्ष से ऊपर होगये, अतएव उन्होंने परंपरागत नामों का ही उल्लेख किया, जैसा कि कुमारपाल तथा समरसिंह के शिलालेखों में था।

वस्तुतः श्री ओझाजी ने इस निबन्ध द्वारा परमारों के इतिहास को पुष्ट करने और प्रसिद्ध विद्यानुरागी भोज की कीर्ति को चिरस्थायी बनाने का यत्न किया है। यह उनकी गवेषणा का फल है कि इतिहास के पाठकों के सामने अज्ञात् वस्तु प्रकाश में आई है।

---

१३ अनहिलवाड़े के पहले के गुजरात के सोलंकी ।

(१)

गुजरात में सोलंकियों का स्वतन्त्र और प्रतापी राज्य मूलराज ने अनहिलवाड़े में स्थापित किया, किन्तु उसके पहले भी उक्त प्रान्त के लाट आदि प्रदेशों पर सोलंकियों की छोटी-छोटी शाखाओं का अधिकार रहना पाया जाता है । इस लेख में उन्हीं शाखाओं का वृत्तान्त लिखा जाता है ।

खेड़ा[1] से एक दानपत्र[2] सोलंकी राजा विजयराज का मिला है । इस राजा को 'विजयवर्मराज' भी कहते थे । दानपत्र का आशय यह है कि "सोलंकी वंशी जयसिंहराज का पुत्र बुद्धवर्मा हुआ, जिसके विरुद 'वल्लभ' और 'रणविक्रान्त'[3] थे । उसके पुत्र राजा विजयराज ने [कलचुरि[4]] संवत् ३९४ (वि० सं० ७००–ई० स० ६४३) वैशाखशुदि १५ के दिन जंबूसर[5] के ब्राह्मणों को काशाकूल[6] विषय (जिले) के अन्तर्गत संधीयर[7] गांव के पूर्व का परियर[8] गांव प्रदान किया, जिस दिन कि उसका निवास

---

1 बम्बई हाते में उक्त नाम के जिले का मुख्य शहर ।

2 इन्डि० ऐंटि०, जिल्द ७, पृ० २४८–४९ ।

3 युद्ध में पराक्रम बतलानेवाला ।

4 गुजरात के लाट प्रदेश पर पहले कलचुरियों (हैहयवंशियों) का राज्य रहने से वहां पर उनका चलाया हुआ कलचुरि संवत् जारी था, जिससे उनके पीछे वहां पर राज्य करनेवाले सोलंकी तथा गुर्जर (गूजर)-राजाओं के कितने ही ताम्रपत्रों में वही संवत् मिलता है ।

5 बम्बई हाते के भड़ोच जिले में ।

6 शायद यह तापी नदी के उत्तरी तट के निकट का प्रदेश हो ।

7 बम्बई हाते के सूरत जिले के 'ओरपाड़' तअल्लुके में है, जिसको इस समय संधिएर कहते हैं ।

8 संधिएर से कुछ मील पूर्व में है और इस समय 'परिया' नाम से प्रसिद्ध है ।

विजयपुर[9] में था ।

इन राजाओं के नाम तथा विरुदों से अनुमान किया जाता है कि वे वादामी के सोलंकियों में से थे, परन्तु उक्त, ताम्रपत्र का जयसिंह वादामी के कौनसे राजा से सम्वन्ध रखता है, यह स्पष्ट न होने से हम उसको वादामी के सोलंकियों के वंशवृक्ष में निश्चयपूर्वक स्थान नहीं दे सकते । तथापि समय की ओर दृष्टि देते हुए यह कह सकते है कि संभव है वह दक्षिण में सोलंकियों के राज्य की स्थापना करने वाले जयसिंह से भिन्न हो । वादामी के सोलंकियों का अपने पुत्रादिकों को समय-समय पर जागीर देते रहना पाया जाता है और उपर्युक्त ताम्रपत्र वादामी के प्रसिद्ध राजा पुलकेशी दूसरे के समय का है जिसने लाट आदि देश अपने अधीन किये थे[10] तथा जिसके पूर्व मंगलीश ने लाट पर राज्य करने वाले कलचुरियों की राज्य लक्ष्मी छीनली थी ।[11] अतएव संभव है कि मंगलीश अथवा पुलकेशी दूसरे ने अपने किसी वंशधर को लाट देश में जागीर दी हो । विजयराज के पीछे उक्त शाखा का कुछ पता नहीं चलता ।

जयसिंहराज
|
बुद्धवर्मा
|
विजयराज
(वि० सं० ७००)

(२)

वादामी के प्रसिद्ध सोलंकी राजा पुलकेशी दूसरे के चौथे पुत्र जयसिंह वर्म्मन् को, जिसे धराश्रय[1] भी कहते थे, लाट देश जागीर में मिला था[2] । उसके तीन पुत्र शीलादित्य, मंगलराज और पुलकेशी थे । शीला-

---

9 इस नाम के गुजरात में कई स्थान हैं, अतएव इसका ठीक निश्चय नहीं हो सका ।

10 देखो सोलंकियों का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३७–३८ ।

11 देखो सोलंकियों का इतिहास प्रथम भाग, पृ० ३०–३१ ।

---

1 धराश्रय = पृथ्वी का आश्रय ।

2 देखो सोलंकियों का इतिहास, भाग १, पृ० ५१ ।

दित्य ने श्रयाश्रय[3] विरुद धारण किया था। उसके दो दानपत्र मिले हैं जिनमें से एक[4] कलचुरि संवत् ४२१ (वि० सं० ७२७–ई० स० ६७०) माघ शु० १३ का नवसारी से दिया हुआ और दूसरा[5] कलचुरि सं० ४४३ (वि० सं० ७४६ = ई० स० ६६२) श्रावण शु० १५ का कार्मणेय[6] के पास के कुसुमेश्वर के स्कंधावार[7] से दिया हुआ है। इन दोनों में उसको युवराज लिखा है, जिससे निश्चित है कि उस समय तक जयसिंह वर्मा विद्यमान था, और शीलादित्य अपने पिता के सामने प्रान्तों का शासक रहा हो। मंगलराज के राज्य-समय का एक दानपत्र[8] शक संवत् ६५३ (वि० सं० ७८८–ई० स० ७३१) का मिला है, जिसमें उसके विरुद 'विनयादित्य,' 'युद्धमल्ल' और 'जयाश्रय' दिये हैं। उसमें शीलादित्य का नाम न होने से अनुमान होता है कि वह कुंवरपदे में ही मर गया हो और जयसिंह के पीछे मंगलराज लाट देश का राजा हुआ हो। उस (मंगल राज) का उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई पुलकेशी हुआ, जिसने अवनि-जनाश्रय[9] विरुद धारण किया। उसके राजत्व-काल का एक ताम्रपत्र[10] कल-चुरि संवत् ४९० (वि० सं० ७९६–ई० स० ७३९) का मिला है जिसमें लिखा है कि "ताजिकों"[11] (अरबों) ने तलवार के बल से सैंधव[12] कच्छेल्ल,[13]

---

3 श्रयाश्रय = लक्ष्मी का आश्रय।

4 बम्बई ए० सो० ज०; जि० १६, पृ० २–३।

5 विएना ओरिऐंटल कांग्रेस का कार्य विवरण, आर्यन् सेक्शन, पृ० २२५–२६।

6 कार्मणेय = कामलेज, बम्बई हाते के सूरत जिले में।

7 स्कन्धावार = सैन्य का पड़ाव, कैम्प।

8 इन्डि० ऐं०; जिल्द १३, पृ० ७५।

9 अवनिजनाश्रय = पृथ्वी पर के लोगों का आश्रय (आश्रय-स्थान)

10 विएना ओरिऐंटल कांग्रेस का कार्य विवरण, आर्यन् सेक्शन पृ० २३०।

11 यह शब्द अरबों के लिये लिखा गया है। फलित ज्योतिष का एक अंग 'ताजिक' या 'ताजिक' शास्त्र नाम से प्रसिद्ध है। उसमें भी 'ताजिक' शब्द अरबों का ही सूचक है क्योंकि वह अंग उन्हींके ज्योतिष शास्त्र से लिया गया माना जाता है।

12 सैंधव = सिंध।

13 कच्छेल्ल = कच्छ।

सौराष्ट्र,[14] चावोटक,[15] मौर्य,[16] गुर्जर,[17] आदि राज्यों को नष्ट कर दक्षिण के समस्त राजाओं को जीतने की इच्छा से दक्षिण में प्रवेश करते हुए प्रथम नवसारिका[18] पर आक्रमण किया। उस समय उसने घोर संग्राम कर 'ताजिकों' (अरबों) को विजय किया, जिस पर शौर्य के अनुरागी राजा वल्लभ[19] ने उसको 'दक्षिणापथसाधार'[20] 'चलुक्किककुला[21] लङ्कार' 'पृथ्वी-वल्लभ' और 'अनिवर्तकनिवर्त्तयितृ'[22] ये चार विरुद प्रदान किये[23]।

अरबों की यह लड़ाई खलीफ़ा हेशाम के समय सिंध के हाकिम जुनैद के सैन्य की होनी चाहिए; क्योंकि खलिफा हेशाम का समय हि० सन् १०५ से १२५ (वि० सं० ७८० से ७९९. ई० स० ७२४ से ७४३) तक का है और पुलकेशी को वि० सं० ७८८ और ७९६ (ई० स० ७३१

---

14 सौराष्ट्र = सोरठ, दक्षिणी-काठियावाड़।

15 चावोटक = चापोत्कट, चावड़े।

16 मौर्य = मोरी। शायद ये राजपूताना के मोरी हों। कोटा के पास कणसवा के शिवमन्दिर के वि० सं० ७९५ (ई० स० ७३८) के लेख में मौर्यवंशी राजा धवल का नाम मिलता है। उस समय के पीछे भी राजपूताने में मौर्यों का अधिकार रहना सम्भव है।

17 गुर्जर = गुजरात (भीनमाल का राज्य)। चीनी यात्री हुएन्त्संग ने गुर्जर राज्य की राजधानी 'भीनमाल" होना लिखा है; जो अब जोधपुर राज्य के अन्तर्गत है।

18 नवसारिका = नवसारी, गुजरात में।

19 वादामी का सोलंकी राजा विजयादित्य या विक्रमादित्य दूसरा।

20 'दक्षिणापथसाधार = दक्षिण का स्तम्भ।

21 'चलुक्किकुलालङ्कार' = सोलंकी वंश का भूषण।

22 'अनिवर्त्तकनिवर्त्तयितृ' = न हारने (हटने) वालों को हराने (हटाने) वाला।

23 तरलतरतारतरवारिदारितोदितसैन्धवकच्छैल्ल सौराष्ट्रचावोटकमौर्यगुर्जरादिराज्ये निःशेषदाक्षिणात्यपतिजिगीषया दक्षिणापथप्रवेश······ ····प्रथममेव नवसारिकाविषय प्रसाधनायागते त्वरिततुरगखरमुखरखुरोत्खातधरणिधूलिधूसरितदिगन्तरे················प्रहतपटुपटहरवप्रवृत्तकबन्धबद्धरासमण्डलीके समरशिरसि विजिते ताजिकानीके शौर्यानुरागिणा श्रीवल्लभनरेंद्रेण प्रसादीकृतापरनाम चतुष्टयस्तद्यथा दक्षिणापथसाधारचलुक्किककुलालङ्कार पृथ्वीवल्लभानिवर्त्तक निवर्त्तयित्रवनिजनाश्रयश्रीपुलकेशिराजस्सर्वानेवात्मीयान······(बम्बई गज़े०, १।१।१०९)।

और ७३६) के बीच राज्य मिला था । 'फुतूहुलवुल्दान[24] नामक अरबी तवारीख़ में लिखा है कि जुनैद ने अपना सैन्य मरमाड़,[25] मंडल,[26] दामलज,[27] वरूस,[28] उजैन,[29] मालिवा,[30] बहरिमद, (?) अलबेलमान,[31] और जज्र[32] पर भेजा था[33] ।

पुलकेशी के अन्तिम समय अथवा देहान्त के बाद राठौड़ों ने लाट देश भी सोलंकियों से छीन लिया, जिसके साथ इस शाखा की समाप्ति हुई । इन राजाओं की राजधानी नवसारी थी ।

(३)

जूनागढ़ (काठियावाड़ में) राज्य के ऊना नामक गाँव से सोलंकियों के दो ताम्रपत्र मिले हैं, जिनसे सोरठ पर राज्य करने वाली सोलंकियों की एक शाखा का नीचे लिखे अनुसार वृत्तान्त मिलता है ।

सोलंकी वंश में कल्ल और महल्ल नाम के दो भाई बड़े राजा हुए, जिनका सौभ्रात्र राम-लक्ष्मण के समान था । कल्ल का पुत्र राजेन्द्र[1] हुआ जो पराक्रमी

---

24 फुतूहुल् वुल्दान = अहमद इब्न याहिया ने खलीफ़ा अलमुतवक्किल के समय ई० स० ८५० के आस-पास यह तवारीख़ लिखी थी ।

25 मरमाड़ = मारवाड़ ।

26 मण्डल = काठियावाड़ में (ओखामण्डल) ।

27 दामलज = शायद कामलेज हो (बम्बई हाते के सूरत जिले में) ।

28 वरूस = भड़ोच (बम्बई हाते में नर्मदा तट पर) ।

29 उजैन = उज्जैन ।

30 मालिवा = मालवा ।

31 अल्बेलमान = भीनमाल ।

32 जज्र = गुर्जरदेश ।

33 इलियट, हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, जिल्द १, पृ० ४४१–४२ ।

---

1 इस नाम की शुद्धता में कुछ शङ्का है । मूल ताम्रपत्र बहुत ही अशुद्ध खुदे हुए हैं ।

और बुद्धिमान् था। उसके बेटे बाहुक धवल ने अपने बाहुबल से धर्म[2] नामक राजा को नष्ट किया, राजाधिराज परमेश्वर पदधारी राजाओं को जीता, और कर्णाटक के सैन्य[3] को हराया। उसका पुत्र अवनिवर्म्मा हुआ, जिसके बेटे बल-वर्मा ने विषढ़ को जीता और जज्जप आदि राजाओं को मार कर पृथ्वी पर से हूण वंश को मिटा दिया। उसने वलभी[4] स० ५७४ (वि० सं०) ९५० ई० स० ८९४) माघ शु० ६ को अपने बाहुबल से उपार्जन किए हुए गाँव वाले नक्षिसपुर[5] प्रदेश में से जयपुर गाँव तरुणादित्य नामक सूर्य मन्दिर के अर्पण किया। वह कन्नौज के पड़िहार राजा भोजदेव[6] के पुत्र महेंद्रायुध (महेंद्रपाल) देव का सामन्त[7] और सौराष्ट्र देश के एक हिस्से का स्वामी था।

---

2 धर्म = यह प्रसिद्ध पालवंश का धर्मपाल हो सकता है जो कन्नौज के पड़िहारों से लड़ा करता था। इसीसे उनके सामन्त बाहुक धवल का उससे लड़ना सम्भव है।

3 कर्णाटक का सैन्य = दक्षिण के राठौड़ों का सैन्य। उस समय कर्णाटक देश पर राठौड़ों का राज्य था, जो कन्नौज के पड़िहारों से, जिनका राज्य पहले मारवाड़ पर था, लड़ते रहे थे। ये सोलंकी, पड़ि-हारों के सामन्त होने से, उनसे लड़े होंगे।

4 काठियावाड़ से गुप्तों का अधिकार मिट जाने बाद वहाँ पर वलभी के राज्य का उदय हुआ। उस समय वहाँ पर चलनेवाला गुप्त संवत् ही वलभी सवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ई० स० की आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुसलमानों ने वलभी राज्य को नष्ट किया, जिसके पीछे भी कुछ समय तक वलभी सवंत् वहाँ पर प्रचलित रहा। इसीसे पिछले ताम्रपत्रादि में भी कहीं कहीं उसका उल्लेख मिलता है (वलभी सवत् के लिये देखो भारतीय प्राचीन लिपिमाला; द्वितीय संस्करण, पृ० १७५)।

5 नक्षिसपुर = सोरठ (दक्षिण काठियावाड़ में)।

6 भोजदेव को मिहिर भी कहते थे और वह महाराज रामभद्र का पुत्र, नागभट का पौत्र और वत्सराज का प्रपौत्र था।

7 परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेव-पादानुध्यातपरम भट्टा-रक महाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीमहेन्द्रायुधदेवपादप्रसादाक्षतसमधिगतपन्चमहा-शब्दमहासामन्तश्रीचालुक्यान्वयप्रसूतश्रीअवनिवर्मसुतश्रीवलवर्मा (वलवर्मा का दानपत्र, एपि० इन्डि०; जिल्द ९, पृ० १–१०)

उसके पुत्र अवनिवर्मा[8] दूसरे ने जिसका दूसरा नाम योग[9] था। यक्षदास आदि राजाओं के देशों पर आक्रमण कर उनकी सेनाओं को परास्त किया और राजा धरणीवराह[10] को भगाया। वह भी कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल का सामन्त था। उसने वि० सं० ९५६ (ई० स० ९००) माघ शुदि ६ को अम्बुलक[11] गाँव उपर्युक्त सूर्य-मन्दिर के भेंट किया।
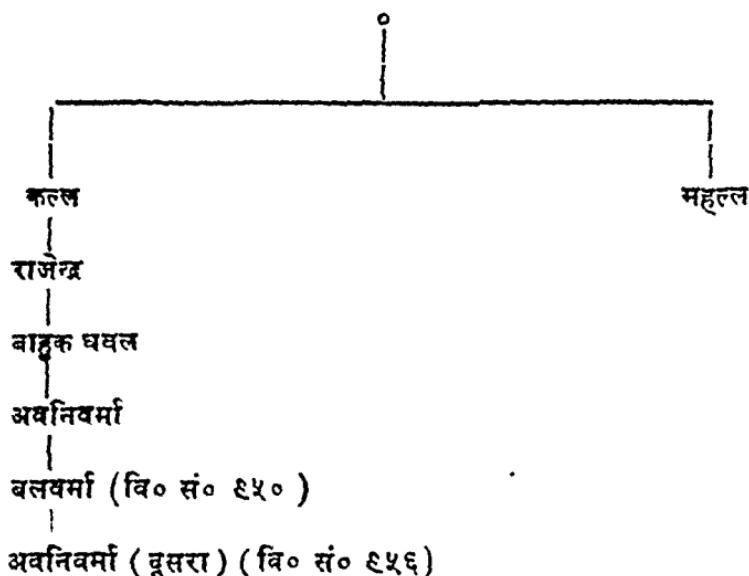
8 बिल्हारी के शिलालेख में (देखो सोलं० इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १५-१६) कलचुरि राजा केयूरवर्ष (युवराजदेव प्रथम) की रानी नोहला को सोलंकी अवनिवर्मा की पुत्री लिखा है। वह अवनिवर्मा उपर्युक्त अवनिवर्मा (दूसरे) से भिन्न था; क्योंकि उक्त लेख में उसके पिता का नाम सधन्व और दादा का नाम सिंहवर्मा लिखा है।

9 पूरा नाम शायद योगवर्म्मा हो।

10 धरणीवराह काठियावाड़ का चाप (चापोत्कट = चावड़ा) वंशी मांडलिक और कन्नौज के प्रतिहार राजा महिपालदेव का सामन्त था। इसके समय का दानपत्र हड्डाला गांव (काठियावाड़) से मिला है; जो शक सं० ८३६ (वि० सं० ९७१ = ई० स० ९१४) का है। इन्डियन एन्टिक्वेरी (जिल्द १२, पृ० १९०-९५) में डाक्टर बूलर ने इसका समय शक संवत् ९३९ (वि० स० ९७४ ई० स० ९१७-८) माना है और महीपालदेव को बिना किसी प्रमाण के गिरनार-जूनागढ़ के चूड़ासमा या आभीर राणकों में से कोई माना है।

11 अम्बुलक = उपर्युक्त जयपुर गांव से उत्तर में।

अनहिलवाड़े में चावड़ों के पीछे सोलंकियों का प्रबल स्वतन्त्र राज्य-स्थापित करनेवाले मूलराज के पूर्वजों का कुछ पता नहीं चलता। मूल-राज ने अपने वि० सं० १०४३ (ई० स० ९८७) माघ वदि अमावस्या के दान-पत्र में अपने को महाराजाधिराज श्रीराज का पुत्र लिखा है (इं० एँ, जिल्द ६, पृ० १९१)। प्रबन्धचिन्तामणि, कुमारपाल प्रबन्ध आदि के अनुसार छत्तीस लाख गाँव वाले कान्यकुब्ज देश के कल्याणकटक नगर के राजा भूदेव (भूयगड़देव) के वंशज मूंजालदेव के तीन पुत्र राज, बीज और दंडक सोमनाथ की यात्रा से लौटते थे; तब चावड़ावंश के अन्तिम राजा भूयड़देव (सामन्तसिंह) ने राज की अश्वविद्या की चातुरी देख और उसे उच्चकुल का अनुमान कर अपनी बहिन लीलादेवी का विवाह उससे कर दिया। लीलादेवी की अकाल मृत्यु होने पर उसका पेट चीर कर बालक निकाला गया। इसका जन्म मूल नक्षत्र में और अप्राकृतिक रीति पर होने से वह मूलराज कहलाया। पीछे इसने मामा को मार कर अपने को राजा बनाया। कन्नौज में सोलंकियों के राज्य होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। दक्षिण के कल्याण नगर पर बहुत पहले सोलंकियों का राज्य था, जिसकी शाखाओं का ही 'लाट,' 'सोरठ' प्रभृति पर राज्य होना दिखाया जा चुका है। ये सोलंकी कन्नौज के पड़िहारों के सामन्त थे। अतएव सम्भव है कि मूलराज का पिता राज (राजि) और उसका पूर्वज भूयगड़देव सोलंकियों की इसी सोरठ वाली शाखा के वन्शधर हों, जिसका वर्णन अभी किया जा चुका है। इससे उसका कान्यकुब्ज देश के अन्तर्गत होना, तथा (किसी, कालमें) कल्याणकटक के राजवंश से उद्भूत होना सम्भव है। 'भूदेव, अवनिवर्मा का पर्याय भी हो सकता है।

(४)

कल्याण के सोलंकी राजा तैलप के वृत्तान्त में सोलंकी बारप (बारप्प) का कुछ हाल आता है[1] उसके वंश का जो कुछ हाल मिलता है वह इस तरह है—

सोलंकी वंश में निंबार्क[2] का पुत्र बारप हुआ जिसने लाट देश प्राप्त किया। प्रबन्धचिनामणि[3] में लिखा है कि सोलंकी राजा मूलराज पर

---

1 देखो सोलं० इतिहास; प्रथम भाग, पृ० १०५।

2 बारप के पौत्र कीर्तिराज के ताम्रपत्र में निंबार्क से वंशावली दी है।

3 प्रबन्धचिन्तामणि की समाप्ति वि० स० १३६१ (ई० सं० १३०५) फाल्गुन सुदि १५ को हुई थी।

सपादलक्षीय (सांभर के चौहान) राजा (विग्रहराज दूसरे) ने चढ़ाई की, उसी अवसर पर तैलंगण देश के राजा तैलप के सेनापति वारप ने भी उस (मूलराज) पर चढ़ाई की, जिसमें वह मारा गया और उसके १०,००० घोड़े[4] तथा १८ हाथी मूलराज के हाथ[5] लगे। द्व्याश्रय काव्य में लाटेश्वर (लाट के राजा) द्वारप (वारप) का मूलराज के पुत्र चामुंडराज के हाथ से मारा जाना लिखा है[6]। कीर्तिकौमुदी[7] में लिखा है कि मूलराज ने लाटेश्वर के सेनापति वारप को मार कर उसके हाथी छीन लिये[8]। सोलंकी तैलप ने राठौड़ों का राज्य छीना, उस समय उनके अधीन का लाट देश भी उसके अधीन हुआ था, वह उसने अपने सेनापति तैलप (वारप) को दिया हो यह संभव है। ऐसी दशा में उसको तैलप का सेनापति, लाट का राजा, अथवा लाट के राजा का सेनापति लिखने में कोई विरोध नहीं आता, परन्तु सुकृत-संकीर्तन[9] में लिखा है—कि 'मूलराज ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा के सेनापति वारप को जीत कर उसके हाथी छीन लिए,[10]। इससे संशय उत्पन्न होता है, कि वह तैलप का सेनापति था या कन्नौज के राजा का? हमारी राय में उसका तैलप का सेनापति होना अधिक संभव है[11]। वारप का गोग्गि-

---

4 यह संख्या अतिशयोक्ति के साथ लिखी जान पड़ती है।

5 वम्बई की छपी हुई 'प्रवन्धचिन्तामणि', पृ० ४०–४३।

6 द्वयाश्रय काव्य में वारप पर मूलराज की चढ़ाई का हाल बड़े विस्तार से लिखा है (सर्ग ६, श्लोक ३९ से ९५ तक) परन्तु वह कवि-कल्पना मात्र ही है।

7 गुजरात के सोलंकियों के पुरोहित सोमेश्वर ने वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३०) के आस-पास 'कीर्तिकौमुदी' रची थी।

8 लाटेश्वरस्य सेनान्यमसामान्यपराक्रमः। दुर्वारम् वारपम् हत्वा–हास्तिकंयः समाग्रहीत। (कीर्तिकौमुदी, सर्ग २, श्लोक ३)

9 अरिसिंह ने ई. स. १३०० (वि. सं. १२४३) से कुछ वर्ष पूर्व 'सुकृतसंकीर्तन' की रचना की थी।

10 विजित्य यः संयति कन्यकुब्ज महीभुजो वारपदण्डनाथम्।
जहार हस्तिप्रकरम् कराग्रसूत्कारसंदीपितपौरुषाग्निम्॥

सुकृतसंकीर्त्तन, सर्ग २ श्लोक ५

11 वारप को तैलप का सेनापति मानने का कारण यह है कि प्रथम तो वारप (वारप्प) नाम ही दक्षिण का है, फिर उसीको लाट देश का राज्य मिला था, ऐसा उसके वंशज त्रिलोचनपाल के ताम्रपत्र में लिखा है

राज हुआ, जिसकी पुत्री नायल देवी का विवाह देवगिरि (दौलताबाद) के यादव राजा वेसुक (वेसुगी) से हुआ था[12]। उसका पुत्र कीर्तिराज हुआ जिस के समय का एक दानपत्र[13] श० सं० ९४० (वि० सं० १०७५, ई० स० १०१८) का मिला है। उसका बेटा वत्सराज और उसका त्रिलोचनपाल हुआ जिसका एक ताम्रपत्र[14] श० सं० ९७२ (वि० सं० ११०७, ई० स० १०५१) पौष अमांत कृष्णा अमावस्या का मिला है। उसके पीछे का कुछ भी हाल नहीं

(वारप्पराज इति विश्रुतनामधेयो राजा वभुव भुवि नाशितलोकशोकः ॥८॥ श्री लाटदेशमधिगम्य कृतानि येन सत्यानि नीति वचनानि मुदे जनानाम् । इन्डि० एन्टि०, जि० १२ पृ० २०१)। तैलप ने राठौड़ों का राज्य छीना उस समय उक्त राज्य का दूर का उत्तरी हिस्सा (लाट) उसने अपने सेनापति को जो सोलंकी ही था, दिया हो, यह सम्भव है। कन्नौज के पड़िहार राजा महीपाल को, जो भोजदेव (मिहिर) का पौत्र और महेन्द्रपाल का पुत्र था, दक्षिण के राठौड़ राजा इन्द्रराज तीसरे ने शक सं० ८३८ (वि० सं० ९७३ = ई० ९१६) के आस-पास हराया। उस समय से ही कन्नौज का महाराज्य कमजोर होने लगा और वि० १०१७ (ई० स० ९६०) में सोलंकी मूलराज ने अनहिलवाड़े में सोलंकियों का स्वतन्त्र राज्य कायम किया। उस समय से अथवा उसके पूर्व कन्नौज के राजाओं का गुजरात आदि अपने राज्य के दक्षिणी हिस्सों पर से अधिकार उठ जाना सम्भव है। ऐसी दशा में वारप को तैलप की तरफ से लाट देश मिलना अधिक संभव है; परन्तु जब तक नवीन शोध से हमारे इस अनुमान की पुष्टि न हो, तब तक हम उसको संशयरहित नहीं मान सकते।

12 देवगिरि के यादव राजा सेऊणचन्द्र (दूसरे) के समय के शक स० ९९१ (वि० सं० ११२६ = ई० स० १०६९) के ताम्रपत्र में उसके पूर्वज वेसुक की रानी नायलदेवी का सोलंकी मण्डलेश्वर गोगि की पुत्री होना लिखा है। वह गोगि वारप का पुत्र गोगिराज होना चाहिये। (चालुक्यान्वयमण्डलीकतिलकाच्छ्रीगोगिराजाकरादुत्पन्ना दुहितान्वयाद्गुणवती धाम्ना कुलद्योतिता। स्त्रीरत्नम् वत वेधसा प्रकटितम् सामन्त रत्नायसा श्रीनायलदेविनाम सुभगा श्रीपट्टराज्ञी सदा) इन्डि. एन्टि.; जिल्द १२, पृ. १२०

13 डाक्टर कीलहार्न संग्रहीत इन्स्क्रिपशन्स आफ नार्दन इन्डिया, सं. ३५४, पृ. ५०।

14 इन्डि. एन्टि. जि. १२, पृ. २०१–२०३।

मिलता। ये सोलंकी बादामी के सोलंकियों के वंशज होने चाहिएं।

(ना० प्र० प०; नवीन संस्करण, काशी, भाग १, संख्या १, सं० १९७७)

१४—लाखा फूलाणी का मारा जाना

चन्द्रवंशी यादव क्षत्रियों की एक शाखा जाड़ेजा अथवा जाड़ेचा नाम से प्रसिद्ध है। उक्त शाखा के जाम (राजा) मोड़ ने ईस्वी सन् की ९ वीं शताब्दी में सिंध से आकर अपने मामा कच्छ के राजा वाघम चावड़े को मार कच्छ देश को अपने आधीन किया। उसका पौत्र फूल हुआ, जिसका पुत्र लाखा फूलाणी[1] बड़ा ही समृद्धिवान[2] और उदार राजा था। उसकी ख्याति राजपूताना, गुजरात आदि देशों में अब तक चली आती है, इतना ही नहीं; किन्तु उसका नाम धनाढ्यता और उदारता के विषय में एक साधारण कहावत सा हो गया है।

---

1 फूलाणी=फूल का पुत्र (जैसे जाडाणी=जाडाका पुत्र आदि)

2 मायामाणी बगड़ावतां (के) लाखे फूलाणी,

रहती-सहती माणग्यो हरगोविन्नाटाणी * ॥१॥

लाखा पुत्र समुद्र का, फूल घरे अवतार।
पारेवाँ मोती चुगे, लाखारे दरबार ॥२॥
पल्लाणी हीरे जड़ी, सूरत पञ्चाणी,
पच्छम हिन्दो पातशा, लाखो फूलाणी ॥३॥

---

* बगड़ावत जाति के गूजर थे। अजमेर जिले में रेण नामक स्थान में इनका निवास था, जो भिणाय के समीप है। कहते हैं कि भिणाय के आस-पास का समग्र देश इनके अधिकार में था और भिणाय साधा-

हमारे यहाँ प्राचीन काल में इतिहास लिखने की प्रथा न होने के कारण अनेक प्राचीन राजवंशियों आदि के समय तक का भी ठीक पता नहीं चलता और उनके इतिहास के लिये भाट लोगों की मनमानी घडंतों पर ही निर्भर रहना पड़ता है । यही हाल लाखा फूलाणी के समय का है ।

रण बोलचाल में अब भी 'रेण-भिणाय नाम से प्रसिद्ध है । वे चौवीस भाई थे, जो वीर होने के साथ ही असाधारण सम्पत्तिशाली थे । इनका समय वीरतामय कार्यों में ही व्यतीत होता था और आठों प्रहर मदिरादेवी की आराधना में तत्पर रहते थे । इनमें बड़ा भाई भोज था, जो पड़िहार बाघ की दुराचारिणी स्त्री जयमति को ले आया । वह उसके साथ विलासमय जीवन बिताने लगा; किन्तु उसके अन्य तेईस भाई भी उक्त जयमति की तरफ आसक्ति प्रकट करते हुए अनुराग रखते थे । फलतः वे परस्पर कट मरे और प्रसिद्ध है कि जयमति चौवीस ही बगड़ावत भाइयों के मस्तकों की माला पहिन सती हो गई । मेवाड़ के आसीन्द नामक गाँव में जयमति का स्थान है, जहाँ गूजरों का कामड़ गुरू रहता है और वह स्थान 'बनी' कहलाता है । बगड़ावतों का समय अभी निश्चित् नहीं हुआ है । सामान्य रूप से पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग उनका उद्गम मानना पड़ेगा । विलास कामना के हेतु प्रचुर मात्रा में इन्होंने अपनी सम्पत्ति का उपयोग किया और अन्त में एक स्त्री के पीछे चौवीस ही भाइयों ने अपने जीवन को लगा दिया । राजस्थान में अबतक इनकी बड़ी ख्याति है । लोक साहित्य में इनकी वीरता और प्रेममय जीवन के गीतों का बड़ा महत्व है और गूजर ही नहीं, अन्य लोग भी बड़े चाव से उन्हें गाते हैं । विक्रम के इधर के एक सहस्र वर्षो में सम्पत्ति का उपयोग करने वालों में उपरोक्त दोहे में उल्लिखित तीनों व्यक्ति बड़े नामी हुए अर्थात् भोग-विलास में उपयोग करने वाले बगड़ावत, दातारी में उपयोग करने वाला लाखा फूलाणी और खाने-पीने की सामग्री में व्यय करने वाला हर गोविन्द नाटाणी ।

राजस्थान के कवि इन तीनों व्यक्तियों को नहीं भूले हैं । सम्पति का उपयोग करने में कंजूसी करने वाले व्यक्तियों के समक्ष यह दोहा उदाहरण रूप में रखते हैं ।

हरगोविन्द नाटाणी जाति का (सरावगी !) महाजन था । वह जयपुर के कछवाहा नरेश ईश्वरीसिंह के समय केशवदास खत्री के स्थान पर मंत्री बना । महाराजा की असाधारण कृपा से लक्ष्मी देवी ने भी उस पर

कर्नल टॉड लिखते हैं[3] कि—"कन्नौज के राठोड़ राजा जयचन्दजी के पौत्र सियाजी के हाथ से लाखा फूलाणी मारा गया था," और ऐसा ही राजपूताने में प्रसिद्ध है। रामनाथजी रत्नू अपने "इतिहास राजस्थान" में लिखते हैं कि—"कन्नौज के राठोड़ राजा जयचन्दजी के पौत्र सेतरामजी के बेटे सियाजी ने द्वारिका की यात्रा के लिये प्रस्थान किया, जहाँ से लौटते समय अनहलवाड़ा पाटन के सोलंकी राजा मूलराज ने इनको सत्कार-पूर्वक कुछ दिन अपने यहाँ रक्खा और सियाजी को अपनी पुत्री व्याही, जिसके पलटे में सियाजी ने सौलंकियों के शत्रु किले कोट के साडेया राजा लाखा फूलाणी को मार कर उनका पीछा छुड़ाया"।

इन[4] दोनों ग्रंथकारों के लिखे अनुसार विक्रम संवत् १३०० के आस-पास लाखा फूलाणी का मारा जाना मानना पड़ता है, क्योंकि विक्रम संवत् १२५० (ई० सन् ११९३) में कन्नौज के अन्तिम राठोड़ राजा जयचन्दजी शाहवुद्दीन गौरी से लड़कर युद्ध में मारे गये थे, जिनके पोते (कर्नल टॉड के अनुसार या पड़पोते इतिहास राजस्थान के अनुसार) सियाजी[5] थे।

---

3 टॉड राजस्थान जिल्द दूसरी, पृ० १४ (कलकत्ते में छपी हुई)

4 इतिहास राजस्थान, पृ० १३८।

5 सियाजी का जयचन्दजी के साथ क्या सम्वन्ध था, इसका अभी तक ठीक निर्णय नहीं हुआ। कर्नल टॉड एक राजस्थान में तो सियाजी को जयचन्द का पुत्र (टा० रा० जि० १ पृ० ९५) और दूसरे स्थान में पौत्र होना प्रकट करते हैं; और ख्यातों की पुस्तकों में जयचन्द के पुत्र

कृपा प्रदर्शित की। स्वयं के खाने-पीने के कार्य में धन का उपयोग करने में वह अद्वितीय पुरुष था। प्रसिद्ध है कि 'मंत्री मोटो मारियो, खत्री केसोदास। जद ही छोड़ी ईसरा राजकरण की आस,' इस दोहे के अनुसार महाराजा ईश्वरीसिंह ने विषपान द्वारा अपने जीवन को त्याग दिया और उनके छोटे भाई माधवसिंह ने राजा बन कर हरगोविन्द को बंदी कर लिया। तब महाराजा माधवसिंह की आज्ञानुसार हरगोविन्द की हवेली को राज कर्मचारियों द्वारा संभाला गया तो अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के अतिरिक्त केवल खाने का आचार ही इतनी मात्रा में निकला कि जिसका मूल्य एक लाख पच्चीस हजार रुपये कूता गया। हरगोविन्द का समय वि० सं० की उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारम्भिक भाग है। सं० टि०

जब ऐतिहासिक प्राचीन पुस्तकों आदि की तरफ दृष्टि देते हैं तो ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे यह पाया जाता है कि उपर्युक्त दोनों ग्रंथकारों ने इस विषय में जो कुछ लिखा है वह केवल राजपूताने के भाटों की कल्पित कथाओं पर विश्वास करके लिख दिया है, और उसमें कुछ भी सत्यता नहीं है। लाखा फूलाणी सियाजी के जन्म से २०० से भी अधिक वर्ष पूर्व वि० १०३६ (ई० सन् ९८०) के आस-पास आन्हिलवाड़ा के सोलंकी राजा मूलराज के हाथों से मारा गया। इस विषय के जो प्रमाण मिले हैं वे पाठकों के विनोदार्थ नीचे उद्धृत किये जाते है--

(क) "द्वयाश्रय[6] काव्य" से पाया जाता है, कि "गुजरात के

वड़ई सेन, जिनके सेतराम और सेतराम के सियाजी होना लिखा है, परन्तु ये पुस्तकें भाटों की घड़न्तों के आधार पर लिखी गई है, जिनमें उक्त-राजाओं के जो राज्याभिषेक संवत् दिए हैं, वे बिलकुल बनावटी हैं (जयचन्दजी वि० सं० ११५१; वड़ई सेन वि० सं० ११६५ सेतराम वि० सं० ११८३ और सियाजी वि० सं० १२०५) जिसमें उक्त नामों की सत्यता पर भी शंका होती है। दूसरा कारण यह है कि जयचन्दजी के दान पत्रों से उनके पुत्र हरिचन्द्र होना पाया जाता है, जिनका जन्म वि० सं० १२३२ भाद्र पद कृ० १२ रविवार को, और नाम करण भाद्र पद शु० १३ रविवार को काशी में हुआ था; परन्तु कर्नल टॉड की पुस्तक और ख्यातों में हरिश्चन्द्र का नाम ही नहीं हैं। कर्नल टॉड को वड़ई सेन का नाम मिला था, जिसको उन्होंने राजाओं की नामावली में दाखिल नहीं किया, किन्तु उसे कन्नौज के राजा जयचन्दजी का खिताब अनुमान कर उसका अर्थ 'सेना का भाट' किया है। 'चन्दबरदाई' कविको 'चन्दभाट' भी कहते हैं, इससे शायद उन्होंने 'वरदाई' को भाट का पर्य्याय समझ कर ऐसा अर्थ किया हो तो आश्चर्य नहीं।

6 प्रसिद्ध जैन सूरी हेमचन्द्र ने गुजरात के सौलंकी राजकुमार पाल के समय वि० सं० १२१७ (ई० सन् ११६०) के आस पास 'द्वयाश्रय काव्य' नामक भट्टी काव्य की शैली की पुस्तक रची; जिसमें उक्तसूरी रचे हुए 'सिद्ध हैम' नामक संस्कृत व्याकरण के सूत्रों के क्रमशः उदाहरण और गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज से कुमारपाल तक का इतिहास दोनों आशय होने से ही उसका नाम 'द्वयाश्रय काव्य' रक्खा गया है।

चौलुक्य (सोलंकी) राजा मूलराज ने सौराष्ट्र सोरठ, दक्षिणी काठियावाड़ के राजा ग्राहरिपु * पर चढ़ाई की, उस समय कच्छ का महा प्रतापी राजा लक्ष (लाखा) जो फूल्ल (फूल) का पुत्र था, अपने मित्र ग्राहरिपु की मदद पर चढ़ा, और मूलराज के कुन्त (भाले) से मारा गया[7]" ।

(ख)—"कीर्ति कौमुदी[8]" में लिखा है कि "मूलराज ने शत्रु के अंग में पूरे प्रवेश करने वाले अपने बाण बड़ी इच्छा करने वाले राजा लक्ष (लाखा) पर ताके[9]" ।

(ग) प्रबन्ध चिन्तामणिकार[10] कहता है कि—"अपने प्रतापरूपी अग्नि में लक्ष (लाखा) को होमने वाले मूलराज ने उसकी (लाखा की) स्त्रियों को आँसुओं की वृष्टि कराई, और कच्छ के उक्त स्वामी को अपनी विस्तृत जाल में फाँस कर संग्राम रूपी समुद्र में मारा, और अपनी वीरता प्रकट की[11] ।

---

7 'द्वयाश्रय काव्य' के दूसरे से पांचवें सर्ग तक मूलराज की उक्त चढ़ाई का और पाँचवें सर्ग में लाखा के मारे जाने का हाल विस्तार से लिखा है। ऊपर केवल उसका सारांश मात्र उद्धृत किया गया है, (कुन्तेन सर्वसारेणा वधील्लक्षं चुलुक्य राष्ट्र)।

द्वयाश्रय, सर्ग ५ (१२८)।

8 गुजरात के सोलंकी राजाओं के पुरोहित महाकवि सोमेश्वर ने वि० सं० १२७७ (ई० सन् १२२०) और १२९२ (ई० सन् १२३५) के बीच 'कीर्तिकौमुदी' नामक ऐतिहासिक काव्य रचा, जिसमें गुजरात के सोलंकी राजाओं का इतिहास है ।

9 समत्रा कृत शत्रूणां संपराये स्वपत्रिणाम् ।
महेच्छ कच्छ भूपालं लक्षं लक्षी चकारय ॥

(सर्ग २।४)

10 जैन सूरी मेरुतुंग ने वि० सं० १३६१ (ई० सन् १३०५) में प्रबन्ध चिन्तामणि, नामक ग्रन्थ रचा, जिसमें अनेक ऐतिहासिक कथाओं का संग्रह किया ।

11 स्वप्रतापावले येन लक्ष होमं वितन्वता ।
सूचि तस्तत्कलत्राणां वाष्पा वाग्रह निग्रहः ॥१॥
कच्छप लक्षं हत्वा सहसाधिक लम्ब जाल मायातं ।
संगर सागर मध्ये धीवरता दर्शितायेन ॥२॥

(बम्बई की छपी प्रबन्ध चिन्तामणि पृ० ४७)

सम्पादकीय टिप्पण

* इसका नाम ग्रहरिपु भी लिखा हुआ मिलता है। (सम्पा० टि०)

(घ) प्राचीन गुजराती कविता में लाखा के जन्म और मृत्यु का वृत्तान्त इस तरह दिया है[12] कि—"शक संवत् ७७७ (वि० सं० ६१२ = ई० सन् ८५६) श्रावण (शुक्ला) ७ को सोनल राणी के गर्भ से लाखा का जन्म हुआ और शक संवत् ६०१ (वि० सं० १०३६ = ई० सन् ६८०) कार्तिक शुक्ला ८ शुक्रवार के दिन अपने पिता का वैर लेने वाले मूलराज के हाथ से वह मारा[13] गया। इस लड़ाई में १५०० समा (जड़ेया), सोलंकी और १६०० चावड़े राजपूत राज्य की रक्षा के लिये लड़कर काम आए"।

---

12 दोहा—शाके सात सातो तरे, (शुद्ध) सातम श्रावण मास।
सो बल लाखो जनमियो, सूरज जोत प्रकाश ॥१॥
छप्पय-शाके नव एक में, मास कार्तिक निरन्तर।
पिता वैर छल ग्रहे, साहड़ दाखे अत अधर ॥१॥
पड़े समा सो पनरे, पड़े सोलंकी सो खट।
सो ओगणिस चावड़ा, मुवाराज रक्षवट ॥
पातले गाव वी मंगल गई, हाथमल सेल सिहना आशरे।
आठ में पक्ष शुक्र चाँदणे, मूलराज हाथ लाखो मरे ॥
(राजमल गुजराती—जिल्द १ पृ० ८६)

ऊपर के दोहे में जो शक संवत् ७७७ वि० सं० ६१२ में लाखा का जन्म होना लिखा है वह संशय-युक्त है, क्योंकि इस हिसाव से उसका १२४ वर्ष की अवस्था में मारा जाना सिद्ध होता है, और ऐसी वृद्धावस्था में लड़कर मारे जाने के उदाहरण बहुत ही कम मिलेंगे।

13 मूलराज ने लाखा फूलाणी को मारा जिसका कारण गुजरात के भाट लोग ऐसा प्रकट करते हैं कि—"किसी समय मूलराज का पिता राजा सोलंकी द्वारिका यात्रा से लौटता हुआ लाखा के दरवार में गया, और वहाँ पर लाखा की वहिन रायाजी से उसका विवाह हुआ, जिससे रखायच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर किसी कारण से विवाद हो जाने पर राजा सोलंकी लाखा के हाथ से मारा गया, जिसका वैर लैने की इच्छा से मूलराज ने कच्छ पर चढ़ाई कर लाखा को मारा"। परन्तु उनकी यह कथा भी विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा हुआ होता तो उसका चवूतरा (जहाँ वह मारा गया) कच्छ में होना चाहिए था; परन्तु वह सोरठ में आट कोट के पास वना हुआ हैं, जिससे यही पाया जाता है, कि वह सोरठ के राजा ग्राहरिपु की मदद पर चढ़ कर वह वहीं मारा गया, जैसा कि हेमचन्द्र सूरि ने लिखा है।

(ङ) कच्छ भाषा की प्राचीन कविता में ऐसा लिखा मिलता है कि[14]-- "लाखा फूलाणी ने आकर अभिमान किया, परन्तु लड़ाई में मूलराज के हाथ की सांग लगने से मारा गया" ।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि, लाखा फूलाणी राठौड़ सियाजी के हाथ से नहीं, किन्तु मूलराज के हाथ से मारा गया था और कर्नल टॉड ने तथा इतिहास राजस्थान के कर्त्ता ने इस विषय में जो कुछ लिखा है वह ठीक नहीं है[15] । ऐसे ही मूलराज सोलंकी की पुत्री से सियाजी का विवाह

---

14 अची फूलाणी, फरोस्थो, रारो मंडाणू ।
मूलराज सांग उरवती, लखी मराणू ॥

15 कर्नल टॉड ने ई० सन् ६३१ (वि० सं० ६८७) में और फार्वस साहिव ने ई. सन् ९४२ (वि० सं० ९९८) में मूलराज का राज्य पाना निश्चय किया है और पिछले लेखों में टॉड साहिव के दिये हुए समय को स्वीकार न कर फार्वस साहिव का निश्चय किया हुआ संवत् ही उद्धृत किया है (गुजरात राजस्थान पृ० ३; इण्डियन एंटिक्वेरी जिल्द ६, पृ० २१३) । परन्तु फार्वस साहिव का निर्णय किया हुआ संवत् सही नहीं माना जा सकता क्योंकि उक्त साहिव ने यह भी लिखा है कि "ई० सन् ९३५ (वि० सं० ९९१) में चावड़ा वंश का अन्तिम राजा सामन्त सिंह अनहिलवाड़ा की गद्दी पर बैठा । उसके समय में सोलंकी वंश के राज, वीज और दण्डक नामी तीन भाई सोमनाथ की यात्रा से लौटते हुए उसके दरवार में आये, उनमें से राज की वीरता पर प्रसन्न होकर उसने अपनी बहिन लीलादेवी का विवाह उसके साथ कर दिया जिसके गर्भ से मूलराज उत्पन्न हुआ, जो अपने मामा के पास ही रहा और ई० सन् ९४२ (वि० ९९८) में उसने अपने मामा को मारकर उसका राज्य छीन लिया । विचार का स्थान है कि सामन्त सिंह के मारे जाने के समय फॉर्वस साहव के हिसाव से मूलराज की अवस्था अधिक से अधिक पाँच या छः वर्ष की हो सकती है तो ऐसी अवस्था में उसका एक राजा को मारकर राज्य छीन लेना कैसे संभव हो सकता है ? अतः मेरूतुङ्गसूरि ने जो अपने रचे हुए 'विचार श्रेणी' नामक पुस्तक में मूलराज को अनहिलवाड़ा की गद्दी पर वि० सं० १०१७ में बैठना लिखा है वह ठीक माना जा सकता है, क्योंकि उस समय मूलराज की अवस्था वीस वर्ष के करीब होना संभव है । इसी तरह उक्त सूरि ने अपने 'प्रवन्ध चिन्तामणि' नामक ग्रंथ में चावड़ा वंश के अन्तिम राजा सामन्तसिंह (भूयगड़देव)

होना इतिहास राजस्थान में लिखा है वह भी निर्मूल है। क्योंकि सियाजी के राज्य का प्रारम्भ वि० सं० १३०० (ई० सन् १२४३) के आस-पास और मूलराज सोलंकी का राज्याभिषेक संवत् १०१७ (ई० सन् ९६१) में हुआ था। इसलिये सियाजी का मूलराज के समय में विद्यमान होना कैसे सम्भव हो सकता है। †

(मासिक समालोचक, जयपुर, जनवरी-फरवरी १९०४, भाग २, संख्या १७–१२, पृ० २१८–२२५)

का वि० सं० ९९० पौष शुदि १ को गद्दी पर बैठना और २७ वर्ष राज्य करना लिखा है उससे भी मूलराज का वि० सं० १०१७ में राज्य पाना सिद्ध होता है और यही संवत् शुद्ध मानने योग्य है *।

---

* सांभर के उमरशाह नामक कुए से मिले हुए सोलंकी राजाओं के शिलालेख से गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज प्रथम का वि० सं० ९९८ (ई० स० ९४१) में अनहिलवाड़े का स्वामी होना स्पष्ट है। अतएव चावड़ा वंश के अंतिम राजा सामंतसिह (भूयगड़देव) का राज्य काल सात-आठ वर्ष से अधिक नहीं मानना पड़ेगा। संभव है कि विचार श्रेणी और प्रवन्ध चिन्तामणि के कर्त्ता मेरूतुङ्ग द्वारा मूलराज के राज्य प्राप्ति का संवत् और चावड़ा राजा सामंतसिंह का राज्य-काल लिखने में भूलें हुई हो।

यहाँ गुजरात राजस्थान के कर्त्ता मि० फॉर्वस का दिया हुआ मूलराज के राज्य प्राप्ति का समय प्रामाणिक ठहरता है, जिसका मूल आधार 'कुमारपाल प्रवन्ध' हो, जिसमें मूलराज प्रथम का वि० सं० ९९८ (ई० सं० ९४१) में राज्य पाने का उल्लेख है। आगे जाकर श्री० ओझाजी ने 'गुजरात से मिले हुए प्रतिहारों तथा राजपूताना से मिले हुए सोलंकियों के दानपत्र और शिलालेख' शीर्षक लेख में मूलराज के राज्य प्राप्ति का यही समय ठीक मानकर उपरोक्त अनुमान को बदल दिया है।

† कर्नल टॉड ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ एनाल्स एंड एंटिक्वीटीज ऑफ राजस्थान की रचना की थी, उस समय पुरातत्वानुसंधान का कार्य आरंभ ही हुआ था और प्राचीन इतिहास संबंधी सामग्री प्राप्ति के साधन सुलभ नहीं थे। इसलिए उन्हें ख्यातें जनश्रुतियों आदि को भी ग्रहण करना पड़ा। फलतः उनके राजस्थान में ऐसी कितनी ही भूलें हैं, जिनको समय २

पर विद्वानों ने दृष्टिगोचर कराया है। इनमें श्री० ओझाजी भी हैं, जिन्होंने टॉड के भ्रमपूरित लेखों पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डाला है।

इस लेख में श्री० ओझाजी ने कर्नल टॉड के इस कथन 'लाखा फूलाणी' जोधपुर के वर्तमान राठोड़ राज्य के संस्थापक राव सीहा द्वारा मारा गया और श्री० रामनाथ रत्नु के "इतिहास राजस्थान" के इस वर्णन 'गुजरात के सोलंकी नरेश मूलराज (प्रथम) की पुत्री का विवाह राठोड़ राव सीहा से हुआ' पर प्रकाश डालते हुए दोनों के कथनों को भ्रमपूरित सिद्ध किया है।

वस्तुत: लाखा फूलाणी गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज (प्रथम, वि० सं० ९९८–१०५१ = ९४१ ९९४) द्वारा मारा गया, यह प्रमाणोक्त है। राव सींहा, लाखा फूलाणी और मूलराज के तीन सौ वर्ष पीछे हुआ था। उस (राव सीहा) का स्मारक लेख भी मिल गया है, जिसमें उसका वि० सं० १३३० कार्तिक वदि १२ (ई० सं. १२७३ तारीख ९ अक्टोंबर) सोमवार को परलोकवास होने का उल्लेख है।

जोधपुर के राठोड़ नरेश तथा उनके वंशधर अन्य राठोड़ नरेशों की ख्यातों में लाखा फूलाणी का राठोड़ रावसींहा द्वारा मारे जाने, एवं सोलंकी नरेश की मूलराज की पुत्री का विवाह होने का उल्लेख अवश्य है; परन्तु प्राचीन इतिहास के लिए ख्यातों का कथन प्राय: कल्पित ही ठहरता है। वास्तव में ख्यातों का लेखन काल अधिक प्राचीन नहीं है और वे सुनी-सुनाई बातों को जोड़कर निर्मित की गई है।

अब तो यह विषय विवाद ग्रस्त है ही नहीं; क्योंकि जोधपुर राज्य के प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् महा महोपाध्याय श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने कई वर्ष पूर्व 'भारत के प्राचीन राजवंश' तृतीय भाग, पृ० १२० में इन दोनों भ्रमपूरित बातों को ठीक नहीं माना है।

(सं० टि०)

प्रकरण तीसरा

मूर्तिकला

१—राजपूताना में शिव-मूर्तियां

एकेश्वरवादी होने के कारण वैदिकधर्मावलम्बी भारतवासी अत्यन्त प्राचीन काल से एक ही ईश्वर को सृष्टि का उत्पादक, पालक एवं संहारक मानते आ रहे हैं। ईश्वर के भिन्न-भिन्न कार्यों के अनुसार उसके भिन्न-भिन्न नामों की कल्पना की गयी; परन्तु ये सब नाम एक ही ईश्वर के द्योतक हैं। ईश्वर द्वारा जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार होने से उसके क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र (शिव) नाम रक्खे गये। पहले ईश्वर के निर्गुण स्वरूप की उपासना होती थी; पीछे उसकी भिन्न-भिन्न प्रकार की मूर्तियाँ बनने लगीं। मूर्तियों की कल्पना में मनुष्य की बुद्धि अपने से अधिक सुन्दर वस्तु उत्पन्न नहीं कर सकती थी, तो भी देव मूर्तियों की कल्पना करते समय मनुष्य को अपनी अपेक्षा कुछ विशेषता प्रदर्शित करने की आवश्यकता जान पड़ी। देव-प्रतिमाओं की कल्पना में शरीर की आकृति तो मनुष्य जैसी ही मानी गयी, परन्तु कहीं-कहीं हाथों और मुखों की संख्या बढ़ा कर उनमें विशेषता उत्पन्न की गयी।

भारतवर्ष के जल वायु में हजारों वर्ष पूर्व के मन्दिरों अथवा मूर्तियों का अक्षुण्ण रहना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि यहां अत्यन्त प्राचीन कालकी मूर्तियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। ऐसी दशा में यह स्पष्टरूप से नहीं जान पड़ता कि प्रारम्भ में मूर्तियां द्विभुज बनायी जाती थीं अथवा चतुर्भुज। अब तक ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य आदि देवताओं की जो मूर्तियां मिली हैं उनमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव चतुर्भुज हैं। सूर्य की सबसे प्राचीन मूर्तियाँ द्विभुज हैं। अजमेर के राजपूताना-म्यूजियम' में सूर्य की दस से अधिक प्राचीन मूर्तियाँ हैं। उनमें केवल एक चार भुजाओं से युक्त एवं सात घोड़ों के रथ में विराजमान है, परन्तु यह दो सौ वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। शेष भी द्विभुज हैं। इसी प्रकार आरम्भ में शिव प्रतिमा द्विभुज और एकमुखी बनायी जाती रही हो, यह असम्भव नहीं है। ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी के आसपास के कई सिक्कों पर स्कन्द, विशाख और महासेन की मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जो द्विभुज और एक सिर वाली हैं। उसी शताब्दी के कुषाणवंशी राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के कतिपय सिक्कों पर शिवजी की द्विभुज और एक सिर वाली मूर्ति अङ्कित है। उनमें शिव अपने वाहन नन्दी के समीप हाथ

में त्रिशूल लिये खड़े हैं। मूर्ति के नीचे प्राचीन यावनी (ग्रीक) लिपि में 'आइशो' (Oesho) अर्थात् ईशो—ईश = शिव लिखा है। इन मूर्तियों से हम यह मान सकते हैं कि पहले शिव की मूर्ति द्विभुज एक सिर वाली रही हो; परन्तु उसी समय के कुछ सिक्कों पर शिव की ऐसी भी मूर्तियां हैं, जिनके एक मुख है और चार हाथ हैं और हाथों में माला, वज्र, त्रिशूल और पात्र दीख पड़ते हैं। इनसे जान पड़ता है कि शिव के चार हाथों की कल्पना भी नवीन नहीं, किन्तु उतनी ही प्राचीन है। भारतवर्ष में ईस्वी सन् की पांचवीं शताब्दी के पूर्व की कोई हाथ पैर वाली पाषाण-निर्मित शिव-प्रतिमा अब तक देखने में नहीं आयी।

राजपूताने में शिव-पूजा बहुत प्राचीन काल से चली आती है और वहां कई प्रकार की शिव-मूर्तियां मिलती हैं। इनमें से बहुत-सी मूर्तियां तो गोलाकार लिङ्ग के रूप में जलहरी (जलाधारी) के मध्य में स्थापित हैं। सम्भवतः वे शिव के 'स्थाणु' नाम की सूचक हों। राजपूताना में कई जगह राजाओं, सरदारों आदि की स्मारक छतरियों तथा साधुओं की समाधियों के मध्य में भी ऐसे लिङ्ग स्थापित किये जाते हैं।

बहुत सी मूर्तियों में ऊपर के भाग में थोड़ा-सा बाहर निकला हुआ वृत्ताकार शिव लिङ्ग और उसके चारों ओर जटाजूट सहित चार सिर होते हैं। कोटाराज्यान्तर्गत चार चोमा के प्राचीन शिवालय में, मेवाड़ में एकलिङ्गजी के प्रसिद्ध मन्दिर में तथा अन्यत्र भी ऐसी अनेक प्रतिमाएं विद्यमान हैं।

उपर्युक्त लिङ्ग का वृत्ताकार ऊर्ध्वभाग ब्रह्माण्ड का द्योतक माना जाता है और चार मुखों में से पूर्व-मुख सूर्य का, उत्तर-मुख ब्रह्माजी का, पश्चिम-मुख श्रीविष्णु का और दक्षिण-मुख रुद्र (शिव) का सूचक होता है। जिन मन्दिरों में प्राचीन पद्धति के अनुसार शिवार्चन होता है, वहां उन मुखों में उन्हीं देवताओं की कल्पना करके उनका पूजन किया जाता है और विष्णु सूचक मुख की पूजा के समय उस पर तुलसी भी चढ़ायी जाती है।

भरतपुर-राज्य के कामां (कामवन) नामक ग्राम से मिला हुआ एक चतुरस्र शिवलिङ्ग राजपूताना-म्युजियम (अजमेर) में सुरक्षित है। उसके ऊपर का एक इंच ऊंचा गोल भाग लिङ्ग (ब्रह्माण्ड) का सूचक है। शिव भक्त उसे शिव का पांचवां मुख मानते हैं। उसमें नीचे के चारों भागों में मुखों के स्थान पर मूर्तियां बनी हुई हैं। पूर्व में सूर्य की आसीन मूर्ति है, जिसके नीचे सात घोड़े और हाथ में उनकी रास लिए सूर्य का सारथि अरुण दीख पड़ता है। उत्तर की

ओर दाढ़ी वाले ब्रह्मा की चतुर्मुख (चौथा मुख अदृश्य है) मूर्ति है, पश्चिम की ओर गरुड़ासीन विष्णु और दक्षिण की ओर नन्दी सहित शिव की मूर्ति है। पंचमुखी शिव की मूर्तियों में चारों दिशाओं के मुख इन्हीं चार देवताओं के सूचक होने से यही जान पड़ता है कि ये चारों देवता एक ही ईश्वर के ब्रह्माण्ड स्थित रूप हैं। कामाँ से एक बड़ा शिवलिङ्ग मिला है, जिसके ऊपर का एक इंच बाहर निकला हुआ वृत्ताकार भाग शिव के पांचवें मुख (ब्रह्माण्ड) का प्रदर्शक है। उसके नीचे चारों ओर साधारण शिवलिङ्गों के समान जटा-जूट सहित चार मुख हैं। पूर्व के मुख के नीचे घुटनों तक लम्बे बूट पहने हुए सूर्य की द्विभुज मूर्ति और उत्तर की ओर दाढ़ी वाले ब्रह्माजी की चतुर्मुख, पश्चिम में विष्णु की चतुर्भुज एवं दक्षिण में नन्दी सहित रुद्र की चतुर्भुज मूर्तियाँ हैं। ये चारों मूर्तियाँ ढाई-ढाई फीट ऊँची और खड़ी हुई हैं इस शिव-लिङ्ग को देखने से यह निश्चय होता है कि इसके चारों दिशाओं के चारों मुख क्रमशः सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के द्योतक हैं।

ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी क कुषाणवंशी राजाओं के कुछ सिक्कों पर नन्दी के पास खड़ी हुई द्विभुज, परन्तु चार मुख वाली (चौथा मुख अदृश्य है) शिव की मूर्ति बनी है, जो ऊपर की कल्पना को पुष्ट करती है। इस प्रकार शिव के पांच मुख माने जाने के कारण वे 'पंचानन', 'पंचमुख', 'पंचास्य' अथवा 'पंचवक्त्र' आदि नामों से प्रसिद्ध हैं।

जोधपुर-राज्य के गोड़वाड़ प्रान्त में सादड़ी गाँव से कुछ दूर राणपुर का सुप्रसिद्ध जैन मन्दिर है। उसके निकट ही एक प्राचीन सूर्य मन्दिर है, जिसके गर्भगृह में सूर्य की मूर्ति है और उसके बाहर की ओर ब्रह्मा, विष्णु और शिव की ऐसी मूर्तियाँ बनी हुई है, जिनमें कमर से नीचे का भाग सूर्य का और ऊपर का भाग ब्रह्मा आदि देवताओं का है। ये सारी मूर्तियाँ ७ घोड़े वाले रथ में बैठी हुई हैं, उन्हें देखकर यही अनुमान हो सकता है कि ये सब देवता एक ही ईश्वर के पृथक-पृथक नाम के सूचक हैं। कुछ ऐसी भी मूर्तियाँ देखने में आयी हैं, जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य का सम्मिश्रण है। उनके हाथों में धरे हुए भिन्न-भिन्न आयुधों से उनके स्वरूप का निश्चय होता है।

राजपूताना-म्यूजियम में रखी हुई एक विशाल शिला पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव की सुन्दर मूर्तियाँ--उनके वाहन सहित--बनी हुई हैं। ब्रह्माजी की प्राचीन मूर्तियों के ऊपर के एक किनारे पर विष्णु और दूसरे पर शिव की छोटी-छोटी मूर्तियाँ रहती हैं। इसी तरह विष्णु की मूर्ति के किनारों पर

ब्रह्मा और शिव की, तथा शिव की मूर्ति के दोनों ऊपरी पार्श्वों पर ब्रह्मा और विष्णु की मूर्तियाँ होती हैं। ये सब एक ही ईश्वर के इन तीन रूपों को सूचित करती हैं। उनके रूप भी अलग-अलग माने गये हैं। राजपूताना-म्यूजियम में एक सुविशाल प्राचीन शिवलिङ्ग है, जिस पर ब्रह्मा नीचे (पाताल) से ऊपर (ब्रह्माण्ड में) जाते हुए प्रदर्शित किये गये हैं और एक-एक के ऊपर दो-दो मूर्तियाँ दीख पड़ती हैं। दूसरी तरफ विष्णु नीचा मुख किये हुए ऊपर से नीचे आ रहे हैं। विष्णु की भी एक-एक के नीचे दो-दो मूर्तियाँ बनी हुई हैं। ये मूर्तियाँ अनन्त ब्रह्माण्ड रूप शिवलिङ्ग की थाह लेने के लिये ब्रह्मा का ऊपर की तरफ और विष्णु का नीचे की ओर जाना सूचित करती हैं। इससे हम यह मान सकते हैं कि शिवलिङ्ग की कल्पना वस्तुतः अनन्त ब्रह्माण्ड की सूचक है ।

जिस समय इन देवताओं की मूर्तियों की कल्पना हुई, उस समय इनकी पत्नियों की कल्पना का होना भी स्वभाविक ही था। शिव की पत्नी शिवा, उमा, पार्वती, गौरी, दुर्गा, काली आदि नामों से प्रसिद्ध हुई। राजपूताने में ऐसी बहुत-सी मूर्तियाँ मिलती हैं। जिनमें शिव नन्दी के ऊपर बैठे हुए हैं और उनकी बायीं जङ्घा पर पार्वतीजी बैठी है। इस प्रकार की तीन मूर्तियाँ राजपूताना-म्यूजियम में विद्यमान हैं। कहीं-कहीं शिव और पार्वती की नन्दी के निकट खड़ी हुई मूर्तियाँ भी मिलती हैं। शिव पार्वती के विवाह के दृश्य भी प्रस्तराङ्कित हुए हैं। इनमें आमने-सामने खड़े हुए शिव-पार्वती ऊपरी भाग में विवाह में सम्मिलित होने को आये हुए इन्द्र आदि देवता और मध्य में अग्नि के सामने विवाह कार्य सम्पादित करते हुए चतुर्मुख ब्रह्मा प्रदर्शित हैं। ऐसे दो नमूने राज-पूताना म्यूजियम में सुरक्षित हैं।

जब शिव पत्नी की कल्पना हुई, तब शिव और पार्वती दोनों का मिल-कर एक शरीर भी माना जाने लगा—दाहिना भाग शिव का और बायाँ एक स्तनसहित पार्वती का। ऐसी मूर्तियाँ 'अर्द्धनारीश्वर' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें शिव के साथ नन्दी और पार्वती के साथ उनका वाहन सिंह दिखलाया जाता है। यह कल्पना भी प्राचीन है। क्योंकि संस्कृत के सुप्रसिद्ध महाकवि बाणभट्ट के पुत्र पुलिनभट्ट ने 'कादम्बरी' के उत्तरार्द्ध के प्रारम्भ में अर्द्धनारीश्वर की स्तुति की है।* कहीं-कहीं शिव की विशालकाय तीन

---

* देहद्वयार्धघटनारचितं शरीर-
मेकं ययोरनुपलक्षितसन्धिभेदम् ।
वन्दे सुदुर्घटकथापरिशेषसिद्धयै
सृष्टेर्गुरू गिरिसुतापरमेश्वरौ तौ ॥

मुख वाली मूर्ति (त्रिमूर्ति, महेश्वर) भी पायी जाती है। उसके छः हाथ, जटायुक्त तीन सिर और तीन मुख होते हैं, जिनमें से रोता हुआ एक मुख शिव के रुद्र नाम को चरितार्थ करता है। मध्य के दो हाथों में से एक में बिजौरा और दूसरे में माला, दाहिनी ओर के दो हाथों में से एक में सर्प और दूसरे में खप्पर और बायीं ओर के हाथों में से एक में पतले दण्ड-सी कोई वस्तु और दूसरे में ढाल या काच की आकृति का कोई छोटा सा गोल पदार्थ होता है। त्रिमूर्ति वेदी के ऊपर दीवार से सटी रहती है और उसमें वक्षःस्थल से कुछ नीचे तक का ही भाग होता है। त्रिमूर्ति के सामने भूमि पर बहुधा शिवलिङ्ग होता है। ऐसी त्रिमूर्तियाँ चित्तौड़ के किले तथा सिरोही-राज्य के कई स्थानों में देखने में आयी हैं। शिव 'नटराज' कहलाते हैं और उनकी ताण्डव-नृत्य करती हुई मूर्तियाँ भी राजपूताना के कई स्थानों में देखने में आयी हैं।

इस प्रकार शिव की भिन्न-भिन्न मूर्तियाँ राजपूताने में मिलती हैं। अपनी अपनी रुचि के अनुसार शिव भक्त किसी न किसी रूप में अपने उपास्य की पूजा करते हैं।

जिस प्रकार बौद्धों ने २४ अतीत बुद्ध, २४ वर्तमान बुद्ध एवं २४ भावी बुद्ध की और जैनों ने २४ तीर्थङ्करों की तथा वैष्णवों ने २४ अवतारों की कल्पना की, उसी तरह शिव के उपासकों ने भी शिव के कई अवतारों की कल्पना की; परन्तु उन सब अवतारों की मूर्तियाँ नहीं मिलतीं। राजपूताना में शिव के लकुलीश (नकुलीश, लकुटीश) अवतार की मूर्तियाँ बहुत मिलती हैं। विश्वकर्मावतारवास्तुशास्त्रम्' नामक ग्रन्थ में लकुलीश-मूर्ति के वर्णन में लिखा है।

न (ल) कुलीशमूर्ध्वमेढ्ं पद्मासनसुसंस्थितम्।
दक्षिणे मातुलिङ्गं च वामे दण्डं प्रकीर्तितम्॥

'लकुलीश की मूर्ति ऊर्ध्वमेढ्र (ऊर्ध्वलिङ्गी) पद्मासन स्थित, दाहिने हाथ में बिजौरा और बायें हाथ में दण्ड (लकुट) लिये होती है। लकुलीश के मन्दिर कई जगह मिलते हैं। लकुलीश-सम्बन्धी देवालयों में उदयपुर-राज्य में एकलिङ्गजी के मन्दिर के पास वि० सं० १०२८ का बना हुआ और कोटा-राज्य के प्रसिद्ध कवालजी (कपालेश्वर-मन्दिर) से अनुमान एक मील पर जयपुर की सीमा में आधा गिरा हुआ एक सुविशाल मन्दिर मेरे देखने में आया। इस सम्प्रदाय के मानने वाले पाशुपत शैव कनफटे साधु होते थे। लकुलीश का अवतार कब हुआ, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता; परन्तु मथुरा से मिले हुए गुप्त संवत् ६१ (वि० सं० ४३७ = ई० स० ३८०)

के लेख से पाया जाता है कि लकुलीश के शिष्य कुशिक की परम्परा में ११वाँ आचार्य उदिताचार्य उक्त संवत् में विद्यमान था, अतः लकुलीश का प्रादुर्भाव ई० स० की दूसरी सदी के अन्त के आसपास होना अनुमान किया जा सकता है।

लकुलीश का प्राकट्य स्थान कायावरोहण, (कायारोहण कारवान, वड़ौदा राज्य में) माना गया है। उनके चार शिष्यों के नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य (लिंगपुराण २४।१३१) मिलते हैं। एकलिंगजी तथा राजपूताने के अन्य मन्दिरों के मठाधीश कुशिक के शिष्य-परम्परा में थे। ये साधु कान फड़वाते, सिर पर जटाजूट रखते और शरीर पर भस्म लगाते थे। ये विवाह नहीं करते थे; किन्तु ये चेले मूंडते थे।

राजपूताना के शिव भक्त राजा अपने इष्टदेव शिव के वड़े-वड़े मन्दिर वनवाते थे और उनके साथ मठ भी होते थे। ये मठ वहुधा लकुलीश-सम्प्रदाय के कनफटे साधुओं के अधिकार में होते थे। वे लोग राजाओं के गुरु माने जाते थे। एकलिंगजी तथा मेनाल (मेवाड़) आदि के मठाधीश भी यही लोग थे। इन मन्दिरों के द्वार पर लकुलीश मूर्ति रहती है। इन मन्दिरों और मठों के निर्वाह के लिए वड़ी-वड़ी जागीरें दी जाती थी। वर्तमान काल के 'नाथ' लोग विशेषतः उसी सम्प्रदाय से निकले हुए हैं; परन्तु अव वे लोग लकुलीश का नाम तक नहीं जानते।°

२—चित्तौड़ का कीर्तिस्तम्भ

कीर्तिस्तम्भ किसी घटना की कीर्ति को चिरस्थाई वनाने के लिये वनाये जाते हैं। जैसे दिल्ली से तेरह मिल दूर महरोली गांव में कुतुवुद्दीन ऐवक की प्रसिद्ध कुतुव की लाट है, वैसे ही चित्तौड़ के किले पर महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) का वनाया हुआ प्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ भारत भर में हिन्दु जाति की कीर्ति का एक मात्र अलौकिक स्तम्भ है। महाराणा कुंभकर्ण मेवाड़ के सीसोदिया राजाओं में सवसे पहला प्रवल राजा हुआ। उसने अपनी वीरता से दिल्ली और गुजरात के सुलतानों का कितना ही प्रदेश अपने आधीन किया, जिस पर उन्होंने 'हिन्दु सुलतान'[1] का खिताव

° 'कल्याण' के 'शिवांक' से प्रतिमुद्रित।

1 विपमतमाभंग सारंगपुर-नागपुरगागरणनराणक अयजमेरू मंडोरमंडलकर वूंदीखाटूचाटसूजनादिनानामहादुर्गलीलामात्र ग्रहणप्रमाणितजितकाशित्वाभिमानस्य·······म्लेच्छ महीपालव्यालचक्रवाल विदलनविहंगमेंद्र-

देकर उसे हिन्दू बादशाह स्वीकार किया। उसने कई बार गुजरात के सुलतानों को हराया, नागौर को विजय किया। गुजरात और मालवे के सम्मिलित सैन्य को पराजित किया और राजपूताने का अधिक अंश एवं मांडू, गुजरात और दिल्ली के राज्यों का कुछ अंश छीन कर मेवाड़ को महाराज्य बना दिया। जैसा वह वीर एवं विजयी था, वैसा ही वह विद्यानुरागी भी था। प्राचीन शिलालेखों से पाया जाता है कि वह विद्याव्यसनी, विद्वानों का सम्मानकर्ता, साहित्यप्रेमी, संगीत का आचार्य, नाटचकला में कुशल, कवियों का शिरोमणि, अनेक ग्रंथों का रचयिता, वेद, स्मृति, दर्शन, उपनिषद् और व्याकरण आदि का विद्वान संस्कृतादि भाषाओं का ज्ञाता[1] था। उसे शिल्प से भी बहुत अनुराग था, जिनमें से मुख्य और उल्लेखनीय चितौड़ का गढ़ और वहाँ की रथ पद्धति (सड़क), वहाँ का प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ, कुंभ स्वामी का मन्दिर, एकलिङ्गजी का मन्दिर और उससे पूर्व का कुंभमण्डप, कुंभलगढ़ का दुर्ग, वहाँ का कुंभस्वामी का देवालय, आबू पर अचलगढ़ का क़िला तथा कुंभ स्वामी का मन्दिर आदि अब तक विद्यमान हैं। यदि इन सबका वर्णन किया जावे तो एक पुस्तक बन जावे। हम आज 'मनोरमा' के पाठकों के मनोरंजन के लिए उनमें से केवल कीर्ति स्तम्भ का ही यहाँ वर्णन करते हैं।

महाराणा कुंभा के पिता मोकल की, चाचा व मेरा नामक पुरुषों ने

स्य······प्रबलपराक्रमाक्रान्त ढिल्लीमंडलगुर्जरत्रा सुरत्राणदत्तातपत्रप्रथितहिन्दुसुरत्राण विरुदस्य·······राणा श्री कुंभकर्ण सर्वोर्वीपति सार्वभौमस्य········।

राणपुर के जैनमंदिर का शिलालेख; एन्युअल् रिपोर्ट ऑफ़ दी आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, ई० स० १९०८ पृ० २१४।

1 वेदा यन्मौलिरत्नं स्मृतिविहितमतं सर्वदा कंठ भूषा
मीमांसे कुंडलेद्वेहृदि भरतमुनिव्याहृतं हारवल्ली।
सर्वांगीणं प्रकृष्टं कवचमपि परेराजनीति प्रयोगाः
सार्वज्ञंविभ्र दुच्चैरगणितगुणभूर्भासते कुंभभूपः ॥१७२॥
अष्टव्याकरणी (?) विकास्युपनिपतस्पष्टाष्टदंष्टोत्कटः
षट्तर्की (?) विकटोक्तिमुक्ति विसरत्प्रस्फार गुंजारवः।
सिद्धान्तोद्धतकान नैक वसतिः साहित्यभूक्रीडनो'
गर्ज··दिगुणान्विदार्य··········प्रज्ञास्फुरत्केसरी ॥१७३॥

(एकलिंग महात्म्य; राजवर्णन अध्याय)

हत्या की थी, उसमें महपा (महीपाल) पंवार भी शामिल था। कुंभा ने राज्य सिंहासन पर आरूढ़ होते ही चाचा व मेरा पर सैन्य भेजकर उन्हें मरवा डाला, परन्तु महपा पंवार वहाँ से भाग कर मांडू के सुलतान महमूद खिल्जी (प्रथम) की शरण में चला गया। महाराणा ने सुलतान को महपा को सुपुर्द कर देने के लिए लिखा, जिसका उसने यह उत्तर दिया कि मैं अपने शरणागत को किस तरह सौंप सकता हूँ ? यदि आपकी युद्ध करने की इच्छा हो तो मैं भी तैयार हूँ। यह उत्तर पाकर महाराणा ने मालवे पर चढ़ाई करदी। इस चढ़ाई में महाराणा की सेना में १,००,००० सवार और १,४०० हाथी थे। इधर से सुल्तान भी लड़ने को चला। वि० सं० १४९४ (ई० स० १४३७) में सारंगपुर के पास दोनों सेनाओं का मुक़ावला होकर घोर युद्ध हुआ, जिसमें महमूद हार कर मांडू को भाग गया। कुंभकर्ण ने सारंगपुर में असंख्य मुसलमान स्त्रियों को क़ैद किया। महमूद का महामद छुड़वाया, उस नगर को जलाया और मालव सैन्य का संहार किया[1]। इस विजय के उपलक्ष्य में महाराणा ने चितौड़ पर यह विशाल कीर्तिस्तम्भ वनाया। यह कीर्तिस्तम्भ चितौड़गढ़ पर के प्रसिद्ध गोमुख नामक जलाशय के तट स्थित समाधीश्वर के मन्दिर से कुछ ही दूर अनुमानतः १२ फुट ऊंची, ४२ फुट लम्बी और उतनी ही चौड़ी वेदी पर खड़ा हुआ है। यह आकृति में चौकोर है और इसके प्रत्येक पार्श्व की लम्बाई ३५ फुट है। इसमें कुल नौ मंजिल हैं और सात मंजिलों के चारों ओर एक-एक झरोखा वना हुआ है, जिससे स्तम्भ के भीतर पर्याप्त प्रकाश रहता है। मध्य का भाग (गर्भभाग) कुतुवमिनार की भांति गोल नहीं है, किन्तु चतुरस्र है और अन्दर स्थान भी इतना पर्याप्त है कि प्रत्येक मंजिल में ३०-४० आदमी खड़े रहकर भीतर की मूर्तियां आदि का निरक्षण कर सकते हैं। प्रत्येक मंजिल के अनुमानतः तीन चतुर्थांश भाग में परिक्रमा है, जिसके अंत से ऊपर की मंजिल में जाने के लिए वहुधा सीढ़ियां वनी

---

1 त्यक्ता दीनादीनदीनाधिनाथा दीना बद्धा येन सारंगपुर्यां।
योषाः प्रौढाः पारसीकाधिपानां ता संख्यातुं नैव शक्नोतिकोपी ॥२६८॥
महोमदो युक्ततरोन चैपः स्वस्वामिघातेन धनार्जनत्वे।
इतीव सारंगपुरं विलोड्य महंमदं त्याजितवान्महंमदं ॥२६९॥
''एतद्दग्धपुरान्तिवाडवमसौ यन्मालवांभोनिधि।
क्षोणीशःपिवति स्मखड्ग चुलुकस्तस्मादगस्त्यः स्फुटं ॥२७०॥
(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति अप्रकाशित)

हुई हैं। सर्वोच्च भाग पर एक गुंबज बना हुआ है, जहां का प्रत्येक पार्श्व १७ फुट लम्बा है। वेदी के ऊपर के भाग से गुंबज तक की ऊंचाई १२२ फुट है। सारे स्तम्भ पर क्या बाहर, क्या भीतर सर्वत्र सुन्दर खुदाई का काम, मूर्तियां बनी हुई हैं।

इसका द्वार दक्षिणाभिमुख है। द्वार में प्रवेश करते ही सामने जनार्दन की मूर्तियां दृष्टि गोचर होती है। वहां से दो सीढ़ी चढ़ कर प्रथम मंजिल की परिक्रमा में जाने पर क्रमशः अनंत, रुद्र और ब्रह्मा की मूर्तियां तीनों पार्श्वों के मध्य की ताकों में बनी है। ब्रह्मा के निकट से दूसरे मंजिल में जाने की सीढ़ियां बनी हैं। दूसरी मंजिल की तीनों पार्श्वों के मध्य की ताकों में हरिहर (आधा शरीर विष्णु का और आधा शिवका), अर्द्धनारीश्वर (आधा शरीर शिवका और आधा पार्वती का) और हरिहरपितामह (विष्णु, शिव और ब्रह्मा तीनों देवताओं की सम्मिलित एक मूर्ति) की मूर्तियां मुख्य हैं। इनके मध्य के रिक्त स्थानों में क्रमशः अग्नि, यम, भैरव, वरुण वायु, धनद, ईशान और इन्द्र इन दिक्पालों की मूर्तियां बनाई गई है। तीसरी मंजिल के तीनों पार्श्वो के मुख्य ताकों में विरंचि, जयन्त, नारायण और चन्द्रावर्क पितामह की मुख्य मूर्तियां हैं। चौथी मंजिल नीचे लिखी हुई मूर्तियों से भरी हुई है—त्रिखण्डा, तोतला, त्रिपुरालक्ष्मी, नन्दा क्षेमकरी, सर्व्वती, महारंडा, भ्रामणी, सर्वमंगला, रेवती, हरिसिद्धि, लीला, सुलीला, लीलांगी, ललिता, लीलावती, उमा, पार्वती, गौरी, हिंगुलाज श्री · · · · ·,[1] हिमवती आदि देवियों; वसंत, शिशिर, हेमंत, शरद, वर्षा और ग्रीष्म, ऋतुओं, गङ्गा, यमुना और सरस्वती नदियां तथा गंधर्व, विश्वकर्मा और कार्तिकेय की मूर्तियां बनी है। पांचवी मंजिल के तीनों पार्श्वो के मध्य की ताकों में क्रमशः लक्ष्मीनारायण, उमा महेश्वर और ब्रह्मा-सावित्री की युगल मूर्तियां हैं। इनके मध्य के रिक्त स्थानों में परशु, त्रिशूल, खड्ग शक्ति, कुंत, तोमर, तूण, शक्तिशाल, भिल्ल, चक्र, शार्ङ्गधर, हल, भिंडि, डण्ड, मुद्गर, पाशिका, कणक, कर्तरी, छुरिका, करवाल, फरिका, फलक, शंकु, अंकुश, दुःस्फोट, भुशुंडी, पट्टिश, अर्गला, फारिका, मृणाल, डमरू, कमल, आदर्श शंकु और खट्वाङ्ग नामक शस्त्रों की मूर्तियां बनी हैं। इनके नीचे मूर्तियों की एक और पंक्ति है, जिसमें रुद्रलिंग (शिवलिंग), कर्पुरमंजरी, शय्या,

---

1 जिन मूर्तियों के नाम का अंश जाता रहा है, उनके स्थान में · · · चिन्ह किया गया है।

संभोग, शिल्पी[1] (कीर्तिस्तम्भ बनाने वाला) मृदंगिनी, नटी, शिक्षाकार, वांधिक पांच (नाटक के), हनुमान, सीता, राम लक्ष्मण सुग्रीव, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, नकुल, द्रौपदी, सहदेव, भिल्ल, दंभ, भैरव, वैताल, भूत, कुलटा, तरुणी, स्नातवनिता, मालिका, सुवा, अक्षमाला और कमंडलु की मूर्तियां हैं। छःठी मंजिल के तीनों पार्श्वों के मुख्य ताकों में क्रमशः महा सरस्वती, महालक्ष्मी, और महाकाली की मूर्तियां हैं। बीच के खाली स्थानों में भृंगीगण, तपस्वी (कई जगह कौने में) याम्यांशक्ति, आग्नेय-शक्ति, नैणिक सेवक, भैरव, नट, हनुमत, लक्ष्मण, चमरहस्ता, व्यजनिनी, सेविका (कई स्थानों पर) कुंभहस्ता, सावित्री, ब्रह्मा, गायत्री, गणधर, गणी, गलहार, शिवलिंग, पांडुरोगण, वारुणी, भैरवी, महाकाल, नर्तकी, सेवक, वरुण, भैरव गणेश, कार्तिकेय, शिव पार्वती, सितोगण, असितोगण, विजया, जया, नट, नर्तकी (कई जगह) श्रुतिधर, वांशिक, मार्दगिकं, कौवैरी, वायवी, शिवपरिचारिका, पूजक, शिवभक्त, गायक, नंदीगण, भिल्ल, किरात रुद्र, शवरी रूप, भिल्ली आदि की प्रतिमाएं बनी हैं। सातवीं मंजिल में की सीढ़ियों के ऊपर के भाग में किन्नर युग्म बना हैं। इस मंजिल में वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, वलदेव और वुद्ध आदि विष्णु के अवतारों की मूर्तियां हैं। यहां से सीढ़ियों के द्वारा आठवीं मंजिल पर पहुँचते हैं। पाषाण की सीढ़ियां, जो प्रत्येक खंड की परिक्रमा के अन्त से आरम्भ होकर ऊपर की मंजिल में जाती हैं, यहां समाप्त होती हैं। आठवीं मंजिल में मध्य का भाग (गर्भभाग) न होने से वहां कोई मूर्ति-नहीं है और न झरोखे हैं, यहां चारों स्तम्भ बने हुए हैं और बाकी हिस्सा खुला हुआ है। यहां से लकड़ी की एक सीढ़ी लगी हुई है, जिसके द्वारा दर्शक नवीं मंजिल में पहुंच सकते हैं और जिस पर गुवज[2]

---

1 शिल्पकारों की चार मूर्तियां खुदी हुई है, जिनमें से एक जइता की मूर्ति कुर्सी पर वैठी हुई है और उसके पास ही तीन खड़ी हुई मूर्तियां उसके पुत्रों की है, जिनके नाम नापा-पामा और पुंजा दिए हुए हैं। यह चारों इस स्तम्भ के बनवाने वाले मुख्य शिल्पी थे; क्योंकि 'शिल्पिनः' खोद कर फिर प्रत्येक के नीचे उनके नाम खुदे हैं। दूसरी मंजिल वाले लेख में भी इनमें से तीन नाम दिए हुए हैं।

2 यह गुंवज उस पर विजली गिरने से गिर गया था, जिससे वि० सं० १९११ में महाराणा स्वरूपसिंह ने किसी प्राचीन मंदिर का गुम्बज उखड़वा कर उसे यहां लगवा दिया, जिसमें उसमें कमलों आदि की पंक्ति

वना है । गुँवज के नीचे के भाग में कई शिलाओं पर खुदी हुई वि० सं० १५१७ मार्गशीर्षवदि ५ सोमवार की प्रशस्ति लगी हुई थी, जिसकी अव केवल दो शिलाएं पहली और अन्त के पूर्व की विद्यमान हैं और वे भी कुछ विगड़ी हुई दशा में हैं। उनमें ४८ श्लोक वचे हैं । इस प्रशस्ति की वि० सं० १७३५ फाल्गुनवदि ७ को किसी पंडित ने पुस्तकाकार नकल की थी, जो हमें मिल गई है । उससे पाया जाता है कि पहले ४० श्लोकों में वप्प (वापा) वंशी महाराणा हंमीर से महाराणा मोकल तक का वर्णन हैं । तदनन्तर फिर एक से श्लोक का आरम्भ कर १८७ श्लोकों में प्रशस्तिकार तथा उसके वंश का परिचय है । उक्त लिपि के लिखे जाने के समय भी कुछ शिलाएं नष्ट हो चुकी थी, जिससे कुंभा के वर्णन के श्लोक ४३—१२४ तक जाते रहे, तिस पर भी जो कुछ अंश प्रशस्ति में कुम्भकर्ण के युद्धों, का शिल्पकार्यों, विद्या सम्बन्धी कार्यो आदि का वहुत कुछ वर्णन मिलता है, जो अन्य साधनों से ज्ञात नहीं हो सकता ।

ऊपर लिखी हुई समस्त मूर्तियों के ऊपर या नीचे उनके नाम भी खुदे हुए हैं; जिससे हिन्दूओं के पौराणिक अनेक देवताओं की मूर्तियों का ज्ञान संपादन करने वालों के लिए यह अद्वितीय साधन है । गणपति आदि की मूर्तियां वाहर की तरफ खुदी हुई हैं। भारत भर के तमाम अजायवघरों में भी इनमें से केवल थोड़ी ही मूर्तियां सुरक्षित हैं। प्रतिमा परिचय के इस अलभ्य संग्रह को देखकर भारतवर्ष के पुरातत्व विभाग ने इन सव मूर्तियों के फोटो का एक ग्रन्थ प्रकाशित करने का विचार किया और उदयपुर राज्य ने उसके लिए पर्याप्त सहायता भी देना स्वीकार

वरावर नहीं जमी । यह त्रुटि वास्तव में खटकती है । †

सम्पादकीय-टिप्पण

† इस कीर्तिस्तम्भ की दीवारों में दरारें होकर ऊपरी भाग झुक गया था और ऊपर की मंजिल के गिर जाने का भय था । अतएव उदयपुर के महाराणा फतहसिंह के राज्य काल के पिछले वर्षो में इसके जीर्णोद्धार का कार्य आरम्भ होकर वर्त्तमान महाराणा भूपालसिंहजी के शासन काल में समाप्त हुआ, जिससे महाराणा कुम्भा की कीर्ति रक्षित होगई है, एवं चित्तौड़ का दुर्ग देखने वाले यात्रियों को वह उक्त महाराणा की शिल्पकला-प्रियता का आदर्श वतलाता है । इस वार के जीर्णोद्धार में ऐसी भूलें नहीं की गई है, जिनका श्री० ओझाजी ने उल्लेख किया है ।

किया, परन्तु उन सबका फोटो लेना असम्भव जानकर उक्त विभाग ने इन तमाम मूर्तियों के चित्र तैयार करवा लिए हैं, जिनके पुस्तकाकार प्रकाशित होने पर भारत के विद्वानों के लिए पौराणिक मूर्तियों की अपूर्व सामग्री उपस्थित होजायगी। मैंने कई वार इस कीर्तिस्तम्भ में बैठकर प्राचीन मूर्तियों के सम्बन्ध की अपनी शङ्काएँ निवृत्त की हैं।

इसकी दूसरी मंजिल में उत्तर या पूर्व की जाली पर दो पंक्तियों का एक लेख खुदा हुआ है, जिसका आशय यह है कि वि० सं० १४९९ फाल्गुनसुदि २ महाराजाधिराज राणा श्री कुंभकर्ण के विजय राज्य के समय सूत्रधार जैता और उसके पुत्र नापा और पूंजा श्री समिद्धेश्वर को प्रणाम करते हैं। इस लेख से निश्चित है कि नीचे की वेदी और कीर्तिस्तम्भ की दो मंजिलें उक्त संवत् तक बन चुकी थी। अतएव उसका आरम्भ वि० सं० १४९५ या १४९६ में हुआ होगा। उक्त स्तम्भ की समाप्ति वि० सं० १५०५ माघसुदि १० को हुई थी[1]।

भारतवर्ष में इसके बराबर ऊँचा कोई दूसरा स्तम्भ या मिनार नहीं है। इस स्तम्भ के भीतर और बाहरी हिस्से में सचित्र सुन्दर खुदाई का काम है और इसके महत्त्व का इसके साक्षात् देखे बिना अनुमान ही नहीं किया जा सकता। इसके बनाने में कई करोड़ रुपये व्यय हुए होंगे। इतिहास प्रेमियों, भारत के प्राचीन शिल्प के अनुरागियों और हिन्दू जाति के गौरव का अभिमान रखने वालों से हमारा सविनय अनुरोध है कि वे एक वार चित्तोड़ की वीर भूमि में पदार्पण कर राजपूत जाति के गौरव के इस एक मात्र अवशेष महाराणा कुंभा के अपूर्व अश्रुत और दर्शनीय स्मारक-कीर्तिस्तम्भ को देखकर जीवन सफल करें।

(मनोरमा, काशी वर्ष ३, भाग २, संख्या ५, पृ० ५५४–५८ सम्मेलनांक-फरवरी १९२७, वि० सं० १९८३)।

---

1 पुण्येपंचदशेशते व्ययगते पंचाधिकेवत्सरे।
माघेमासिवलक्षपक्ष दशमी देवेज्यपुष्यागमे।
कीर्तिस्तम्भमकारयन्नरपतिः श्री चित्रकूटा चले
नानानिर्मित निर्जरावतरणं मेरोर्हसंतंश्रियं ॥१८५॥
(कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति अप्रकाशित)

प्रकरण चौथा

विविध

१– यूनानी राजदूत और वैष्णव धर्म

प्राचीन शिलालेख और पुस्तक आदि से हिन्दुस्तान में बसने वाले प्राचीन काल के यूनानियों (ग्रीक) लोगों में से कितने एक के बौद्ध धर्म ग्रहण करने के उदाहरण तो मिल जाते हैं; परन्तु भारतवर्ष के प्राचीन शोध के अध्यक्ष मि० मार्शल साहब के यत्न से गत वर्ष एक शिलालेख मिला, जिससे पाया जाता है कि तक्षशिला के यूनानी राजा ऐंटि आल्किडस (Antialkidas) का दूत हेलिआंडारस् (Heliodors) वैष्णव धर्म के भागवत सम्प्रदाय का अनुयायी था। उस लेख के भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिए विशेष उपयोगी होने के कारण हम इसका परिचय कराते हैं।

सेंट्रल इंडिया के ग्वालियर राज्य के भेलसा जिले का मुख्य स्थान भेलसा (भिलसा) है जो बौद्धों के पवित्र प्राचीन स्तूपों के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ के स्तूपों के विषय में जनरल कनिंग्हाम साहिब ने 'भिलसा टोप्स' नाम का एक बहुमूल्य ग्रंथ प्रकाशित किया है। इसी भेलसा से थोड़ी दूर पर बेस नगर नाम का एक छोटा सा गांव है, जिसके निकट दूर-दूर तक प्राचीन काल के इतिहास प्रसिद्ध विदिशा नगरी के खंडहर हैं, जिनकी छानबीन जनरल कनिंग्हाम साहब ने सन् १८७७ ईस्वी में की, जिसका विस्तृत वर्णन उन्होंने अपनी प्रकट की हुई 'आर्किआलॉजिकल् सर्वे' रिपोर्ट की दूसरी जिल्द (पृ० ३६–४६) में किया है। वहां पर उन्होंने बेतवा और बेस नदियों के संगम के पास प्राचीन एक विशाल स्तम्भ का पता लगाया, जिसका सुन्दर चित्र ऊंचाई के नाप के साथ उक्त रिपोर्ट की प्लेट १४ वीं (प्रथम चित्र) में उन्होंने दिया है। वह स्तम्भ वहां पर 'खम्भा बाबा के नाम से प्रसिद्ध है और उसको पवित्र समझते हैं। कई यात्री उसके लिए वहां जाते हैं उसके आगे जानवरों का बलिदान करते हैं और उस पर सिंदूर चढ़ाते हैं। जिस समय कनिंग्हाम साहब ने इस स्तम्भ की जांच की, उस समय सारे स्तम्भ पर सिंदूर का गहरा रंग जमा हुआ था और लोग उसको पवित्र मान कर पूजते थे, इस कारण सिंदूर को उखाड़ कर पूरी जांच करना संभव न हुआ। उसकी ऐसी स्थिति पर से भी उन्होंने यह अनुमान किया कि वह गुप्तों के

समय का होना चाहिए और सिंदूर के नीचे उसके बनाने वाले का नाम समय आदि प्रकट करने वाला लेख होना चाहिये; परन्तु जब वहां के पुजारियों ने उनसे यह कहा कि उस पर कोई लेख नहीं है, तब वे निराश होकर वहां से लौटे। दैवयोग से वह सिंदूर का रंग अधिक मोटा होने के कारण कुछ वर्ष हुए स्वयं उखड़ गया और पत्थर निकल आया, परन्तु लोग फिर उस पर सिंदूर लगाते ही रहे। गत वर्ष के जनवरी मास में मिस्टर मार्शल साहब वहाँ पर पहुँचे, उस समय ग्वालियर राज्य के इंजीनियर मि० लेक साहब ने उस स्तम्भ के हिस्से पर अक्षरों के निशान देखे और थोड़ा सा सिंदूर हटाते ही अक्षर स्पष्ट दिखलाई दिये। फिर मि० मार्शल साहब ने उस स्तम्भ को साफ करवाया तो उस पर दो लेख निकल आये, जिनके लिए वे सारे शिक्षित समाज के धन्यवाद के भागी हैं। ये लेख गुप्तों के समय के नहीं, किन्तु उससे बहुत पहले के अर्थात् ईस्वी सन् के पूर्व की दूसरी शताब्दी की प्राचीन लिपि में खुदे हुए हैं, जो मौर्य वंशी राजा अशोक के शिलालेखों की लिपि से बहुत ही मिलती है। इन दो लेखों में हमारा यह लेख है। मिस्टर मार्शल साहब ने उस लेख की छाप तैयार कर एक तो डॉक्टर ब्लाक (Dr. Thes Block) के पास भेजी तथा दूसरी छाप तथा उसका फोटो डॉ० फ्लीट साहब के पास इंग्लैंड भेजा। डॉ० ब्लाक साहब का तैयार किया हुआ उक्त लेख का रोमन अक्षरांतर तथा अंग्रेजी भाषान्तर मि० मार्शल साहब ने "भारतीय प्राचीन शोधसम्बन्धी टिप्पणियां (Notes on Archacological exploration on India, 1908-9) नामक अपने लेख में छपवाया (रायल एशियाटिक सोसाइटी के सन् १९०९ जर्नल की अक्टोबर की संख्या में, पृ० १०५५-५६) और साथ ही उसका फोटो भी प्रकट किया। डॉ० फ्लीट साहब ने भी अपना तैयार किया हुआ, उसका रोमन अक्षरान्तर तथा अंग्रेजी अनुवाद सहित उसी संख्या (पृ०१०७७-९२)में छपवाया।। फिर मि० देवदत्त भंडारकर ने उक्त छपे हुए फोटो पर से उसका रोमन अक्षरान्तर तथा अंग्रेजी भाषान्तर बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल (अंक २३, (ठीक-ठीक पाठ)पृ० १०३) में प्रकाशित किया। परन्तु इन तीनों अक्षरान्तरों में एक में भी अंतिम पंक्ति का फोटो तथा छाप में उक्त पंक्ति के कुछ अक्षरों का स्पष्ट न होना ही था। फिर इस वर्ष में मि० लेक साहब ने उक्त स्तंभ को साफ करवा कर उस लेख की एक उत्तम छाप प्रोफेसर वेनिस साहब के पास भेजी जिसमें अंतिम पंक्ति के अक्षर स्पष्ट पढ़े गये और सब कठिनाई दूर हो गई।

उक्त लेख का नागरी अक्षरान्तर तथा भाषान्तर नीचे लिखा जाता है—

अक्षरान्तर

(१) देव देवस वा [सु] देवस गरुड़ ध्वजे अयं
(२) कारितोइ [अ] होलिओ दोरेण भाग–
(३) वेतन दिअस पुत्रेण तखसिला केन
(४) योन इतेन आगतेन महाराज स
(५) अंतिलि कितस उपंता सकासं रजो
(६) कासी पुत्तस [भा] ग भद्रस त्रातारस
(७) वसेनस चतुरसेन राजेन वधमानस

भाषान्तर

"देवताओं के देवता वासुदेव का यह गरुड़ ध्वज तक्षशिला के रहने वाले (Dion) के पुत्र भागवत, हेलिओदोर (Heliodors) नामक यवनदूत ने यहां पर बनवाया, (जो) महाराज अंतलिकित (Antialkidas) के यहां से त्रातार राजा काशी पुत्र भागभद्र के पास (उसके) प्रवर्द्धमान राज्य वर्ष १४ वें में आया था।"

टिप्पणी

भाषा— इस लेख की भाषा प्राकृत है, परन्तु संस्कृत से बहुत ही मिलती हुई है।

हिन्दुस्तान के यूनानी (ग्रीक) राजाओं के सिक्कों पर के खरोष्ट्री (गांधार) लिपि के लेखों की भाषा भी इसी प्रकार की है।

गरुड़ध्वज—यह स्तम्भ गरुड़ ध्वज ही था। विष्णु मन्दिरों में सामने कभी-कभी बड़ा स्तम्भ बनाकर उसके सिर पर गरुड़ की मूर्ति बिठलाते हैं। ऐसे स्तम्भों को गरुड़ध्वज कहते हैं। गुप्त राजाओं के सिक्कों में ऐसे स्तम्भों के चिन्ह पाये जाते हैं।

तक्षशिला—पंजाब का एक प्राचीन नगर, जिसका खण्डहर सिंधु और झेलम नदियों के बीच शाह ढेरी के पास होना जनरल कनिंग्हाम प्रकट करते हैं। सिकन्दर बादशाह इस नगर में रहा था। यहां के राजा ने हिन्दू राजाओं में सबसे पहले बिना लड़े सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी। पीछे से इसी नगर में यूनानी राजाओं की राजधानी रही थी और ग्रीक राजा ऐंटिआल्कि की राजधानी भी जान पड़ती है, यही थी।

दीअ—यह यूनानी नाम डीऑन (Dion) का सूचक है। जब एक भाषा के नाम दूसरी भाषा में लिखे जाते हैं, उस समय उनमें कुछ परिवर्तन हो ही जाता है। अशोक के लेखों में ऐंटिओकस के स्थान पर अंतियक, अंतियोक या अंतियोग लिखा मिलता है। ऐसे ही टॉलमी के तुरमाम ऐंटिगानस्ट को अंतकिनि या अंतोकिनस, मेगस को मक या मग और अलेकजैन्डर को अलिकसन्दर लिखा है। मुसलमानों के समय के संस्कृत लेखों ने भी अमीर के स्थान पर हमीर और सुलतान के स्थान पर सुरत्राण लिखा है और अब भी ऐसा होता है।

भागवत—वैष्णवों के अनेक सम्प्रदायों में सबसे प्राचीन भागवत सम्प्रदाय, जिसके अनुयायी भगवद्भक्ति के कारण भागवत् कहलाते हैं। वे वेद विहित यज्ञादि कर्मों को गौण भगवद् भक्ति को ही मुख्य मानते हैं।

हेलिओदोर—यह यूनानी (ग्रीक) नाम 'हेलिऑडारस के वास्ते लिखा गया है।

अंतलिकित—यह यूनानी नाम 'ऐंटि आल्किडस' का प्राकृत रूप है। ऐंटीआल्किडस पंजाब का राजा था और वह ई० स० से पूर्व की दूसरी शताब्दी में हुआ। उसकी राजधानी तक्षशिला थी। हेलिऑडारस इसी का दूत था, जो इसका भेजा हुआ विदिशा के राजा भागभद्र के पास गया था। इस राजा के कई चांदी के सिक्के मिले हैं। जिनके एक तरफ प्राचीन ग्रीक लिपि में ग्रीक भाषा का लेख है और दूसरी ओर खरोष्ट्री लिपि में "महरजस जयधरस अंति अलिकिदस" लेख है। यूनान के बादशाह अलेकजैन्डर (सिकन्दर) ने ई० स० से ३२६ वर्ष पहले हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर पंजाब तथा सिन्ध का बहुत कुछ भाग अपने अधीन किया था। उस पर तो यूनानियों का अधिकार नौ वर्ष के भीतर ही उठ गया; परन्तु हिन्दुकुश से उत्तर में बाक्ट्रिया का यूनानी राज्य (जिसे सिकन्दर ने ही कायम किया था) दृढ़ हो गया था। वहां के राजा युथिडिमस के पुत्र डिमिट्रिअस ने ईसा के लगभग १९० वर्ष पहले हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर अफगानिस्तान, पंजाब आदि पर फिर यूनानियों का राज्य जमा दिया, जो कई सौ वर्ष तक बना रहा।

इस समय के पच्चीस से अधिक राजाओं के सिक्के मिले हैं, जिन पर के लेखों से उनके नाम तथा उपाधि आदि का पता लगता है। इन राजाओं में से एक का भी नाम पहले किसी शिलालेख में नहीं मिला था। बेस नगर का लेख ही पहला लेख है, जिसमें पंजाब के यूनानी राजा का नाम मिलता है।

त्रातार—(संस्कृत त्रात् से बना है) इसका अर्थ 'रक्षक' होता है, परन्तु यहां पर यह उक्त अर्थ का सूचक नहीं है; किन्तु उपाधि है। यह उपाधि किसी हिन्दु राजा के नाम के साथ लगी हुई पहले नहीं मिली, परन्तु यूनानी राजा डायामिडस, एयालोडांटस, स्टैये, मिनेंडर, जोइलस, डायोनिअस, हिपस्ट्रिटस, हर्मिअस् आदि के सिक्कों पर प्राकृत लेखों में मिलती है और यूनानी उपाधि 'सोटर' (Soter) का प्राकृत अनुवाद है। उपर्युक्त लेख एक यूनानी राजदूत का खुदवाया हुआ होने से उसमें राजा की उपाधि यूनानी राजाओं की सी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं; परन्तु वह उपाधि बहुत बड़े राजाओं की थी, जिससे अनुमान होता है कि भागभद्र भी जिसके नाम से स्तम्भ लगा हुआ है, प्रबल राजा था।

काशीपुत्र—राजा भागभद्र के नाम के साथ उसकी माता काशी के नाम का उल्लेख किया गया है। प्राचीन लेखों में कई राजाओं के नामों के साथ उनकी माताओं के नाम लिखे मिलते है, जिसका कारण कदाचित यह हो कि उस समय के राजाओं के अनेक रानियां होती थीं, इससे कौन सी राणी के विशेष गुण या योग्यता के कारण पुत्र के नाम के साथ उसके नाम का भी उल्लेख किया जाता रहा हो। आंध्रभृत्य (सातवाहन) वंश के राजा शात कर्ण को गौतमी पुत्र, पुलुभाई को वसिष्ठ पुत्र, शकस को माढरी पुत्र लिखा है। ऐसे ही अनेक उदाहरण सिक्कों तथा लेखों में मिलते हैं। संस्कृत शिक्षा में प्रसिद्ध वैयाकरणिक पाणिनि को दाक्षि पुत्र बतलाया है और प्रसिद्ध कवि भवभूति अपने को (जातुकर्णी पुत्र) लिखता है।

भागभद्र यह राजा किस वंश का था इस विषय में कुछ भी लिखा नहीं है। इसकी राजधानी विदिशा नगरी होना संभव है। महाकवि कालिदास के रचे हुए 'मालविकाग्निमित्र नाटक' से पाया जाता है कि शुंगवंश के संस्थापक राजा पुष्यमित्र के समय उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा नगरी में राज करता

३०

था। भागभद्र का समय पुष्पमित्र के समय से बहुत दूर नहीं हो सकता। अतएव यह संभव है कि यह भी उसी वंश से सम्बन्ध रखता हो।

डॉक्टर ग्रियर्सन साहब ने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के सन् १९०७ के जर्नल में (पृ० ३११-३६) एक लेख* लिख कर यह बतलाने का यत्न किया था, कि "इसाई लोगों की एक बस्ती प्राचीन काल में मद्रास हाते में स्थापित हुई थी, जहां के इसाईयों द्वारा हिन्दुओं में भक्ति मार्ग चालू हुआ है और दक्षिण से सारे हिन्दुस्तान में फैल गया हो" परन्तु उपर्युक्त बेसनगर के लेख से जो इसाई धर्म के प्रादुर्भाव से करीब दो शताब्दी पूर्वका है, स्पष्ट पाया जाता है कि उस समय भी हिन्दुस्तान में भक्ति मार्ग को मानने वाली भागवत सम्प्रदाय विद्यमान था और यूनानी लोग भी उसके अनुयायी बनते थे।

मर्यादा प्रयाग, दिसम्बर १९१०।

२—माघ कवि का समय

भारतवर्ष का प्राचीन लिखित इतिहास न होने के कारण यहां के अनेक विद्वानों आदि की जीवन-लीला के सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं जान सकते। इतना ही नहीं, किन्तु उनका समय भी अज्ञात ही है। हमारे यहां के विद्वान् निरभिमानी और निःस्वार्थी होने के कारण अपने ग्रंथों में बहुधा अपना नाम नही दिया करते थे; अपनी जीवन-लीला का वर्णन करना वे आडम्बर समझते थे। कभी-कभी किसी ने अपने वंश का कुछ परिचय या अपने ग्रंथ की समाप्ति का समय भी दिया है, परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

माघ कवि का प्रसिद्ध ग्रंथ "शिशुपाल-वध" काव्य संस्कृत के प्रेमी बड़े उत्साह से पढ़ते हैं; क्योंकि यह प्रसिद्धि चली आती है कि कालिदास के ग्रंथों में उपमा, भारवी के किरातार्जुनीय में अर्थ-गौरव और दण्डी के ग्रंथों में पद-लालित्य की विशेषता है; परन्तु माघ का शिशुपालवध इन तीनों गुणों से परिपूर्ण है‡। ऐसे विद्वद्रत्न का जीवनचरित्र तो दूर रहा, निश्चित समय भी अज्ञात ही है।

---

* Modern Hinduism and its debt to the Nestorians.

‡ उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दंडिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणाः॥
(प्राचीन पद्य)

माघ कवि ने शिशुपालवध काव्य के अन्त में अपना वंश वर्णन किया है, जिसका आशय यह है—"राजा वर्मलात का सर्वाधिकारी (प्रधान मंत्री) सुप्रभदेव हुआ। राजा अपने हित की इच्छा से उस (सुप्रभदेव) के शुद्ध कथन को भगवान् वुद्धदेव के कथन के समान मानता था। सुप्रभदेव का पुत्र दत्तक हुआ जो क्षमाशील और धर्मपरायण था। उस सत्पुरुष के गुणों से रंजित होकर लोगों ने उसको सर्वाश्रय की उपाधि (उपनाम) प्रदान की थी। उस (दत्तक) के पुत्र (माघ) ने 'शिशुपालवध काव्य' की रचना की'*। माघ का दिया हुआ यह परिचय उसका समय निर्णय करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

शिशुपाल वध की भिन्न-भिन्न हस्त-लिखित पुस्तकों में वर्मलात के स्थान पर "वर्मलाख्य, वर्मनाम, चर्मलात, धर्मनाभ, धर्मनाथ, धर्मलाभ, धर्मदेव, धर्मलात और निर्मलान्त" पाठ मिलते हैं †। प्राचीन नागरी लिपि में 'ध' और 'व' में अन्तर केवल यही था कि 'ध' के ऊपर सिर की आड़ी लकीर नहीं लगाई जाती थी, किन्तु 'व' में लगाई जाती थी। इस प्रकार 'ध' और 'व' का वास्तविक भेद न जानने के कारण नकल करने वालों ने वर्मलात को धर्मनाभ, धर्मनाथ धर्मलाभ, और धर्मदेव आदि लिख दिया हो, यह संभव है। ऐसे ही 'ध' को 'घ' पढ़कर "धर्मलात" और 'व' को 'च' पढ़कर "चर्मलात" लिख दिया हो।

---

* सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलातस्य बभूव राज्ञः ।।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ।।१।।
काले मितं तथ्यमुदर्कपथ्यं तथागतस्येव जनः सचेताः ।।
विनानुरोधात्स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार ।।२।।
तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः ।।
यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहिजनैः प्रतीये ।।३।।
सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनितं जनेन ।।
यश्च द्वितीयं स्वयमद्वितीयो मुख्यः सतां गौणमवाप नाम ।।४।।
श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु ।।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ।।५।।
(शिशुपाल-वध काव्य के अंत का कवि-वंश वर्णन)

† महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसादजी लिखित शिशुपालवध काव्य का उपोद्घात, पृ० ६ (निर्णयसागर संस्करण) उक्त सब पाठों में से शुद्ध पाठ 'वर्मलात' है, जैसा कि उसी राजा के वि० सं० ६८२ के शिलालेख में मिलता है।

भिन्न २ युरोपियन विद्वानों ने माघ का समय भिन्न२ माना है। प्रोफेसर हर्मन जैकोबी ने ईस्वी सन् की सातवीं शताब्दी* से पूर्व, डाक्टर फ्लीट ने ई० सन् की नवीं शताब्दी† के अन्त में, प्रोफेसर मैक्डोनल ने ईस्वी सन् की दसवीं शताब्दी ‡ के पूर्व और डॉक्टर कीथ ने ईस्वी सन् ७०० के आस-पास उसका समय बतलाया है¶। महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसादजी का कथन है कि माघ पंडित का समय ईस्वी सन् की नवीं शताब्दी से पीछे किसी प्रकार नहीं माना जा सकता §। अब यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि वास्तव में माघ कवि कब हुआ ?

वि० सं० की ११ वीं शताब्दी के पीछे जैन विद्वानों ने इतिहास की तरफ ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया, जिससे उनके यहां कई चरित्र-ग्रंथों की रचना हुई। उनमें जैन एवं जैनेत्तर राजाओं, विद्वानों आदि के चरित अंकित किए गए हैं; परन्तु उनमें भी पहले के राजाओं, विद्वानों आदि के सम्बन्ध में जो कुछ परम्परागत जनश्रुति से उन्होंने सुना, वही संग्रह किया है। इसलिये अपने से अधिक समय पहले के विद्वानों आदि के संबंध में जो कुछ उन्होंने लिखा है, वह सब का सब प्रमाणयुक्त है, यह नहीं कहा जा सकता।

अब तक पहले के तीन संस्कृत लेखकों का माघ कवि के सम्बन्ध का कथन उपलब्ध हुआ है, जिनमें से दो जैन हैं; और उनमें भी सब से पहला जैन लेखक चन्द्रप्रभ सूरि है। उसने वि० सं० १३३४ में प्रभावक-चरित नामक चरितावलि लिखी, जिसके १४ वें शृङ्ग या प्रबन्ध में सिद्धर्षि का वृत्तान्त लिखा है। वह माघ के सम्बन्ध में उपयोगी है, इस कारण उसका आशय नीचे दिया जाता है।

"गुर्जर (गुजरात) देश के समृद्धिवान् श्रीमाल नगर के राजा वर्मलात का मन्त्री सुप्रभदेव था। उसके दो पुत्र दत्त (दत्तक) और शुभंकर हुए। दत्त (दत्तक) का पुत्र माघ हुआ, जिसका बाल-मित्र विद्वान् राजा भोज था। माघ ने 'शिशुपाल-वध काव्य' की रचना की, जिसकी सतत प्रशंसा हो रही है। माघ का चचा शुभंकर श्रेष्ठी (व्यापारी) बड़ा दानी हुआ। उसकी सती

---

* वियेना ओरिएण्टल जर्नल, जि० ३, पृ० १४१।

† वही; जि० ४, पृ० ६१ और आगे; तथा पृ० २३६ और आगे।

‡ मैक्डॉनल; ए हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिट्रेचर; पृ० ३२९।

¶ कीथ; क्लासिकल् संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ५४।

§ शिशुपालवध का उपोद्घात, पृ० ५।

स्त्री लक्ष्मी, विष्णु-पत्नी लक्ष्मी जैसी थी। जिससे सिद्ध नामक पुत्र हुआ। सिद्ध का विवाह एक कुलवती कन्या से हुआ था। पर वह दुराचरण में पड़कर व्यभिचारी और जुआरी हो गया। अपनी माता के कठोर वचन सुनकर वह एक रात्रि को जैन उपाश्रय में जा रहा। वहां जैन साधुओं की तपस्या और निर्मल आचरण देखकर उसने जैन धर्म की दीक्षा लेकर साधु होना निश्चित किया। पिता ने उसको बहुत कुछ समझाया, परन्तु वह अपने निश्चय से नहीं डिगा। अंत में उसने गर्गर्षि नामक जैन साधु से दीक्षा ग्रहण कर ली। फिर वह विद्याध्ययन कर बड़ा विद्वान् हो गया और सिद्धर्षि नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने 'उपमितिभवप्रपंचा महाकथा' नामक बड़े ग्रंथ की रचना की। हरिभद्र सूरि का ग्रन्थ (ललित विस्तर) पढ़ने से उसके चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा था, जिससे वह उनको भी गुरुवत् मानता था।"*

'प्रभावक चरित' में सत्य का अंश अवश्य है; क्योंकि माघ कवि ने स्वयं अपने वंश का जो कुछ परिचय दिया है, वह ज्यों का त्यों उसमें भी पाया जाता है। वर्मलात भी गुर्जर देश¶ की राजधानी श्रीमाल (भीनमाल) नगर का राजा अवश्य था। चीनी यात्री हुएन्त्संग ने भी गुर्जर देश की राजधानी भीनमाल‡ होना लिखा है।

चन्द्रप्रभसूरि ने माघ या राजा वर्मलात का कोई समय नहीं दिया। परन्तु यदि वास्तव में सिद्धर्षि माघ का चचेरा भाई§ हो, तो माघ के समय का कुछ अनुमान हो सकता है; क्योंकि सिद्धर्षि ने अपनी "उपमितिभवप्रपंचा कथा" की समाप्ति संवत्सर '९६२ ज्येष्ठ सुदी ५, पुनर्वसु नक्षत्र और गुरुवार'

---

* चन्द्रप्रभसूरि-प्रणीत 'प्रभावकचरितम्' निर्णयसागर संस्करण, पृ० १९९-२०५ में सिद्धर्षिसूरि प्रबन्ध।

¶ इस समय गुर्ज्जर अर्थात् गुजरात देश उसी प्रदेश को कहते हैं, जहाँ गुजराती भाषा बोली जाती है। परन्तु प्राचीन काल में जोधपुर राज्य के उत्तरी हिस्से से लेकर दक्षिण तक का सारा प्रदेश तथा उससे मिला हुआ गुजरात का भड़ौच तक का सारा प्रदेश गुर्ज्जर देश या गुजरात कहलाता था। अब तो केवल उसका गुजरात का अंश ही उक्त नाम से प्रसिद्ध है। गुर्ज्जर देश के विशेष वर्णन के लिये देखो—नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ० ३४१–४६।

‡ बील; 'बुद्धिस्ट रेकर्ड्ज़ ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड;' जि०२, पृ० २७०।

§ माघ को सिद्धर्षि का चचेरा भाई मानने के लिये कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं है और न सिद्धर्षि ने अपनी 'उपमितिभवप्रपंचा कथा' में इस विषय का कोई उल्लेख किया है। चन्द्रप्रभसूरि ने माघ से अनुमान ६०० वर्ष पीछे यह बात लिखी है; इसलिये यह विश्वसनीय नहीं प्रतीत होती।

के दिन होना लिखा है*। सिद्धर्षि ने इसमें केवल संवत्सर शब्द का प्रयोग किया है; परन्तु यह स्पष्ट नहीं लिखा कि यह शब्द विक्रम संवत् का अथवा शक संवत् का सूचक है । तो भी उसके साथ मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र और वार दिए हैं, जिससे गणित के द्वारा उसका निर्णय हो सकता है । संवत्सर ९६२ शक संवत् तो हो नहीं सकता; क्योंकि उक्त शक संवत् में ज्येष्ठ सुदि ५ को पुनर्वसु नक्षत्र और गुरुवार नहीं, किन्तु अश्लेषा नक्षत्र और सोमवार था। यदि वह विक्रम संवत् हो, तो यह भी निश्चय करना आवश्यक है कि वह चैत्रादि (उत्तरी गणना का) अथवा कार्तिकादि (दक्षिणी गणना का) विक्रम संवत् है । चैत्रादि विक्रम संवत् ज्येष्ठ सुदी ५ को भी पुनर्वसु नक्षत्र और गुरुवार नहीं, किन्तु पुष्य नक्षत्र और रविवार था। कार्तिकादि विक्रम संवत् ९६२ ज्येष्ठ सुदि ५ को पुनर्वसु नक्षत्र भी था और गुरुवार भी, ऐसा गणित से पाया जाता है । अतएव 'उपमितिभवप्रपंचाकथा' की समाप्ति कार्तिकादि विक्रम संवत् ९६२ (चैत्रादि ९६३) में होना निश्चित है । परन्तु माघ का इस संवत् के आस-पास होना हम स्वीकार नहीं कर सकते, जिसका कारण आगे लिखा जायगा।

वि० सं० १३६१ § में वर्द्धमान (वढ़वाण, काठियावाड़) में मेरुतुंगाचार्य ने अपनी 'प्रबन्धचिन्तामणि' नामक पुस्तक समाप्त की थी। उक्त पुस्तक में माघ पण्डित के विषय में जो कुछ लिखा है, उसका सारांश नीचे लिखा जाता है ।

"मालवे के प्रसिद्ध विद्यानुरागी राजा भोज ने माघ पंडित की विद्वत्ता का हाल सुनने पर उसको श्रीमाल (भीनमाल) नगर से बड़े सम्मानपूर्वक अपने यहां बुलाकर उसके विनोद तथा सुख का सब प्रबन्ध किया और रात्रि में वह उससे वार्तालाप करता रहा। दूसरे दिन प्रातःकाल ही माघ ने राजा से अपने घर जाने की आज्ञा मांगी । राजा ने विस्मित होकर पूछा कि क्या आपके भोजन आच्छादन आदि में कुछ त्रुटि रह गई है ? इस पर माघ ने खाने पीने की बात छोड़कर कहा कि मैं तो शीत-रक्षार्थ

---

* संवत्सरशतनवके द्विषष्ठिसहिते लंघिते चास्याः ।
ज्येष्ठे सितपञ्चम्यां पुनर्वसौ गुरुदिने समाप्तिरभूत् ॥

(उपमितिभवप्रपंचा कथा)

§ बम्बई की छपी हुई (संवत् १९८४) 'प्रबन्ध चिन्तामणि' पृ० ३२३।

रजाइयों के ही बोझ से मर रहा हूँ । इस पर राजा ने खिन्न होकर उसे अपने घर जाने की आज्ञा दे दी और शहर के बाहर के बगीचे तक वह उसे पहुँचाने भी गया। वहां माघ पंडित ने राजा से प्रार्थना की कि आप भी कृपाकर मेरे यहाँ पधारें। जब राजा ने इस बात को स्वीकार किया, तब वह स्वदेश को लौटा। फिर कुछ समय के बाद राजा भोज माघ का वैभव आदि देखने के लिये श्रीमाल नगर को गया। माघ पंडित उसकी पेशवाई कर उसे अपने घर ले आया। राजा उसका अतुल वैभव देखकर चकित हो गया और कुछ दिन वहाँ ठहरकर मालवे को लौट गया। कुबेर जैसी संपत्तिवाला माघ विद्वानों और याचकों को उनके इच्छानुसार द्रव्य दे देकर वृद्धावस्था में दरिद्र हो गया, जिससे अपने देश में रहना उसने उचित न समझा। उसने 'शिशुपालवध महाकाव्य' की रचना की और अपनी स्त्री सहित जाकर धारा नगरी में निवास किया। उसने द्रव्य-प्राप्ति की आशा से अपना ग्रंथ (शिशुपालवध महाकाव्य) अपनी स्त्री को देकर उसे राजा (भोज) के पास भेजा। भोज ने उस स्त्री की वह दशा देखकर उस पुस्तक को खोला, तो प्रातःकाल के वर्णन का 'कुमुदवनमपश्रि*' से प्रारम्भ होने वाला एक श्लोक दृष्टिगोचर हुआ। उस श्लोक का भाव देखते ही उसने मुग्ध होकर कहा कि काव्य का तो कहना ही क्या; यदि उक्त श्लोक के लिये ही सारी पृथ्वी दे दी जाय तो भी कम होगा। फिर उसको एक लाख रुपये देकर विदा किया। घर जाते हुए याचकों ने उसे माघ की पत्नी जानकर याचना की, जिस पर उसने वह सारा द्रव्य उन लोगों को दे दिया। घर पहुँचकर उसने यह सारा हाल

---

* शिशुपालवध काव्य में यह पूरा श्लोक इस तरह है—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमाश्चक्रवाकः ।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः ॥

सर्ग ११, श्लोक ६४ ।

आशय—सूर्य के उदय और चन्द्र के अस्त होने पर कुमुद (रात्रि में खिलनेवाले कमलों) की शोभा नष्ट हो जाती है और अम्भोज (दिन में खिलनेवाले कमल) सुशोभित होते हैं; उल्लू निरानन्द और चक्रवाक सानन्द होते हैं। (इससे प्रतीत होता है कि) भाग्यहीन और भाग्यवान् के लिये कर्म की गति अवश्य विचित्र होती है।

अपने पति से कहा। उसने उत्तर दिया कि तू मेरी मूर्तिमती कीर्ति ही है। फिर याचक लोग जब उसके पास माँगने को गए, तो अपने पास कुछ न देखकर उसको यहाँ तक दुःख हुआ कि उसका प्राणान्त हो गया। प्रातःकाल जब राजा को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ, तब उसने सोचा कि श्रीमाल नगर में स्वजाति के धनवानों के होते हुए भी माघ जैसा पुरुषरत्न भूख से मरा; इसलिये उसने श्रीमाल नगर का नाम 'भिल्ल-माल') भीलों का नगर) रक्खा *।"

मेरुतुंग ने यह वृत्तान्त किसी अन्य जनश्रुति के आधार पर लिखा है और उसने चन्द्रप्रभसूरि का प्रभावक चरित देखा हो, ऐसा पाया नहीं जाता; क्योंकि इन दोनों का वृत्तान्त परस्पर नहीं मिलता। प्रभावक चरित में यह स्पष्ट नहीं बतलाया गया कि माघ का बालमित्र भोज कहाँ का राजा था, परन्तु मेरुतुन्ग ने उसे मालवे का प्रसिद्ध राजा भोज† मान लिया है। मालवे का राजा भोज वि० सं १०७६ से १०९९[4] तक तो अवश्य विद्यमान था, ऐसा उसके दानपत्रों तथा ग्रंथादि से निश्चित है। भोज का देहान्त वि० सं० १०९९ और १११२ के बीच किसी समय

* मेरुतुंग-रचित प्रबन्ध-चिन्तामणि (बम्बई संस्करण) पृ० ८३—८८।

† प्रभावक चरित में विद्वान् राजा भोज को माघ कवि का बालमित्र कहा है। यदि इस कथन में कुछ सत्य हो, तो भी मालवे का राजा भोज उसका समकालीन नहीं हो सकता; क्योंकि वह तो माघ से अनुमान ३४० से भी अधिक वर्ष पीछे हुआ था। माघ के समय के आस-पास भोज नाम का मौर्य (मोरी) वंशी राजा चित्तौड़ और उसके आसपास के प्रदेश पर राज्य करता था, ऐसा चित्तौड़ के निकट के पूठोली गांव के पास मानसरोवर नामक तालाव पर लगे हुए, उक्त भोज के पुत्र राजा मान के वि० सं० ७७० (ई० सन् ७१३)[5] के शिलालेख से पाया जाता है; परन्तु उसका कुछ भी संबन्ध भीनमाल से रहा हो, ऐसा मानने के लिये कोई कारण नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में यही अनुमान होता है कि प्रभावक चरित के कर्ता ने पुरानी जन-श्रुति के आधार पर माघ का भोज से सम्बन्ध बतलाया हो, जैसा कि मेरुतुंग और बल्लाल पंडित ने बतलाया है।

4 (सम्पा० टि०) भोज के पिता सिंधुराज की मृत्यु वि० सं० १०६६ (ई० स० १००९) के लगभग मानी गई है। अतएव भोज के राज्याभिषेक का समय वि० सं० १०६६ (ई० स० १००९) से मान सकते हैं। (सं० टि०)

5 यह शिलालेख कर्नल टॉड को मिला था, जो अब तक अप्रकाशित है।

हुआ था‡। मेरुतुंग के अनुसार माघ का समय 'उपमितिभवप्रपंचा कथा' की रचना से सौ वर्ष से भी अधिक पीछे मानना पड़ता है, जो संभव नहीं। ऐसे ही भोज ने माघ के मरने पर श्रीमाल का नाम भिल्लमाल नाम रक्खा, यह भी मानने योग्य नहीं है; क्योंकि भिल्लमाल नाम प्राचीन है और वि० सं० की सातवीं शताब्दी के अन्त के लगभग चीनी यात्री हुएन्त्संग ने गुर्ज्जर देश की राजधानी का नाम 'भीनमाल' लिखा है, जो विशेष विश्वास योग्य है।

‡ मेरा लिखा हुआ, 'राजपूताने का इतिहास,' पहला खंड, पृ० १९१।

वह अब कहाँ पर है, यह भी कोई नहीं जानता; क्योंकि उसके विषय में अब तक किसी विद्वान् ने अपना मंतव्य प्रकट नहीं किया है। यदि वह सुरक्षित होता तो श्री. ओझाजी तथा अन्य विद्वान् उस पर विशेष रूप से प्रकाश डालते हुए कोई अभिमत भी प्रकट करते।

टॉड ने उसका अंग्रेजी अनुवाद अपने एनाॅल्स एंड एंटीक्विटीज़ ऑफ राजस्थान में दिया है और उसका भाषानुवाद महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास के वीरविनोद नामक ग्रंथ के प्रथम भाग के शेष संग्रह में छपा है।

इस ही आधार पर इतिहास के पाठकों को चितौड़ पर आठवीं शताब्दी में मौर्यो का अधिकार होने का पता लगता है। उक्त भाषान्तरों में मौर्यवंशी राजा मान की चार पीढ़ी का उल्लेख करते हुए (मान) को अवन्ती प्रदेश (उज्जैन, मालवा) का राजा होना बतलाया है, एवं भोज का पुत्र मान होने का वर्णन है, जिसने चितौड़ के समीप मानसरोवर नामक तालाब बना कर उपरोक्त वि० सं० ७७० (ई० स० ७१३) का शिलालेख लगाया।

प्रभावक चरित्र के रचयिता चन्द्रप्रभसूरि ने माघ कवि को राजा भोज का बाल्यमित्र होना बतलाया है। यहां भोज का आशय किसी भोज नामक विद्वान् राजा से है। मालवे का प्रसिद्ध परमार राजा भोज तो उसका समकालीन नहीं हो सकता, क्योंकि वह उसके तीनसौ वर्ष पीछे हुआ था। रघुवंशी प्रतिहारों तथा गुहिलवंशियों में भी भोज या भोजदेव और कालभोज नामक राजा हुए हैं, एवं चित्तौड़ के शिलालेख में मौर्यवंशियों में राजा मानका पिता भोज लिखा है। माघ के समय-काल को देखते गुहिलवन्शी भोज

वल्लाल पंडित रचित भोज-प्रबन्ध से पाया जाता है कि पंडित माघ गुर्जर देश से मालवे के राजा भोज की राजधानी धारा नगरी में गया और उसने अपनी स्त्री को एक पत्र देकर राजा भोज के पास भेजा। भोज ने उस पत्र को पढ़ा, तो उसमें प्रातःकाल के वर्णन का उपर्युक्त "कुमुदवनमपश्रि" से प्रारम्भ होने वाला श्लोक देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और माघ की पत्नी को तीन लाख रुपये देकर कहा कि माता! यह तो आपके भोजन के लिए है। कल प्रातःकाल आपके पति के दर्शन कर उनका मनोरथ पूर्ण करूँगा। आगे माघ की स्त्री के वह धन मार्ग में याचकों को दे देने और माघ के मर जाने का वृत्तान्त प्रबन्ध-चिन्तामणि के अनुसार ही है। भोजप्रबन्ध से इतना और अधिक पाया जाता है कि माघ की पत्नी अपने पति के साथ सती हुई और राजा भोज ने पुत्रवत् उन दोनों का अंतिम संस्कार किया*।

वल्लाल पंडित का भोजप्रबन्ध कब बना, यह अनिश्चित है; परन्तु अनुमान होता है कि वह प्रबन्धचिन्तामणि से पीछे का बना हुआ होगा; क्योंकि उसमें ऐतिहासिक तत्व कुछ भी नहीं है। उस (वल्लाल पंडित) को तो यह भी मालूम नहीं था कि मुंज बड़ा भाई था और सिंधुल छोटा, जिससे यह लिख दिया कि सिंधुल ने मरते समय अपने बालक पुत्र भोज को अपने छोटे भाई मुंज के सुपुर्द कर दिया, जिसने राज्य के लोभ से भोज को मारने की आज्ञा दे दी आदि। सच बात तो यह है कि मालवे का

---

* भोज प्रबन्ध (वैंल्वेडियर प्रेस का संस्करण) पृ० ६७–६६।

और रघुवंशी प्रतिहार राजा भोजदेव माघदेव के समकालीन नहीं हो सकते। गुहिलवंशी काल भोज (बापा रावल) और मौर्यवंशी भोज का समय माघ से मिलता है। इनमें से मौर्य राजा भोज का माघ से सम्पर्क रहा हो, यह संभव है। मौर्य राजा भोज का प्रत्यक्षतः भीनमाल से कोई संबन्ध होना पाया नहीं जाता और न मालवे के परमार राजा भोज का। परन्तु वैवाहिक सम्बन्ध तथा अन्य रिश्तेदारी से मौर्यवंशी राजा भोज का भीनमाल से संपर्क हो सकता है, क्योंकि भीनमाल भी एक राज्य था। इसके अतिरिक्त राजा विद्यानुरागी, उदार और मिलनसार हो तो चाहे कितना ही दूर का विद्वान् हो, उससे सम्बन्ध हो जाता है। माघकवि का परमार राजा भोज के दरबार में जाने का, प्रबन्ध-चिंतामणि के कर्ता मेरुतुङ्ग का कथन इतिहास से विरुद्ध है, और यह स्वीकार योग्य नहीं है।

इस लेख से यह निश्चय हो गया कि वि० सं० ६८२ में आबू का प्रदेश वर्मलात नामक बड़े राजा के सामंत वज्रभट (सत्याश्रय) और उसके पुत्र राज्जिल के अधिकार में था। उक्त लेख में वर्मलात का नाम देखकर मैंने यह निश्चय किया कि माघ का दादा सुप्रभदेव जिस वर्मलात राजा का मंत्री था, वह यही राजा होना चाहिए, क्योंकि उसकी राजधानी भीनमाल आबू से केवल ४० मील उत्तर-पश्चिम में है। इस प्रकार माघ के दादा का समय निश्चित हो जाने पर उस (माघ) का समय भी सहज ही ज्ञात हो सकता है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में वह शिलालेख बहुत महत्व का था, इससे मैंने उसकी सूचना सन् १९०५ ई० में अपने विद्वान् मित्र वियेना (आस्ट्रिया) निवासी डॉक्टर कीलहॉर्न को दी और उसकी एक छाप भेजकर यह भी सूचित किया कि इस लेख से माघ कवि का समय निश्चित हो जायगा। उक्त विद्वान ने १९०६ ई० में Gottingen Nachrichten नामक पत्रिका के दूसरे खंड में 'एपिग्राफिक नोटस्' नाम की अपनी भारतीय पुरातत्व सम्बन्धी लेख माला की संख्या १९ में उक्त लेख का आशय प्रकट कर माघ कवि का समय इसवी सन् की ७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होना माना; और साथ में यह भी लिखा कि मिस्टर ओझा का मानना ठीक है†। डाक्टर कीथ ने ई० सन् ७०० के आस पास माघ का होना अनुमान किया है, जिसका आधार भी यही लेख है।

'उपमितिभवप्रपंचा कथा' ज्येष्ठादि विक्रम संवत् ९६२ में समाप्त हुई थी। उसके कर्ता सिद्धर्षि को प्रभावक चरित के कर्ता चन्द्रप्रभ सूरि ने माघ का चचेरा भाई माना है, जो संशय युक्त ही है; क्योंकि माघ का वि० सं० की दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होना संभव नहीं।

माघ ने शिशुपालवध काव्य में राजनीति का वर्णन करते हुए श्लेषालंकार में राजनीति की समता शब्द-विद्या (व्याकरण शास्त्र) के साथ

---

† When Mr. Ojha first informed me of the discovery of this inscription, by a letter of the 24 th December 1905, he suggested that it would perhaps 'settle the date of the poet Magha'. My subsequent examination having confirmed this view······(Gottingen Nachrichten, 1906, Heft 2, P. I.)

की है, जिसका आशय यह है—"पद २ पर नियम का पालन करनेवाली अर्थात सब व्यवहार-वाली (अनुत्सूत्रपदन्यासा) सेवकों को यथा योग्य जीविका देनेवाली (सद्वृत्तिः) और स्थायी जीविका देनेवाली (सन्निबन्धना) होने पर भी यदि राजनीति गुप्त दूत रहित (अपस्पशा) हो, तो शोभा नहीं देती, जैसे कि सूत्रों के पदों को न छोड़नेवाले न्यासवाली (अनुत्सूत्र-पदन्यासा) सुन्दर वृत्तिवाली (सद्वृत्तिः) और भाष्य (महाभाष्य) वाली (सन्निबन्धना) शब्द-विद्या (व्याकरण विद्या) यदि उपोद्घात रहित (अपस्पशा) हो, तो शोभा नहीं देती* ।" उपर्युक्त श्लोक के दूसरे भाग में वृत्ति†, न्यास‡ और पस्पश ¶ शब्द व्याकरण शास्त्र के सांकेतिक रूप

---

* अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ।।११२।।
(शिशुपालवध काव्य, सर्ग २)

† पाणिनि के सूत्रों पर जयादित्य और वामन की काशिकावृत्ति, आचार्य रामचन्द्र की 'प्रक्रिया कौमुदीवृत्ति' और भट्टोजी दीक्षित की 'सिद्धान्त कौमुदीवृत्ति' प्रसिद्ध हैं । इसी तरह उनके पूर्व भी कुर्ण, चुल्ली, भट्टी और निर्ल्लूर के प्राचीन वृत्ति ग्रंथ भी थे, जो अब उपलब्ध नहीं हैं; किन्तु उनका उल्लेख व्याकरण के ग्रंथों में मिलता है । कुर्ण की वृत्ति तो महाभाष्यकार पतंजलि के समय भी विद्यमान थी, ऐसा 'एङ् प्राचां देशे' (१.१.७५) सूत्र की व्याख्या में कैयट और नागोजी सूचित करते हैं । (महाभाष्य पर कैयट और नागोजी की टीका; बनारस संस्करण; पृ० ३६३) । इसी तरह पीछे से हेमचन्द्रसूरि ने 'सिद्धहैम शब्दानुशासन, नामक नवीन व्याकरण रचा । उस पर 'बृहद्वृत्ति' नामक विवरण और बृहद्वृत्ति पर न्यास नाम का ग्रन्थ भी स्वयं लिखा था ।

‡ काशिका वृत्ति पर जिनेन्द्रबुद्धि ने टीका लिखी जो न्यास नाम से प्रसिद्ध है । पहले भी न्यास ग्रंथ अवश्य होंगे; क्योंकि बाण भट्ट ने, जो माघ से पूर्व हुए, अपने हर्षचरित में वृत्ति और न्यास का उल्लेख किया है—उपाया इव सामप्रयोगललितमुखाः, गणपतिः, अधिपतिः, तारापतिः, श्यामल इति पितृव्यपुत्रा भ्रातरः प्रसन्नवृत्तयः गृहीतवाक्याः, कृतगुरुपदन्यासाः, न्यायवादिनः सुकृत संग्रहाभ्यासगुरवः लब्धस, धुशब्दाः । लोक इवं व्याकरणेऽपि······(बाण भट्टरचित 'हर्षचरित' निर्णयसागर-संस्करण, पृ० ८६–८७) । वृत्ति और न्यास दोनों प्रकार के ग्रंथों का उल्लेख स्वयं पाणिनि ने उक्थादि गण में किया है । (सिद्धान्तकौमुदी, निर्णयसागर प्रेस बम्बई में छपी हुई, चतुर्थ संस्करण, पृ० ६५२) ।

¶ पतंजलि के महाभाष्य का प्रथम आह्निक, जो उस ग्रंथ का उपोद्घात है, पस्पश नाम से प्रसिद्ध है ।

हैं । व्याकरण के मूल सूत्रों की व्याख्या (टीका) रूप ग्रंथों की वृत्ति२ के टीका रूप ग्रंथों को न्यास और ग्रंथारम्भ के उपोद्घात रूप अंश को पस्पश कहते हैं ।

उक्त श्लोक की टीका करते हुए मल्लिनाथ ने व्याकरण के सम्बन्ध में वृत्ति को काशिका वृत्ति और न्यास को उक्त वृत्ति पर का न्यास (जिनेन्द्रबुद्धि का) मान लिया है जो उपलक्षण मात्र है। वृत्ति और न्यास काशिका वृत्ति से पूर्व भी अनेक थे और पीछे भी बने, ऐसा पहले (टिप्पणी में) बताया जा चुका है ।

चीनी यात्री इत्सिंग अपने यात्रा-विवरण की पुस्तक में भारतीय पठन-पाठन का वर्णन करते हुए काशिका-कार जयादित्य की मृत्यु अपनी पुस्तक के लिखे जाने से ३० वर्ष पूर्व अर्थात् ई० सन् ६६१-६२ (वि० सं० ७१८-१९) के आस-पास होना सूचित करता है* और जिनेन्द्रबुद्धि या उसके न्यास का उल्लेख नहीं करता; अतएव जिनेन्द्रबुद्धि का इत्सिंग के ग्रंथ की रचना अर्थात् ई० सन् ६९१-९२ (वि० सं० ७५२-५३) के पीछे ‡ होना अनुमान किया जा सकता है।

ई० सन् १९०७-८ में श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने राजा वर्मलात के समय के बसन्तगढ़ के उक्त शिलालेख का संपादन करते समय मल्लिनाथ के कथनानुसार "वृत्ति" को काशिकावृत्ति और "न्यास" को जिनेन्द्रबुद्धि का न्यास समझकर माघ का उन दोनों ग्रंथकारों के पीछे अर्थात् ईस्वी सन् की आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होना माना है† जो सर्वथा उपेक्षणीय है; क्योंकि जयादित्य और जिनेन्द्रबुद्धि के पहले भी वृत्ति और न्यास के कई ग्रंथ थे, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं।

माघ का दादा सुप्रभदेव भीनमाल के राजा वर्मलात का मंत्री था; और वर्मलात वि० सं० ६८२ (ई० सन् ६२५) में विद्यमान था; अतएव माघ का समय उसने अनुमानतः ५० वर्ष पीछे अर्थात् वि० सं० ७३२ (ईसवी ७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध) के लगभग होना निश्चित है।

ना० प्र० (त्रै० न०) काशी भाग ५; संख्या २, वि० सं० १९८३,
ई० स० १९२६ ।

---

* टाकाकूसू; इत्सिंग की यात्रा का विवरण (अंग्रेजी) पृ० १७५-७६ ।

‡ टाकाकूसू; इत्सिंग के यात्रा-विवरण की भूमिका. पृ० ५३, ५४ ।

† एपिग्राफिया इंडिका; जि० ९, पृ० १९० ।

३–कवि राजशेखर की जाति

काव्यमीमांसा , कर्पूरमंजरी, विद्धशालभंजिका, वालरामायण, वालभारत आदि[1] ग्रंथों का रचयिता प्रसिद्ध संस्कृत कवि राजशेखर किस जाति या वर्ण का था, इसका ठीक-ठीक निर्णय अब तक नहीं हुआ । काव्यमाला के सुप्रसिद्ध सम्पादक महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसादजी (स्वर्गवासी) ने ईस्वी सन् १८८७ की काव्यमाला में राजशेखर के कर्पूरमंजरी और वालभारत नाटकों का बड़ी योग्यता के साथ सम्पादन किया; और कर्पूरमंजरी की विस्तृत संस्कृत भूमिका में राजशेखर का बहुत कुछ परिचय दिया था। उन्होंने उक्त कवि की जाति का निर्णय करते हुए लिखा था—"राजशेखर ब्राह्मण था वा क्षत्रिय, यह संदिग्ध है । वालरामायण आदि में वह 'उपाध्याय', 'गुरु' आदि शब्दों से अपना परिचय देता है, जिससे उसका ब्राह्मणत्व स्पष्ट प्रतीत होता है; क्योंकि क्षत्रिय को अध्यापनादि का अधिकार नहीं है । 'राजशेखर' नाम का समास (विग्रह) 'राजाओं का शेखर (शिरोमणि)' करना भी उचित नहीं है । उचित समास तो यही है कि 'राजा अर्थात् चन्द्र है शेखर जिसका'; क्योंकि कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना में राजशेखर नाम का पर्याय 'रजनीवल्लभ-शिखंडः, मिलता है, जिसका अर्थ—'रजनीवल्लभ' (चन्द्र) है, शिखंड जिसका' होता है । कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना में राजशेखर कवीन्द्र की गेहिनी (स्त्री) को चाहमान कुल की मौलिमाला (सिर पर धारण करने की पुष्पमाला) कहा है । चाहमान कुल 'चौहान' नाम का प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल है, जिसमें हमीर, पृथ्वीराज आदि राजा हुए हैं । उस कुल की कन्या इस युग में ब्राह्मण की स्त्री कैसे हो सकती है ? अतएव 'राजशेखर क्षत्रिय था' ऐसा मानना भी विशेष अनुचित प्रतीत नहीं होता[2] ।"

ई० स० १९०१ में क्रिस्टिआनिआ युनिवर्सिटी (नार्वे) के प्रसिद्ध पुरातत्व-वेत्ता और संस्कृत के विद्वान् स्टीनकॉनो ने 'हार्वर्ड ओरिएंटल् सीरीज' नाम की ग्रन्थमाला में राजशेखर की कर्पूरमंजरी का अनेक हस्तलिखित प्रतियों के

---

1 राजशेखर के ऊपर लिखे हुए पाँच ग्रंथ ही प्रसिद्धि में आये हैं; परन्तु हेमचन्द्राचार्य ने अपने काव्यानुशासन विवेक में राजशेखर के 'हर-विलास' का नाम भी दिया है (स्वनामांकता यथा राजशेखरस्य हरविलासे) (पृ० ३३५) और उसमें से दो श्लोक भी उद्धृत किये हैं। उज्ज्वलदत्त ने भी हरविलास से आधा श्लोक उद्धृत किया है (२।२८); परन्तु अब तक वह ग्रंथ प्रसिद्धि में नहीं आया ।

2 कर्पूरमंजरी की संस्कृत भूमिका, पृ० २–३ ।

आधार पर एक उत्तम संस्करण प्रकाशित किया था। उसमें राजशेखर का बहुत कुछ परिचय दिया है, जहाँ उसको यायावर ब्राह्मण मानकर लिखा है—"भारत के अधिकांश ग्रंथकर्ताओं की अपेक्षा राजशेखर अपना तथा अपने कुल का विशेष परिचय देता है। बालरामायण (१. ६. १३.) और विद्धशालभंजिका (१. ५.) के अनुसार वह यायावर कुल का था। हॉल (पृ० १४, टिप्पणी) यायावर शब्द का अर्थ 'यज्ञ की अग्नि का रक्षक' करता है; और नारायण दीक्षित ने विद्धशालभंजिका की टीका (१. ५.) में देवल का वचन उद्धृत कर बतलाया है कि यायावर का अर्थ 'एक प्रकार का गृहस्थ' है। "द्विविधो गृहस्थो यायावरः शालीनश्च"। गृहस्थ दो प्रकार के—यायावर और शालीन—होते हैं। परंतु संभवतः यायावर एक कुटुम्ब का नाम है। यायावर ब्राह्मण हैं। आप्टे (पृ० १८) ने ठीक कहा है—"राजशेखर को भी ब्राह्मण मानना चाहिए; क्योंकि उसको भवभूति का अवतार माना है[3]। दूसरी बात यह भी है कि क्षत्रिय का 'उपाध्याय' या 'गुरु' होना उचित नहीं। इसके विरुद्ध राजशेखर की पत्नी अवन्तीसुन्दरी को कर्पूरमंजरी (१. ११.) में चौहान कुल की मौलिमालिका कहा है[4]; अतएव वह राजपूत कुल की राजकन्या थी[5]"।

ई० स० १९१६ में श्रीयुत सी० डी० दलाल एम्० ए० ने 'गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज़' में राजशेखर की काव्यमीमांसा का सम्पादन करते समय उसकी अंग्रेजी भूमिका में राजशेखर की जाति का निर्णय करने के प्रसंग में लिखा है—"हमें यह ज्ञात हुआ है कि राजशेखर यायावर कुल का था; परन्तु यह निश्चित नहीं है कि वह ब्राह्मण था, या क्षत्रिय। यदि राजा महेन्द्रपाल का उपाध्याय होना उसके ब्राह्मण होने का समर्थन करता है, तो उसका राजशेखर नाम तथा उसकी स्त्री का चौहान वंश

---

3 बभूव वल्मीकभवः पुरा कविस्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥
बालभारत, १।१२.

4 चाहुआणकुलमोलिमालिआ राजसेहरकइन्दगेहिणी।
भत्तुणो किइमवन्ति सुन्दरी सा पउञ्जइउमिच्छइ॥

कर्पूरमंजरी १।११; और मेरे राजपूताने के इतिहास का पहला खंड, पृ० १३ टिप्पण १।

5 डॉ० स्टीन कॉनो सम्पादित कर्पूरमंजरी, पृ० १८०।

में उत्पन्न होना, ये उसको क्षत्रिय मानने की ओर प्रवृत्त कराते हैं[6]।"

उपर्युक्त तीनों ग्रन्थ-सम्पादकों के लेखों से राजशेखर की जाति का सन्तोषजनक निर्णय नहीं होता ।

राजशेखर अपने नाटकों में अपना विशेष परिचय देता है । विद्धशालभंजिका और बालभारत में वह अपने को यायावर[7] बतलाता है; और बालरामायण में लिखता है—"जिस यायावर कुल में अकालजलद, सुरानन्द, तरल, और कविराज (या तरल कविराज) आदि विद्वान् हुए, उसी कुल में यह महाभाग (राजशेखर) उत्पन्न हुआ है[8]।" अतएव निश्चित है कि हमारे लेख का नायक यायावर कुल में उत्पन्न हुआ था। अब यह निर्णय करने की आवश्यकता है कि यायावर कुल किस जाति या वर्ण से सम्बन्ध रखता है । ऊपर बतलाया जा चुका है कि नारायण पंडित देवल का वचन उद्धृत कर यायावर नाम को गृहस्थ का सूचक बतलाता है; परन्तु उससे कवि की जाति या वर्ण का निर्णय नहीं हो सकता ।

आश्रमोपनिषद् में ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक ये चार आश्रम मानकर प्रत्येक आश्रम के चार-चार भेद किए हैं[9]। गृहस्थ

---

6 काव्यमीमांसा की अंग्रेजी भूमिका, पृ० १४ ।

7 सूत्रधारः—(आकर्ण्य) अये यायावरेण दौहित्रिना कविराजशेखरेण विरचिताया विद्धशालभंजिकानाम्न्या नाटिकाया वस्तुपक्षेपो गीयते ।

विद्धशालभंजिका (कलकत्ता संस्करण) पृ० ७ ।

(विमृश्य च) अहो मसृणेद्धता सरस्वती यायावरस्य ।

बालभारत, पृ० १ ।

8 स मूर्तो यत्र सीद्गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपटुपेयेन वचसा ।
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले ।।

बालरामायण, १।१३ ।

9 अथातश्चत्वारः आश्रमाः षोडश भेदा भवन्ति । तत्र ब्रह्मचारिणश्चतुर्विधा भवन्ति····।१। गृहस्था अपि चतुर्विधा भवन्ति····।२। वानप्रस्था अपि चतुर्विधा भवन्ति····।३। परिव्राजका अपि चतुर्विधा भवन्ति····।४।

माइनर उपनिषद्ज ऑटो श्रडर, पी० एच० डी० (Otto Schrader, Ph. D.) सम्पादित जिल्द प्रथम, संन्यास उपनिषद्ज, ई० स० १९१२ के संस्करण (अडिआर लाइब्रेरी के द्वारा प्रकाशित) में आश्रमोपनिषद्, पृ० ७७ ।

के चार भेद—वार्तक वृत्तिवाले, शालीन वृत्तिवाले, यायावर और घोर सन्यासिक बतलाए हैं[10]। साथ में प्रत्येक भेद की व्याख्या भी है, जिसका आशय नीचे लिखा जाता है—

(अ) वार्तक वृत्तिवाले वे गृहस्थ हैं जो अगर्हित कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य करते हैं[11] (अर्थात् वैश्य हैं)।

(आ) शालीन वृत्तिवाले यज्ञ करते हैं, परन्तु कराते नहीं; अध्ययन करते हैं, कराते नहीं[12] (अर्थात् क्षत्रिय हैं)।

(इ) यायावर लोग यज्ञ करते हैं और कराते हैं, अध्ययन करते और कराते हैं तथा दान देते और लेते हैं[13] (अर्थात् ब्राह्मण हैं)।

(ई) घोर संन्यासिक वे लोग हैं जो (अपने हाथ से) लाए हुए शुद्ध जल से कार्य करते हैं और प्रति दिन उंछ वृत्ति[14] से निर्वाह करते हैं[15] (यह भी ब्राह्मणों का एक भेद होना चाहिए)।

आश्रमोपनिषद् से ऊपर उद्धृत किए हुए गृहस्थ के चार भेदों में से तीसरे भेदवालों अर्थात् यायावरों के वे ही छः कर्म बतलाए गए हैं, जो मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि धर्मशास्त्रों में केवल ब्राह्मण के लिये ही नियत किये गये हैं[16]। अतएव यायावरों का ब्राह्मण होना निर्वि-

---

10 गृहस्था अपि चतुर्विधा भवन्ति वार्तकवृत्तयः शालीनवृत्त यायावरा घोरसंन्यासिकाश्चेति। आश्रमोपनिषद्।

11 वार्तकवृत्तयः कृषिगोरक्षवाणिज्यमगर्हितमुपयुंजानाः शतसंवत्सराभिः क्रियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते। आश्रमोपनिषद्

12 शालीनवृत्तयो यजन्तो न याजयन्तोऽधीयाना नाध्यापयन्तो ददतो न प्रतिगृह्णन्तः शत० (वही)।

13 यायावरा यजन्तो याजयन्तोऽधीयाना अध्यापयन्तो ददतः प्रतिगृह्णन्तः शत० (वही)

14 अन्न की फसल काट लेने के बाद खेतों में पड़ी हुई अन्न की बालियों आदि को अथवा भूमि पर बिखरे हुए अन्न के दानों को चुनकर उसी पर अपना निर्वाह करने के व्रत को उंछ वृत्ति कहते हैं। महाभारत के नकुलोपाख्यान में एक उंछ वृत्तिवाले कुटुम्ब का अच्छा वर्णन है।

15 घोरसन्यासिका उद्धृतपरिपूताभिरद्भिः कार्यं कुर्वन्तः प्रतिदिवसमाहृतोच्छवृत्तिमुपर्युंजानाः शत० आश्रमोपनिषद्।

16 अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ मनुस्मृति, १।८८।
इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च।
प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा॥ याज्ञवल्क्यस्मृति, ५।१२८

याद है ।

श्रीमद्भागवत में ब्राह्मणों की चार वृत्तियों में से एक यायावर वृत्ति भी मानी गई है[17] । इससे भी आश्रमोपनिषद् के कथन की पुष्टि होती है ।

अब यह जानना भी आवश्यक है कि यायावर उपनामवाले ब्राह्मणों की मूल वृत्ति या जीविका किस प्रकार की थी और वे यायावर क्यों कहलाए । या-या-वर शब्द का अर्थ 'जा जा कर याचना करना या (अन्नादि की) भिक्षा माँगना' है । प्राचीन लेखकों ने भी उक्त नाम का यही आशय माना है ।

श्रीमद्भागवत् की टीका में श्रीधर ने लिखा है—'यायावर शब्द प्रति दिन अन्न की याचना करने का सूचक है'[18] ।

विजयध्वजतीर्थ का कथन है—'यायावर एक प्रकार का भिक्षाचरण है; अर्थात् संचय न करना और एक दिन में व्रीहि आदि जो अन्न मिले, उसको उसी दिन काम में लाना सूचित करता है[19]' ।

वीर राघवाचार्य का मत है—'यायावर शब्द प्रवासी का सूचक है और उसके कर्म को 'यायावर्यम्' कहते हैं, जो प्रवास आदि से याचना-पूर्वक संग्रह करना बतलाता है'[20] ।

इन कथनों का निष्कर्ष यही है कि प्रारम्भ में जो ब्राह्मण फिर-फिर कर भिक्षावृत्ति मात्र से ही निर्वाह करते, एक दिन के निर्वाह जितना अन्न मिलने पर सन्तुष्ट रहते और संग्रह नहीं करते थे, वे यायावर कहलाते

---

17 वार्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोंछनम् ।
विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा ।।

श्रीमद्भागवत, ७।११।१६।

18 यायवराः । यायावरं प्रत्यहं धान्ययांचा ।

श्रीमद्भागवत पर श्रीधर की टीका ।

19 यायवरं भैक्षचर्यविशेषः । असंचय एकाहित्वं तत्तदिनार्जित व्रीह्या-देस्तद्दिन एव व्ययः· · · वार्ता यायावरं ज्ञेयमेकाहित्वमसंचय इति ।

श्रीमद्भागवत की टीका में उद्धृत विजयध्वज का कथन ।

20 यायावर्यम् । यायावरः प्रवासी । तस्य कर्म यायावर्यम् । प्रवासादिना याचापूर्वकमर्जनम् ।

श्रीमद्भागवत की टीका में उद्वृत वीरराघवाचार्य का कथन (७।११।१६) ।

थे। पीछे से उस वृत्ति को छोड़ कर अन्य वृत्ति धारण करने पर भी याज्ञिक (जानी), उपाध्याय (उवज्झाय, उअज्झा, ओझा, झा), अध्वर्यु (अध्याय), द्विवेदी (दो वेद पढ़नेवाले, दूबे, दवे) त्रिवेदी (तिवाड़ी, तरवाड़ी), चातुर्वेदी (चौबे) आदि ब्राह्मण कुटुम्बों की प्राचीन वृत्ति की स्मृति का सूचक मात्र रह गया। ब्राह्मणों की यायावर वृत्ति बहुत प्राचीन थी; क्योंकि महाभारत में जरत्कारु ऋषि को यायावरों में प्रवर (श्रेष्ठ) कहा है।[21]

राजशेखर का चरित्र अंकित करनेवाले उपर्युक्त विद्वानों ने राजशेखर की स्त्री अवन्ती सुन्दरी के चौहान वंश की होने के कारण ही उस (राजशेखर) का क्षत्रिय होना भी सम्भव माना है, जो ठीक नहीं है; क्योंकि उन्होंने हिन्दुओं की वर्तमान वर्णाश्रम व्यवस्था की ओर दृष्टि रखकर ऐसा अनुमान किया है; परन्तु हिंदुओं की वर्तमान वर्णाश्रम व्यवस्था बहुत प्राचीन नहीं है। वर्तमान समय में राजपूतों (क्षत्रियों) को छोड़ कर अन्य तीनों वर्णों में सैकड़ों जातियाँ बन गई हैं, जिनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध तो दूर रहा, खाने-पीने में भी बहुत कुछ प्रतिबन्ध हो रहा है। प्राचीन काल में अति शूद्रों को छोड़ कर चारों वर्णों में परस्पर खान-पान में भेद न था। इतना ही नहीं, किन्तु प्रत्येक वर्ण का पुरुष अपने तथा अपने से नीचे के वर्णों में विवाह कर सकता था। सवर्ण विवाह श्रेष्ठ माना जाने पर भी अन्य वर्ण में विवाह करना धर्मशास्त्र से निषिद्ध न था। मनु के समय काम वश ब्राह्मण चारों वर्णों में विवाह कर सकता था। पीछे से याज्ञवल्क्य ने द्विजों के लिये शूद्र वर्ण की कन्या के साथ विवाह करने का निषेध किया।[22] विक्रमी १० वीं शताब्दी तक के शिलालेखों में भी ब्राह्मणों के क्षत्रिय कन्याओं के साथ विवाह होने के उदाहरण कभी-कभी मिल जाते हैं। जैसे—

(अ) वि० सं० ८८४ के मंडोर (जोधपुर राज्य में) से मिले हुए

---

21 जरत्कारुरिति ख्यात ऊर्द्ध्वरेता महातपाः।
यायावराणां प्रवरो धर्मज्ञः शंसितव्रतः॥ महाभारत १।१३।११।

22 यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः।
नैतन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयं॥५६॥

याज्ञवल्क्य स्मृति, आचाराध्याय।

शिलालेख में, जो राजपूताना म्यूज़ियम (अजमेर) में सुरक्षित है, मंडोर के प्रतिहारों के मूल पुरुष हरिश्चन्द्र के विषय में लिखा है—'उसकी दो स्त्रियों में से एक ब्राह्मण कुल की और दूसरी क्षत्रिय वर्ण की थी।'[23]

(आ) घटियाला (जोधपुर राज्य में) से मिले हुए वि० सं० ६१८ के प्राकृत भाषा के शिलालेख में, जो प्रतिहार राजा कक्कुक के राजत्वकाल का है, उस (कक्कुक) के पूर्व पुरुष ब्राह्मण हरिश्चन्द्र की स्त्री भद्दा (भद्रा) का क्षत्रिय वर्ण की होना लिखा है।[24]

(इ) घटियाले से ही मिले हुए वि० सं० ६१८ के एक संस्कृत शिलालेख में भी वैसा ही उल्लेख है[25]।

ये उदाहरण उत्तरी भारत (उत्तरापथ) से सम्बन्ध रखते हैं; पर (दक्षिणापथ) के शिलालेखों में भी ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं। प्रसिद्ध अजंटा की गुफाओं से कुछ ही मीलों के अन्तर पर गुलवाड़ा गांव के पास की बौद्ध गुफा की पिछली दीवार में एक बड़ा लेख खुदा हुआ है, जिसके नीचे का बहुत कुछ अंश नष्ट होने पर भी ऊपर का बहुत सा हिस्सा सुरक्षित है। उक्त लेख से पाया जाता है—"दक्षिण में उत्तम ब्राह्मणों का एक वंश वल्लूर नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस वंश में (भृगु, अत्रि, गर्ग और आंगिरस के समान यज्ञ) प्रकाश उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र देव हुआ जो कई राजाओं के राज्यों का स्वामी हुआ। उसका पुत्र सोम हुआ, जिसने कई ब्राह्मण और दो क्षत्रिय कन्याओं से विवाह किया। क्षत्रिय कन्या से उसके रवि

---

23 विप्रः श्रीहरिचन्द्राख्यः पत्नी भद्रा च क्षतृ(त्रि)या।
''। तेन श्रीहरिचन्द्रेण परिणीता द्विजात्मजा।
द्वितीया क्षतृ(त्रि)या भद्रा महाकुलगुणान्विता।।
प्रतीहारा द्विजा भूता ब्राह्मण्यां येऽभवन्सुताः।
राज्ञी भद्रा च यान्सूते ते भूता मधुपायिनः।।
राजपूताना म्यूजिअम (अजमेर) में रक्खे हुए मूल लेख से।

24 विप्पो सिरिहरिअंदो भज्ज आसित्ति खत्तिआ भद्दा।
घटियाले के शिलालेख की छाप से।

25 आसीत्प्रतीहारवन्श (वंश) गुरु सद्धि (द्वि)जः श्रीहरिचन्द्रः। अनेन राज्ञी क्षत्रियभद्राया जातः श्रीमान्सुतः श्री रज्जिलः। एपिग्राफ़िया इंडिका, जि० ६, पृ० २७६।

नामक पुत्र हुआ जो सारे मलय प्रदेश का स्वामी बना। ब्राह्मण कन्याओं से जो उत्पन्न हुए, वे वेदों में पारंगत थे। उन ब्राह्मणों का निवासस्थान अब तक वल्लूर नाम से प्रसिद्ध है। रवि का पुत्र प्रवर, उसका राम, राम का कीर्ति और उसका हस्तिभोज हुआ जो वाकाटक वंशी राजा देवसेन के समय विद्यमान था[26]।" आगे लेख अधिक बिगड़ा हुआ है, जहां हस्तिभोज के वंशजों के कुछ और नाम भी थे, जिनमें से निश्चय के साथ देवराज का नाम पढ़ा जाता है। यह शिलालेख वि० सं० की ६ वीं शताब्दी के लगभग का अनुमान किया जा सकता है।

इस प्रकार वि० सं० की ६ वीं तथा १० वीं शताब्दी के शिलालेखों से पाया जाता है कि उस समय से कुछ पूर्व तक भी ब्राह्मणों के विवाह क्षत्रिय कन्याओं के साथ होते थे और प्राचीन प्रणाली का समूल उच्छेद नहीं हुआ था। ऐसी दशा में ब्राह्मण राजशेखर का क्षत्रिय कन्या के साथ विवाह होने के कारण ही उसको क्षत्रिय अनुमान करना निर्मूल है। वास्तव में राजशेखर यायावर कुल का ब्राह्मण ही था।

भारत के प्राचीन विद्वानों तथा राजाओं का लिखित इतिहास न रहने के कारण संस्कृत के पंडितों ने कहीं-कहीं नामों की समानता देखकर उनके सम्बन्ध में भ्रमपूर्ण कल्पनाएं करके उनके इतिहास में और भी उलझन डाल दी है। ऐसा ही भ्रम राजशेखर के विषय में भी हुआ है। माधवाचार्य ने अपने शंकर विजय में लिखा है—'केरल के राजा राजशेखर ने

---

26 अस्ति प्रकाशो दिशिदक्षिणस्यां वल्लूरनाम्नां द्विजसत्तमानां[।]' ' [।।]
तस्मिन्नभूदाहृतलक्षणानां द्विजन्मनां प्राथमकल्पकानाम् [।]
भृग्वत्रिगर्गाङ्गिरसां समानो द्विजर्षभो यज्ञ ' ' प्रकाशः [।।]
तदात्मवो देव इवास देवः कृती गृहस्थो नयवान्क्रियावान्[।]
सराजकं राष्ट्रमुपेत्य यस्मिन्धर्म्याः क्रियाः पार्थ इव प्रचक्रे [।।]
सोमःस्ततः सोम इवापरोऽभूत्स ब्राह्मणः क्षत्रियवंशजासु [।]
[श्रुतिस्मृतिभ्यां] विहितार्थकारी द्वयीसु भार्यासु मनो दधार [।।]
स क्षत्रियायां कुलशीलवत्या मुत्पादयामास नरेंद्रचिन्ह [।]
सुतं सुरूपं रविनामधेयं कृनाविपत्यं मलये समग्रे [।।]
द्विजासु चान्यासु सुनानुदारान् स (सोम?) वेदेपु समाप्तकामान् [।]
वल्लूरनाम्ना दिशि दक्षिणस्यामद्यापि येपाम्वसतिर्द्विजानां [।।]
रवेः सुतोऽभूत्प्रवराभिधानः श्री (रा) मनामाथ बभूव तस्मात [।]
तदात्मजः कीर्तिरभूत्सकीर्तिर्ब्बभूव तस्मादथ हस्तिभोजः [।।]
वाकाटके राजति देवसेने गु (णैपिकोशो) भुवि हस्तिभोजः [।।]

डॉ० जेम्स बर्जेस और पंडित भगवानलाल इंद्रजी संपादित इन्स्क्रिप्शन्स फ्रॉम दी केव टेम्पल्स ऑफ वेस्टर्न इंडिया, पृ० ८८–८६।

अपने रचे हुए तीन नाटक शंकराचार्य को भेंट किए[27]। उक्त पुस्तक में उन नाटकों का नामोल्लेख नहीं है। ई० सन् की १६ वीं शताब्दी के लेखक सदाशिव ब्रह्मेंद्र ने कामकोटि पीठ (कुंभकोणम् मठ) के शंकराचार्यों के वृत्तान्त की पुस्तक 'जगद्गुरुरत्नमालास्तव' में केरल के उक्त राजा के विषय में लिखा है—'एक सट्टक और तीन नाटकों के रचयिता अंधे यायावर राजशेखर का अंधत्व, वृत्तिगंगाधर[28] ने अपनी मंत्र शक्ति से मिटा दिया[29]। फिर उसी (सदाशिव) के गुरु-भाई आत्मबोधेंद्र सरस्वती ने उक्त पुस्तक की टीका में केरल के उक्त राजा को कर्पूरमंजरी सट्टक और बालरामायण, प्रचंडपांडव (बालभारत) और विद्धशालभंजिका इन तीन नाटकों का कर्ता मानकर[30] केरल के राजा राजशेखर तथा हमारे इस लेख के नायक कवि राजशेखर को एक मान लिया, जो भ्रम ही है। वास्तव में ये दोनों भिन्न व्यक्ति थे।

जैसे आजकल के अनेक बंगाली लेखकों में यह धुन समाई हुई है कि प्राचीन काल के प्रसिद्ध २ विद्वानों को जैसे बने वैसे बंगाल निवासी सिद्ध करना और महाकवि कालिदास को भी वे अपनी हठधर्मी से बंगाली बताने लग गए हैं। ऐसी ही हठधर्मी त्रावणकोर राज्य के पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष श्रीयुत् टी० ए० गोपीनाथराव (स्वर्गवासी) ने कवि राजशेखर को केरल का राजा बतलाने में की है, और वह भी बहुत ही भद्दी तरह से। उनका कथन कवि राजशेखर की जाति से सम्बन्ध रखता है जिससे उसका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

त्रावनकोर राज्य के पुरातत्त्व विभाग के पंडित वी० श्रीनिवास शास्त्री (स्मृतिविशारद) को चंगनाशेरि के निकट के तलमन् इल्लं गांव से एक ताम्र-

---

27 ट्रावनकोर आर्कियालॉजिकल् सीरीज; जि० २, पृ० ९–१०।

28 अभिनवशंकर, वृत्ति गंगाधर को उक्त मठ का तीसरा शंकराचार्य बतलाता है। वही, पृ० १०।

29 कृतसट्टकस्त्रिनाटचबन्धव्रतयायावरराजशेखरान्ध्यम्।
हृतवन्त मनन्तमन्त्रशक्ति व्रतिगङ्गाधरमाश्रयेऽर्थसूक्तिम्॥
जगद्गुरुरत्नमालास्तव (वही, पृ० १०)।

30 कृतेति कृतं सट्टकं कर्पूरमञ्जरीनामरूपकं येन कृतसट्टकः त्रिनाटयबन्धे बालरामायणप्रचण्डपाण्डवविद्धसालभञ्जिकाख्य रूपकत्रयविरचनेन यो व्रतः नियमस्तेन सहितास्त्रिनाटचबन्धव्रतः स च यः यायावरराजशेखरः तदाख्यः कविस्तस्यान्ध्यमपाटवमक्षणोरागन्तुकत्वादिति ज्ञेयम् (वही, पृ० १०)।

पत्र वहां के राजा राजशेखर का मिला, जिसमें उक्त राजा के नाम के साथ 'श्रीराज,' 'राजाधिराज,' 'परमेश्वर' और 'भट्टारक' विरुद हैं। उसका संपादन करते समय श्रीयुत गोपीनाथ राव ने लिखा—"उक्त ताम्रपत्र का मिलना केरल के तथा संस्कृत साहित्य के इतिहास के लिये बहुत बड़े महत्व का विषय है"[31] वह ताम्रपत्र उक्त राजा के १२ वें राज्य वर्ष का है। उसमें कोई सं० नहीं दिया, परन्तु उसकी लिपि के आधार पर उन्होंने उसका समय ईसवी सन् ७५० और ८५० के बीच का स्थिर कर लिखा है—'इस राजा को तथा संस्कृत के प्रसिद्ध कवि राजशेखर को एक ही व्यक्ति मानने के प्रश्न का—जैसा कि संस्कृत के विद्वानों का मानना है—हम विचार किए बिना नहीं रह सकते[32]'। फिर राजशेखर के ग्रंथों में मिलनेवाली उसके सम्बन्ध की कुछ बातें अशुद्धता के साथ उद्धृत कर उन पर अपनी ओर से टीका टिप्पणी की है। उनमें से जिन २ बातों का सम्बन्ध हमारे इस लेख से है, उनको उक्त विद्वान् की टीका के साथ नीचे उद्धृत कर साथ ही उनके कथन की जांच की जाती है।

(१–२) वह (राजशेखर) निर्भय (निर्भयनरेंद्र) उपनाम वाले महेंद्रपाल का गुरु था। उसको 'गुरू' 'उपाध्याय' आदि कहा है; और ये (गुरु आदि) विरुद बहुधा ब्राह्मणों के होते हैं, जिससे उसका ब्राह्मण होना माना जाता है; परन्तु उसको चाहमान कुल का भी कहा है, अतएव उसको क्षत्रिय ही मानना चाहिए[33]।

इस पर टीका टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा है—"चाहमान नाम चेरमान के लिये अवश्य भ्रम से लिखा गया होगा। द्रविड़ के प्राचीन और मुख्य राजवंश चेरमान का पिछले समय में विस्मरण हो गया और अधिक नवीन एवं समुन्नत राजपूतों के चौहान वंश का नाम प्रसिद्धि में रह गया, जिससे उक्त भ्रम का होना अनुमान किया जाता है। उस (राजशेखर) को गुरु, उपाध्याय और यायावर कहा है; परन्तु ये कथन उसको क्षत्रिय तथा केरल का राजा मानने में बाधक नहीं हैं; क्योंकि बहुत प्राचीन काल से ही केरल के राजा ब्राह्मणों का सा जीवन व्यतीत करते, शास्त्रों का अध्ययन करते, जो शिष्य उनके पास अध्ययन करने को आते, उनको वे शास्त्र पढ़ाते और नियत (वृद्ध) अवस्था में अपने पुत्रादि को राज्य सौंपकर वानप्रस्थ या यायावर हो जाया करते थे[34]"।

---

31 वही, पृ० ६।
32 वही, पृ० ६।
33 वही, पृ० १०।
34 वही, पृ० १०–११।

गोपीनाथ राव का यह सारा कथन बहुधा कल्पित है और राजशेखर के ग्रंथों का अध्ययन सावधानी से न करने का ही फल है; क्योंकि राजशेखर ने तो अपनी स्त्री अवंतीसुंदरी को चौहान वंश की बतलाया है; अपने को सर्वत्र यायावर या यायावर कुल का कहा है; कहीं भी चौहान नहीं कहा। जब कि राजशेखर चौहान वंश का नहीं था, तो फिर चौहान नाम का भ्रम से चेरमान के स्थान में लिखा जाना[35] और उसको केरल के चेरमान राजवंश का मानना कैसे युक्तियुक्त कहा जा सकता है ?

(३) राजशेखर महोदय को अपनी राजधानी बतलाता और कन्याकुब्ज (? कान्यकुब्ज) और गाधिपुर नामों का उल्लेख करता है, जो महोदय के पर्याय हैं[36]।

इस पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा है--"राजशेखर की राजधानी महोदय के लिये हमें उसके राज्य को टटोलने को अन्यत्र (अर्थात्) उत्तरी भारत में जाने की आवश्यकता नहीं है महोदय तिरुवंजैक्कळम् अर्थात् कोडुंगोळूर (वर्तमान क्रांगनौर) का प्राचीन नाम है, जैसा कि मध्ययुगीन तामिळ साहित्य और बहुत से शिलालेखादि में मिलता है। राजशेखर कन्याकुब्ज और गाधिपुर को उत्तरी भारत के महोदय नगर के पर्याय बतलाया है जो ठीक है; क्योंकि जो स्थान उत्तर (उत्तरी भारत) के महोदय नगर से अधिक महत्व के हैं[37] उनमें अपने नायक राम का दक्षिण की यात्रा को जाते हुए पहुँचना स्वाभाविक है[38]"।

उक्त महाशय का यह कथन तो बिलकुल ही निर्मूल है और कवि राजशेखर को केरल का राजा राजशेखर ठहराने की हठधर्मी से ही लिखा गया है, जिसमें इतिहास का गला घोटने में भी कुछ कमी नहीं की गई। कवि राजशेखर अपने ग्रंथों में कहीं भी अपने को महोदय (कन्नौज) का राजा नहीं

---

35 प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता स्टीन कॉनो ने तेरह हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर कर्पूरमन्जरी का संस्करण प्रकाशित किया, जिसमें तीन हस्तलिखित प्रतियाँ तंजौर से प्राप्त की गई थी। परन्तु उनमें से एक में भी 'चाहुआण' (चौहान) के स्थान पर चेरमान पाठ नहीं था। यह गोपीनाथराव की हठधर्मी ही है।

36 ट्रावनकोर आर्कियालॉजिकल् सीरीज, जि० २, पृ० १०।

37 राजशेखर के कन्याकुब्ज (? कान्यकुब्ज) और गाधीपुर दोनों महोदय (कन्नौज) के ही पर्य्याय हैं न कि महोदय से भिन्न तथा अधिक महत्व के नगर थे जैसा कि गोपीनाथराव ने माना है।

38 ट्रावनकोर आर्कियालॉजिकल् सीरीज, जि० २, पृ० ११।

कहता और न महोदय को अपनी राजधानी बतलाता है। वह तो अपने तईं महोदय (कन्नौज) के राजा महेंद्रपाल का, जिसका उपनाम निर्भयनरेंद्र था, गुरु या उपाध्याय कहता है[39]। महेंद्रपाल कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार (पड़िहार) सम्राट् भोजदेव (आदिवराह) का पुत्र था[40]। महेंद्रपाल के पीछे कन्नौज के राज-सिंहासन पर उसका पुत्र महीपाल (क्षितिपाल) बैठा[41], जिसके समय में भी कवि राजशेखर महोदय में रहा था, और उसके रचे हुए बालभारत नाटक का अभिनय महीपाल के दरबार में हुआ था। इतना ही नहीं, किंतु वह उक्त नाटक में महीपाल को रघुवंशी, आर्यावर्त का महाराजाधिराज तथा मुरल के राजा का सिर नीचा करानेवाला, मेकल के राजा के लिये हस्ति ज्वर, युद्ध में कलिंग के राजा को रोकनेवाला, केरल के राजा के आनंद का नाश करनेवाला, कुलुतवालों को जीतनेवाला, कुंतलवालों के लिये कुठार रूप और हठात् रमठ के राजा की राजलक्ष्मी को छीननेवाला बतलाता है[42]। वास्तव में महीपाल आर्यावर्त का महाराजाधिराज और प्रबल राजा था,

---

39 पारिपार्श्विकः। अध इं। सट्टअं णच्चिदव्वं

स्थापकः। को उणतस्स कई।

परिपार्श्विकः।

भाव कहिज्जउ एअं को भणइ रअणिवल्लहसिहण्डो।
रहुउतचूडामणिणो महिन्दवालस्स को अ गुरु ॥५॥

स्थापक। (विचिंत्य) अए पण्होत्तरं खु एदं (प्रकाशम्) राअसेहरो।··
वालकई कइराओ णिब्भरराअरस्सतह उवज्झाओ···सो अस्स कई
सिरिराअसेहरी··।··कर्पूरमंजरी, प्रस्तावना।

40 मेरे राजपूताने के इतिहास का पहला खंड, पृ० १६२–६३।

41 वही, पृ० १६३।

42 कथमेते महोदयमहानगरलीलावतंसा विद्वांसः सामाजिकाः। तदेवं विज्ञापयामि। (अञ्जलिंबध्वा)······

नमितमुरलमौलिः पाकलो मेकलानां
रणकलितकलिङ्गः केलितट् केरलेन्दोः।
अजनि जितकुलूतः कुन्तलानां कुठारो
हठहृतरमठश्रीः श्रीमहीपालदेवः ॥७॥

तेन च रघुवंशमुक्तामणिना आर्यावर्तमहाराजाधिराजेन श्रीनिर्भयनरेन्द्र-नन्दनेनाधिकृताः सभासदः······

बालभारत की प्रस्तावना।

जिसके अधीन राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, मध्यभारत एवं सतलज से लेकर बिहार तक का प्रदेश था। यदि गोपीनाथराव के कथनानुसार कवि राजशेखर केरल का राजा था, तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि कन्नौज के राजा महेंद्रपाल और महीपाल के यहाँ क्या वह नौकरी करने गया था? यदि राजशेखर केरल का राजा होता, तो कन्नौज के राजा महीपाल को वह "केरल के राजा के आनन्द का नाश करनेवाला कहे" यह कैसे संभव हो सकता है? वास्तव में हमारे कवि राजशेखर का उक्त नाम के केरल के राजा से कुछ भी सम्बन्ध न था।

गोपीनाथ राव नें कन्नौज के राजा महेंद्रपाल का, जिसका राजशेखर गुरु या उपाध्याय था, कुछ भी परिचय नहीं दिया। ऐसे ही उस (महेंद्रपाल) के पुत्र महीपाल के विषय में भी मौन धारण किया; जिसका कारण यही है कि यदि वे इन दोनों राजाओं को महोदय के राजा या आर्यावर्त के महाराजाधिराज कह देते, जैसा कि कवि राजशेखर ने अपने नाटकों में लिखा है, तो फिर राजशेखर को महोदय का राजा कहने की कोई गुंजाइश ही उनके लिये न रहती।

इसी तरह उक्त महाशय का महोदय को कन्नौज न मानकर केरल का क्रांगनोर नगर मानना भी किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि राजशेखर बालरामायण में उक्त नगर का गंगा के तट पर होना बतलाता है, इतना ही नहीं किन्तु सीता को महोदय नगर बतलाने के प्रसंग में उसी नगर को गाधिपुर और कान्यकुब्ज भी कहा है और कान्यकुब्ज के साथ फिर गंगा नदी का उल्लेख किया है[43]। यदि गोपीनाथ राव राजशेखर के नाटकों को ठीक-ठीक पढ़ते, तो उनको अपना दुराग्रह स्वयं प्रतीत हो जाता।

(४) राजशेखर अपने प्रपितामह अकालजलद को महाराष्ट्रचूड़ामणि और अपने एक पूर्वपुरुष सुरानंद को चेदिमंडल का बतलाता है[44]।

---

43 इदं पुनस्ततोऽपि मन्दाकिनीपरिक्षिप्तं महोदयं नाम नगरं दृश्यते।

शश्वत् सुधामवसुधामहितं द्विपद्भि-
नो गाहितं भवति गाधिपुरं पुरस्तात्।
वैदेहि देहि शफरीसदृशं दृशं त-
दस्मिन्नितम्बिनि नितम्बवहद्युसिन्धौ॥
इदं द्वयं सर्वमहापवित्रं परस्परालंकरणैकहेतुः।
पुरं च हे जानकि कान्यकुब्जं सरिच्च गौरीपतिमौलिमाला॥
बालरामायण, १०।८८–८९।

44 ट्रावनकोर आर्कियालॉजिकल् सीरीज, जि० २, पृ० ११।

इस पर अधिक विवेचन करते हुए उन्होंने लिखा है—"भिन्न वंशों के इन दो राजाओं को राजशेखर ने अपना पूर्वज बतलाया है, जो असंगत प्रतीत होता है; और इसका समाधान तभी हो सकता है जब कि हम उनको उसके ननिहाल पक्ष के पूर्वपुरुष मानें[45]।" राजशेखर को तो उन्होंने केरल का राजा मान ही लिया था; इसलिये उसके पूर्वपुरुषों को भी राजा बतलाने की उनको आवश्यकता हुई। परन्तु केरल के राजा में अकालजलद, सुरानन्द आदि के नाम न मिलने से राजशेखर के बतलाए हुए उसके पूर्वपुरुषों के नामों को असंगत कहना पड़ा और उनको भी कहीं न कहीं के राजा बतलाने की आवश्यकता हुई। महाराष्ट्र के राष्ट्रकूट (राठोड़) वंशी राजा कृष्णराज (प्रथम) का विरुद अकालवर्ष मिल जाने से अकालजलद को तो महाराष्ट्र का राठोड़ राजा अकालवर्ष (कृष्णराज) और सुरानंद को चेदि देश का कलचुरि (हैहय) वंशी रणविग्रह (शंकर गण) अनुमान कर अपने चित्त को शांत करना पड़ा। परंतु उनका यह कथन भी सर्वथा कल्पित एवं अरण्यरुदन के समान है; क्योंकि राजशेखर ने बालरामायण में अपने कुल का परिचय देते हुए अकालजलद, सुरानन्द, तरल और कविराज को अपना पूर्व पुरुष बतलाया है[46] और उनको कवि तथा यायावर कहा है, न कि कहीं का राजा। अकालजलद को महाराष्ट्र चूड़ामणि कहा है जिसका अर्थ महाराष्ट्र देश का राजा नहीं, किंतु वहां के विद्वानों या कवियों का शिरोमणि है। इससे यह भी अनुमान हो सकता है कि शायद वह महाराष्ट्र का निवासी हो। जल्हण पंडित ने अपनी सूक्तिमुक्तावलि में अकालजलद के सम्बन्ध का एक श्लोक राजशेखर का कहकर उद्धृत किया है, जिसका आशय यह है—"कविचकोर अकालजलद की वचन-चन्द्रिका का नित्य पान करते हैं, तो भी उसमें न्यूनता नहीं आती[47]"। यह तो उसकी उत्तम कविता की प्रशंसा ही है। वह उत्तम कवि था न कि राठोड़ राजा।

अकालजलद और अकालवर्ष नामों में कुछ सादृश्य तो अवश्य है, परन्तु सुरानन्द और रणविग्रह नामों में सादृश्य का सर्वथा अभाव होने पर भी गोपीनाथ राव ने सुरानंद को चेदि का कलचुरिवंशी राजा रणविग्रह

45 वही, पृ० ११।

46 देखो ऊपर १६४ टिप्पणी †।

47 अकालजलदेन्दोः सा हृद्या वचनचन्द्रिका।
नित्यं कविचकोरैर्या पीयते न च हीयते ॥

सूक्तिमुक्तावलि।

कैसे ठहरा लिया, यह बतलाना भी आवश्यक है। जल्हण पंडित ने सूक्ति-मुक्तावलि में सुरानंद की प्रशंसा में राजशेखर का एक श्लोक उद्धृत किया है, जिसका अभिप्राय यह है—"नदियों में नर्मदा, राजाओं में रण-विग्रह और कवियों में सुरानन्द ये तीनों चेदि मंडल (देश) के भूषण हैं[48]। उक्त श्लोक से ही सुरानन्द का चेदि देश से सम्बन्ध पाया जाता है, परन्तु उसमें तो उस (सुरानन्द) को उत्तम कवि एवं वहां के राजा रणविग्रह से भिन्न पुरुष कहा है। परन्तु गोपीनाथ राव ने रणविग्रह और सुरानन्द के नाम पास-पास आए देखकर सुरानन्द को चेदी का राजा रण-विग्रह मान लिया; क्योंकि उनको तो सुरानन्द को भी कहीं न कहीं का राजा ठहराना ही था। खेद की बात तो यह है कि इस प्रकार व्यर्थ ही बहुत कुछ हाथ पैर मारने पर भी वे तरल और कविराज को कहीं के राजा न बना सके और इसी से उनके नामों का उन्होंने उल्लेख तक नहीं किया।

गोपीनाथ राव का कवि राजशेखर की जाति के सम्बन्ध का ऊपर लिखा हुआ सारा कथन प्रमाणशून्य, निस्सार और दुराग्रहपूर्ण होने से किसी प्रकार आदरणीय नहीं है; क्योंकि न तो कवि राजशेखर चाहमान (चौहान) वंश का था, न चाहमान पाठ चेरमान के स्थान में भ्रम से लिखा जाना मानने के लिये कोई कारण है, न राजशेखर, महोदय या केरल का राजा था, न उसने महोदय नाम का प्रयोग केरल के क्रांगनोर नगर के लिये किया है, न उसका प्रपितामह राठौड़ वंश का राजा अकालवर्ष था और न सुरानन्द, चेदि का कलचुरिवंशी राजा रणविग्रह था। कवि राजशेखर कहीं का राजा नहीं, किंतु महोदय (कन्नौज) के प्रतिहार सम्राट् महेंद्रपाल का गुरु (उपाध्याय) और यायावर कुल का ब्राह्मण ही था*।

ना० प्र० स० (त्रै० न०) काशी भाग ६, सं० २
वि० सं० १९८२ ई० स० १९२५

---

48 नदीनां मेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः।
कवीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डनं॥ सूक्तिमुक्तावलि।

सम्पादकीय टिप्पण

* स्वर्गीय डाक्टर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने कवि राजशेखर की जाति पर विचार करते हुए भिन्न २ तर्क और कल्पनाओं के आधार पर उसको

से ज्ञात होता है[3] । इसी से प्रोफेसर मैक्समूलर ने जैन राजशेखर को तथा कर्पूरमंजरी आदि के इस नाम वाले कर्ता को एक मान कर हमारे लेख के नायक का समय भी ईसवी १४वीं शताब्दी स्थिर किया, जो किसी प्रकार माननीय नहीं हो सकता; क्योंकि उन दोनों के बीच में कई शताब्दियों का अन्तर है। इतना ही नहीं, किन्तु दोनों की भाषा में भी कोई समानता नहीं है। जैन राजशेखर की भाषा वैसी परिमार्जित और सरस नहीं है, जैसी कर्पूरमंजरी आदि के कर्ता की है।

(आ) हेमन हॉरेसे विल्सन ने उक्त कवि का जीवन काल ईसवी ११वीं शताब्दी के अंत या १२वीं के प्रारम्भ में स्थिर किया है[4]।

(इ) डॉक्टर रामकृष्ण गोपाल भांडारकर ने ईसवी १०वीं शताब्दी में[5] प्रॉफेसर स्टीन कॉनो ने ई० स० ९०० (वि० सं० ९५७) के आसपास[6] सी० डी० दलाल ने ई० स० ८८० (वि०सं० ९३७) और ९२० (वि०सं० ९७७) के बीच[7], और डॉ० कीलहॉर्न ने सीयडोनी[8], से मिले हुए शिलालेख का संपादन करते समय प्रसंगवशात् कवि राजशेखर का ईसवी दसवीं शताब्दी के प्रारंभ में होना बतलाया है[9]।

(ई) राजशेखर ने अपने को भवभूति का अवतार कहा है, जिसके आधार पर वामन शिवराम आपटे ने इन दोनों के बीच अनुमान सौ वर्ष का अंतर होना मानकर राजशेखर का ईसवी ८वीं शताब्दी के अंत में होना स्वीकार किया है[10]।

---

3 शरगगनमुनिमिताब्दे (१४०५) ज्येष्ठामूलीय धवलसप्तम्यां निष्पन्नमिदं शास्त्रं श्रोतृध्येत्रोः सुखं तन्यात् ॥

(चतुर्विंशति प्रबन्ध के अंत में)

4 विलसन्; 'हिन्दू थियेटर'; जि० २, पृ० ३६२।

5 डॉ० रामकृष्ण गोपाल भांडारकर 'हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकों की खोज की ई० सं १८८२–८३ की अंग्रेजी रिपोर्ट' पृ० ४४।

6 स्टीन कॉनो, हार्वर्ड ओरिएंटल सीरीज में संपादित कर्पूरमंजरी, पृ० १७६

7 सी० डी० दलाल, 'गायकवाड ओरिएंटल सीरीज में मुद्रित काव्य-मीमांसा की अंग्रेजी भूमिका;' पृ० १५।

8 सीयडोनी (सीरोण खुर्द) गांव संयुक्त प्रदेश के ललितपुर जिले में ललितपुर नगर से दस मील उत्तर पश्चिम की ओर है।

9 'एपिग्राफिया इंडिका,' जि० १ पृ० १७१।

10 वामन शिवराम आपटे; 'राजशेखर; हिज़ लाईफ ऍड राइटिंग्ज;' पृ० ४

(उ) राजशेखर के शिष्य महोदय (कन्नौज) के राजा महेन्द्रपाल के दिघ्वादुबौली [11], गांव से मिले हुए वि० सं० ६००, ५०, ५ (६५५) के दानपत्र का संपादन करते समय डॉ० फ्लीट ने उसके संवत् को, जो प्राचीन शैली के अनुसार अक्षर संकेत से दिया हुआ था, १००, ५०, ५ (१५५) पढ़ा; उक्त संवत् को हर्ष संवत् मानकर राजा महेंद्रपाल का ई० सं० ७६१ (वि० सं० ८१८) में होना स्थिर किया[12] डॉ० फ्लीट के इस अशुद्ध पढ़े हुए संवत् के आधार पर प्रोफेसर पीटर्सन और महामहोपाध्याय पंडित दुर्गा-प्रसादजी (काव्यमाला के संपादक) ने वल्लभदेव की सुभाषितावली की अंग्रेजी भूमिका में राजशेखर का ई० स० ७६१ (वि० सं० ८१८) के लगभग विद्यमान होना अनुमान किया है[13] ।

(ऊ) ए० बोरुहा ने ईसवी ७वीं शताब्दी में उक्त[14] कवि का अस्तित्व माना है ।

इस प्रकार भिन्न भिन्न विद्वानों ने अपनी अपनी गवेषणा के अनुसार ईसवी ७ वीं शताब्दी से लेकर १४ वीं तक के भिन्न भिन्न समय उक्त कवि के लिए स्थिर किये हैं । अतएव हमें यह निर्णय करना आवश्यक है कि वास्तव में राजशेखर कब हुआ ?

उक्त कवि ने अपने ग्रंथों में से किसी में भी उसकी रचना का संवत् नहीं दिया । तो भी उनमें मिलने वाले आभ्यंतरिक प्रमाण उसका समय निर्णय करने में अवश्य सहायक होते हैं ।

कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना में वह अपने को महोदय (कन्नौज) के राजा रघुकुल चूडामणि महेन्द्रपाल का जिसका उपनाम निर्भयनरेंद्र था, गुरु या उपाध्याय बतलाता है[15]; और बालभारत की प्रस्तावना में आर्यावर्त के महा-धिराज, रघुवंश मुक्तामणि एवं निर्भयनरेंद्र के पुत्र महीपाल के समय उसकी राजधानी महोदय (कन्नोज) नगर में अपनी विद्धशालभंजिका नाटिका का अभिनय होना सूचित करता है[16] ।

11 दिघ्वादुबौली गांव बिहार प्रांत के सारन जिले के गोपालगंज विभाग के गोपालगंज नगर से पचीस मील अग्निकोण में है ।

12 इंडियन् 'एंटिक्वेरी', जि० १५, और पृ० ११० और ११२–१३ ।

13 सुभाषितावलि की अंग्रेजी भूमिका, पृ० १०१ ।

14 भवभूति एण्ड हिज प्लेस इन संस्कृत लिट्रेचर; पृ० १७ ।

15 नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ६, पृष्ठ २०५ की टिप्पणी* ।

16 वही भाग ६, पृ० २०६ की टिप्पणी* ।

महेंद्रपाल (निर्भयनरेंद्र) और उसका पुत्र महीपाल दोनों कन्नोज के प्रतिहार (पड़िहार) वंशी सार्वभौम राजा थे, जिनके दरबार में राजशेखर विद्यमान था[17]। अतएव यदि इन दोनों राजाओं के समय का ठीक ठीक निर्णय हो जाय, तो राजशेखर का ठीक समय भी निश्चित हो जायगा।

अनेक पुरातत्व वेत्ताओं के श्रम से असंख्य प्राचीन शिलालेख, दानपत्र आदि प्रसिद्धि में आए हैं, जो भारतवर्ष के भिन्न भिन्न विभागों पर राज्य करने वाले अनेक राजवंशों के अंधकार में पड़े हुए प्राचीन इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश डालते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु कई राजाओं, कवियों आदि के निश्चित समय भी उनसे ज्ञात हो जाते हैं।

कन्नोज का प्रतिहार वंशी राजा महेंद्रपाल, राजा भोजदेव (आदि वराह मिहिर) का पुत्र (उत्तराधिकारी) था। उक्त भोजदेव के पांच लेख अब तक उपलब्ध हुए हैं, जिनमें सबसे प्रथम दौलतपुरा (जोधपुर राज्य) से मिला हुआ वि० सं० ९०० फाल्गुन सुदी १३ का दानपत्र है, जो राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में सुरक्षित है। उसका सबसे पिछला शिलालेख पेहोआ से मिला है, जो हर्ष संवत् २७६ (वि० सं० ९३८) वैशाख सुदी ७ का हैं। इन दोनों से निश्चित है कि वि० सं० ९०० से ९३८ तक तो कन्नोज का स्वामी भोजदेव था; और संभव है कि वि० सं० ९३८ के पीछे भी कुछ वर्षों तक जीवित रहा हो।

भोजदेव के पीछे उसका पुत्र महेंद्रपाल कन्नोज के राज-सिंहासन पर बैठा, जिसका गुरु (उपाध्याय) राजशेखर था। उसके समय के दो शिलालेख और तीन ताम्रपत्र मिले हैं। जो वि० सं० ९५०–९६४ तक के हैं। उनमें सब से पहला वल्लभी संवत् ५७४ (वि० सं० ९५०) का ऊना (काठियावाड़ के जूनागढ़ राज्य में) गांव से मिला हुआ दान-पत्र और सबसे पिछला वि०

---

17 राजपूताने का इतिहास, पहला खंड पृष्ठ ६२–६३ और १६७।

सं० ६६४ का सीयडोनी का शिलालेख है[18]। महेन्द्रपाल के पीछे उसका पुत्र महीपाल (क्षितिपाल) कन्नौज के राज-सिंहासन पर बैठा। उसके समय में भी राजशेखर कन्नौज में ही रहता था। महिपाल के समय का एक दानपत्र शक सं० ८३६ (वि० सं० ९७१)[19] का हड्डाला गाँव (काठियावाड़) और एक शिलालेख वि० सं० ९७४[20] का अस्नी गाँव से मिला है।

कनौज के इन तीन राजाओं के शिलालेखों और दानपत्रों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि राजशेखर वि० सं० ९५० के लगभग से लेकर ९७० के लगभग तक कन्नौज में रहा था; और यही उसका कविता काल भी स्थिर किया जा सकता है।

हमारे इस कथन की पुष्टि राजशेखर की विद्धशालभंजिका' नाटिका से भी होती है। उसकी प्रस्तावना से पाया जाता है कि उसका अभिनय श्री युवराजदेव की राजसभा में हुआ था[21]। प्रो० विलसन ने श्री युवराजदेव शब्द का अर्थ राजा का ज्येष्ठ पुत्र माना है, जो ठीक नहीं है; क्योंकि प्रारंभ का 'श्री' और अन्त का 'देव' अंश उसका राजा होना बतलाता है, न कि राजकुमार। वास्तव में युवराजदेव त्रिपुरी (चेदी देश की राजधानी) के हैहय (कलचुरी, करचुली) वंशी राजा का नाम है[22]। उक्त वंश में युवराजदेव नाम के दो राजा हुए, जिनमें से विद्धशालभंजिका का युवराजदेव इस नाम का पहला राजा था, जिसका उपनाम केयूरवर्ष (कर्पूरवर्ष)[23] भी मिलता है। विद्धशाल-

---

18 वही; पृष्ठ १६२, टिप्पणी ३।

19 वही; पृष्ठ १६३ टिप्पणी २।

20 वही; पृष्ठ १६३, टिप्पणी ३।

21 सूत्रधारः-(आकर्ण्य) अय! यायावरेण दौहिकिना कविराजशेखरेण विरचिताया विद्धशालभञ्जिका नाम नाटिकाया वस्तूपक्षेपो गीयते (विभाव्य) तन्मन्ये तदभिनये श्रीयुवराजदेवस्य परिषदाज्ञा। तदहमपि मन्त्रिणो भागुरायणस्य प्रतीकवृत्या शिष्यैर्विहितचारुनाम्नोऽन्ते वासिनो हरदासस्य भूमिकां सम्पादयामि।

22 युवराजदेव के लिए देखो—खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, का छपा हुआ, हिन्दी टॉड राजस्थान, प्रथम खंड, पृष्ठ ४६४—६७, जहाँ मैंने उसके वंश की पूरी वंशावली दी है।

23 शिलालेखों में युवराजदेव का उपनाम (खिताब) केयूरवर्ष मिलता है; परन्तु कलकत्ते की छपी हुई विद्धशालभंजिका में कर्पूरवर्ष पाठ है, जो शायद केयूरवर्ष का ही बिगड़ा हुआ रूप हो। शुद्ध पाठ केयूरवर्ष ही होना चाहिए।

भंजिका की प्रस्तावना से पाया जाता है कि युवराजदेव का मंत्री भागुरायण था। उसी नाटिका के चौथे अंक में कुरङ्गक नाम का एक पुरुष राजा के सेनापति श्रीवत्स का पत्र लाकर राजा कर्पूरवर्ष (केयूरवर्ष) के सामने रखता है और मंत्री भागुरायण उसे लेकर पढ़ता है। पत्र लम्बा चौड़ा है, जिसमें सेनापति की विजय आदि का वृत्तान्त है। उसके प्रारंभ में ही सेनापति ने नर्मदा (तुहिनकरसुता) के तट-स्थित त्रिपुरी के राजा कर्पूरवर्ष (केयूरवर्ष) को प्रणाम लिखा है और आगे इसको करचुली (कलचुरि) तिलक कहा है[24]। नर्मदा तट पर की नगरी त्रिपुरी हैहय (कलचुरी, करचुली) वंशी राजाओं की राजधानी थी। विद्धशालभंजिका से निश्चित है कि युवराजदेव (प्रथम) और कर्पूरवर्ष (केयूरवर्ष) एक ही राजा के नाम और उपनाम हैं। अतएव राजशेखर का त्रिपुरी के राजा युवराज देव (प्रथम) का समकालीन होना भी निश्चित है।

युवराजदेव (प्रथम) के समय का कोई शिलालेख या दानपत्र अब तक नहीं मिला, जिससे उसका ठीक ठीक समय निर्णय किया जा सके। परन्तु बिल्हारी से मिली हुई युवराजदेव (दूसरे) के समय की बड़ी प्रशस्ति से पाया जाता है कि युवराजदेव (प्रथम) के प्रपितामह कोकल्लदेव ने उत्तर (कन्नोज) में भोजदेव और दक्षिण में कृष्णराज (राठौड़) रूपी दो कीर्तिस्तंभ

---

24 ततः प्रविशति कुरङ्गकः। (प्रणम्य) जेदु जेदु भट्टा. (लेखं प्रक्षिपति) भागुरायण। गृहीत्वा वाचयति

स्वस्ति श्रीमत्त्रिपुर्य्यां तुहिनकरसुतावीचिवाचालितायां
देवं कर्पूरवर्षं विनयनतशिरा सर्व सेनाधिनाथः।
श्रीवत्सोवत्सलत्वान्मुरलजनवधूलोचनैरर्य्यवान
पादद्वन्द्वारविन्दे क्षणमभिरचयत्यंजलिं मूर्ध्नि भक्त्या॥ १८॥

श्रेयोन्यत् कार्यं च लिख्यते। करचुलितिलकस्य पार्थिवस्य तव प्रतापेन महामन्त्रि भागुरायणस्य मतिवैशद्येन मादृशानां च पदातिलवानामादेशनिर्वहणेन प्राचीप्रतीच्युदीचीं दिग्विभागे सर्व एव राजानश्चण्डवृत्तयो दण्डोपनताः स्थिताः केवलमवाचीक्षितिपतयो दृश्यन्ते स्म।

विद्धशालभंजिका (कलकत्ता संस्करण) पृष्ठ १४५-४६।

कलकत्ते के उक्त संस्करण में त्रिपुर्यां के स्थान में नृपुर्यां छपा है, जो अशुद्ध पाठ है; क्योंकि नर्वदा तट पर की कलचुरियों की राजधानी का नाम शिलालेखों में त्रिपुरी मिलता है, न कि नृपुरी।

स्थापित किये थे[25]। अर्थात् कोकल्लदेव, कन्नौज के प्रतिहार भोजदेव और दक्षिण के राठौड़ कृष्णराज का समकालीन था। भोजदेव कन्नौज के प्रतिहार वंशी राजा महीपाल (क्षितिपाल) का दादा महेन्द्रपाल का पिता था, जैसा कि उपर बतलाया गया है। अतएव कन्नौज का महीपाल और त्रिपुरी का युव-राजदेव (प्रथम) ये दोनों भी समकालीन होने चाहिए। इन दोनों के यहाँ राजशेखर रहा था; ऐसी दशा में हमारा ऊपर निर्णय किया हुआ राजशेखर का समय अयुक्त नहीं है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के प्रमाणों के अतिरिक्त वाह्य प्रमाण भी हमारे कथन की पुष्टि करते हैं। राजशेखर काव्यमीमांसा में वाक्पतिराज[26] उद्भट[27] और आनन्द (आनन्दवर्धन)[28] के मत उद्धृत करता है। गउडवहो का कर्त्ता वाक्पतिराज कन्नौज के राजा यशोवर्मा के (जिसको काश्मीर के राजा ललितादित्य ने परास्त किया था) समय अर्थात् विक्रमी ८ वीं शताब्दी में हुआ। उद्भट काश्मीर के राजा जयापीड (वि० सं० ८०८–३९ के लगभग) का सभापति था और आनन्द (आनन्दवर्धन) काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा (वि० सं० ९१२–४० के लगभग) के समय विद्यमान था। अतएव राजशेखर का इन तीनों के पीछे होना निश्चित है।

अब यह भी देखना चाहिए कि राजशेखर का उल्लेख उसके पिछले निकटवर्ती ग्रन्थकारों में से किस किसने किया है। सोमदेव के शक संवत् ८८१

---

25 जित्वाकृत्स्नां येन पृथ्वीमपूर्व–
क्कीर्त्तिस्तम्भद्वन्द्व मारोप्यते स्म।
कोम्भौद्भ्व्यान्दिश्योसौ कृष्णराजः
कोवेर्याञ्च श्रीनिधिर्भोजदेवः॥ १७॥
एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द १, पृष्ठ २५६।

26 "पुराणकविक्षुण्णे वर्त्मनि दुरापमस्पृष्टं वस्तु ततश्च तदैव संस्कर्तुं प्रयतेत" इति आचार्याः।
"न" इति वाक्पतिराजः काव्यमीमांसा, पृष्ठ ६२।

27 पदानामभिधित्सितार्थग्रन्थनाकरः सन्दर्भोवाक्यम्। तस्य च त्रिधाऽभिधा व्यापारः" इत्यौद्भटाः। काव्यमीमांसा, पृष्ठ २२।

28 "प्रतिभाव्युत्पत्त्योः प्रतिभा श्रेयसी" इत्यानन्दः।
काव्यमीमांसा, पृष्ठ १६।

(वि० सं० १०१७) के बने हुए यशस्तिलकचम्पू[29] में, तथा वि० सं० १०४७ के लगभग की बनी हुई सोड्ढल कवि की उदयसुन्दरी कथा[30] में राजशेखर का उल्लेख मिलता है। अतएव राजशेखर का वि० सं० १०१७ के पूर्व होना भी निश्चित है। इनसे पीछे के तो अनेक विद्वानों ने राजशेखर की काव्यमीमांसा से अपने ग्रंथों में कुछ कुछ अंश उद्धृत किए हैं, जिनके उल्लेख की हमें आवश्यकता नहीं। इन सब प्रमाणों को देखते हुए राजशेखर का कविता-काल वि० स० ९५० और ९७० के लगभग माना जा सकता है।

ना० प्र० प० (नं० न०) काशी भाग ६, संख्या ४
वि० सं० १९८२ ई० स० १९२५

---

29 प्रोफेसर पीटर्सन की संस्कृत पुस्तकों की खोज की दूसरी रिपोर्ट, पृ०४५.

30 यायावरः प्राज्ञवरो गुणज्ञै-
रांशसितः सूरिसमाजवर्यैः ।
नृत्यत्युदारं भणिते गुणस्था
नटीव यस्योढरसा पदश्रीः ।।

उदयसुन्दरी कथा, पृष्ठ १५४ (गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज, ग्रन्थ संख्या ११)

सोढ्ढल ने अनेक नाटकों के प्रसिद्ध लेखक राजशेखर की प्रशंसा करते हुए राजशेखर का नाम न देकर उसको यायावर ही कहा है, जिसका कारण यह है कि राजशेखर यायावर नाम से ही अधिक प्रसिद्ध था। वह अपनी काव्य-मीमांसा के प्रारंभ ही अनेक नामों के साथ यायावरीय शब्द जोड़कर अपना परिचय देता है—

यायावरीयः सङ्क्षिप्य मुनीनां मतविस्तरम् ।
व्याकरोत्काव्यमीमांसां कविभ्यो राजशेखरः ।।

काव्यमीमांसा. पृष्ट २.

और आगे अनेक स्थलों में जहां-जहाँ अपना मत उद्धृत करता है, वहां वहां 'इति यायावरीयः' (यह मेरा मत है) ही कहता है। अपना नाम कहीं नहीं देता।

५-गुजरात से मिले हुए प्रतिहारों तथा राजपूताना से मिले हुए सोलंकियों के दानपत्र और शिलालेख

प्राचीन काल में "गुर्जर" नामक एक राजवंश था, जिसके मूल पुरुष के नाम से उसके वंशधर "गुर्जर" कहलाये और उनके अधीन का देश गुर्जर देश अथवा गुर्जरत्रा (गुर्जरों से रक्षित देश) नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्राचीन काल में यह देश बड़ा विस्तृत था और वर्तमान जोधपुर राज्य के सारे उत्तर-पूर्वी भाग से लगाकर भड़ोंच राज्य (गुजरात में) तक उसका विस्तार था। इस समस्त गुर्जर देश की प्राचीन राजधानी भीनमाल (श्रीमाल) थी, जो जोधपुर राज्य के दक्षिणी विभाग में है। गुर्जरों से भीनमाल का राज्य चावड़ा वंशियों ने लिया और उनसे रघुवंशी प्रतिहारों ने।

उनकी वंशावली नागभट से आरंभ होती है। उसकी तीन पीढ़ी बाद नागभट (दूसरा) हुआ, जिसने चक्रायुध को परास्त कर कन्नौज का राज्य छीना और उसी के समय से गुर्जर देश के इन प्रतिहारों की राजधानी कन्नौज हुई, जिससे उन्हें कन्नौज के प्रतिहार भी कहते हैं। उसके पुत्र भोजदेव की ग्वालियर की बृहत् प्रशस्ति से पाया जाता है कि उस (नागभट, दूसरा) ने आन्ध्र, सैंधव, विदर्भ (बरार) आदि के समान आनर्त (दक्षिणी काठियावाड़) को भी विजय किया था[1]। कन्नौज के इन प्रतिहारों के अब तक गुजरात से निम्नलिखित चार दानपत्र और एक शिलालेख मिला है।

१-हांसोट (भड़ोंच जिला, बंबई अहाता) से मिला हुआ वि० सं० ८१३ ई०स० ७५६ का चौहान राजा (भर्तृवड्ढ भर्तृवृद्ध) दूसरे का दानपत्र। ३६ पंक्तियों का यह दानपत्र दो पत्रो पर खुदा हुआ है। इससे पाया जाता है कि चौहान वंश में महेश्वरदास हुआ, जिसका पुत्र भीमदास था। भीमदास का पुत्र भर्तृवड्ढ प्रथम और पौत्र हरदास हुआ। हरदास का पुत्र धुभटदेव और उस (धुभटदेव) का पुत्र भर्तृवड्ढ (दूसरा) था, जिसने भृगु कच्छ (भड़ोंच) में रहते समय सूर्यग्रहण के अवसर पर अक्रुरेश्वर जिले के अन्तर्गत अर्जुनदेवी गांव का एक चतुर्थांश सौज्ञपद्र (?) के निवासी कौण्डिन्य गौत्र के ब्राह्मण तावी के पुत्र भट्टबूट को, एक चतुर्थांश वरमे की (?) गांव के त्रिवेदी ब्राह्मण

---

1 आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया; ई० स० १९०३-४ की रिपोर्ट पृ० १८१।

चर्मशर्मा (?) के पुत्र जव (?) को तथा (शेषांश) सौत्रपद्र के निवासी ब्राह्मण भट्टुल को दान में दे दिया। इस दानपत्र के अंतिम भाग में लिखा है कि जिस समय यह लिखा गया उस समय वहां (प्रतिहार) नागावलोक (नागभट प्रथम) का राज्य था[1]। इससे निश्चित है कि भड़ोच के चौहान कन्नौज के प्रतिहारों के सामन्त थे।

२–विना संवत् का काठियावाड़ से मिला हुआ प्रतिहार राजा भोजदेव का शिलालेख। इससे निश्चित्त है कि उक्त राजा का अधिकार काठियावाड़ पर होगया था।[2]

३–वलभी संवत् ५७४ (वि० सं० ९५०–ई० स० ८९४) का महासामंत चौलुक्य (सोलंकी) वलवर्मा का ऊना (जूनागढ़ राज्य दक्षिणी काठियावाड़) का दानपत्र। यह दानपत्र तांवे के दो पत्रों पर खुदा हुआ है और इसमें ३६ पंक्तियां हैं। इससे पाया जाता है कि परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर महेन्द्रायुधदेव के महासामंत अवनिवर्मा (प्रथम) के पुत्र चौलुक्य वलवर्मा ने नविशसपुर में रहते समय माघसुदि ६ (ता० १७ जनवरी ८९४ई०) को वहाँ की चौरासी का जयपुर गांव कणवीरिका नदी के तट पर स्थित तरुणादित्यदेव के सूर्य-मंदिर को दान दिया[3]।

इस दानपत्र में आया हुआ महेंद्रायुधदेव कन्नौज का प्रतिहार राजा महेंद्र-पाल (प्रथम) था।

४–वि० सं० ८५६ (ई० स० ८९९) का उपर्युक्त ऊना गांव का अवनि-वर्मा (द्वितीय) का दानपत्र। यह दानपत्र तीन पत्रों पर खुदा हुआ है, जिनमें से दूसरा पत्रा दोनों तरफ खुदा है, शेष दोनों केवल एक ही तरफ। सब मिलाकर इसमें ६८ पंक्तियां हैं। इससे पाया जाता है कि चौलुक्य (सोलंकी) वंश में कल्ल और महल्ल नामक दो बड़े राजा हुए। कल्ल के पौत्र (नाम अस्पष्ट है, संभवतः वाहुकधवल) ने धर्म नाम के किसी राजा को परास्त किया, अनेक बड़े राजाओं को जीता और कर्णाट (दक्षिण के राठोड़ों) की सेना को हराया। उसका पुत्र अवनिवर्मा (प्रथम) हुआ, जिसके पुत्र वलवर्मा ने वीषढ़ को हरा कर उसके दो नगारे छीन लिये और जज्जप को मार कर

---

1 एपिग्राफिया इण्डिका; जिल्द १२, पृ० २०२–४।

2 नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ९, पृ० ३२५।

3 एपिग्राफिया इण्डिका; जिल्द ९, पृ० ४।

पृथ्वी को हूणों से मुक्त किया। उसका पुत्र अवनिवर्मा (द्वितीय) हुआ, जिसने यक्षदाम की सेना को हराया, अपने राज्य पर आक्रमण करने वाले राजाओं को परास्त किया, तथा धरणीवराह को भगाया। इसी अवनिवर्मा (द्वितीय) ने, जो परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर भोजदेव के, उत्तराधिकारी परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर महेंद्रपाल देव का सामंत था, धीइक की अनुमति से सौराष्ट्र मंडल (सोरठ, काठियावाड़) के अन्तर्गत नक्शिसपुर की चौरासी का अंबुलक (अंबुलक) गांव जयपुर गांव के निकट कड़वीरिका के तट पर स्थित तरुणादित्य के मन्दिर को दान दिया[1]।

इस दानपत्र में आया हुआ महेंद्रपालदेव ऊपर के दानपत्र में आया हुआ प्रतिहार महेंद्रायुध ही है। धीइक प्रतिहारों की तरफ से नियुक्त काठियावाड़ का शासक होना चाहिये।

५-हड्डाला (पूर्वी काठियावाड़) से मिला हुआ शक संवत् ८३६ (वि० सं०९७१ पौष सुदि ४) (ई० स० ९१४ ता० २३ दिसम्बर) का चाप (चावड़ा) वंशी धरणी वराह का दानपत्र। ५२ पंक्तियों का यह दानपत्र दो पत्रों पर खुदा हुआ है। इससे पाया जाता है कि चाप (चावड़ा) वंश में विक्रमार्क नामका राजा हुआ, जिसका पुत्र अड्डक था। अड्डक का पुत्र पुलकेशी और पुलकेशी का ध्रुवभट हुआ। ध्रुवभट का छोटा भाई धरणीवराह था, जो महीपालदेव का सामंत था और वर्द्धमान में रह कर अण्डणक देश पर राज्य करता था। उसने उत्तरायण पर्व के अवसर पर अर्मद्दक के वंश के देवाचार्य के पुत्र महेश्वराचार्य को कंथिका की स्थली से मिला हुआ विकल गांव दान में दिया[2]।

उक्त दान में आये हुए महीपालदेव को, जिसका सामंत धरणीवराह था, पहले विद्वानों ने गिरनार-जूनागढ़ के चूड़ासमा का वंशधर मान लिया था, पर अब निश्चित प्रमाणों से यह सिद्ध होगया है कि वह कन्नौज के प्रतिहार राजा नागभट के वंशज महेंद्रपालदेव का पुत्र महीपालदेव था।

---

1 एपिग्राफिया इण्डिका; जि० ९, पृ० ६-१०।

2 इंडियन एंटिक्वेरी; जि० १२, पृ० १९०-९५।

कन्नौज के प्रतिहार साम्राज्य की अवनति के समय प्रतिहारों के सामंत चौहान, सोलंकी आदि स्वतंत्र वन बैठे और वे अपने-अपने राज्यों का विस्तार करने लगे । सांभर के चौहानों की एक शाखा ने मारवाड़ की तरफ नाडोल तक अधिकार कर लिया । सोलंकियों ने चावड़ों का अनहिलवाड़े का राज्य अधीन कर उत्तर की तरफ पैर बढ़ाये और मारवाड़ के दक्षिण तक जा पहुँचे । अनहिलवाड़े में राज्य स्थापित करने वाले इस सोलंकी वंश की वंशावली मूलराज से प्रारम्भ होती हैं । मूलराज के पूर्वजों का राज्य पहले कहां था, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता । वि० सं० १०४३ माघवदि ३० (ई० स० ९८७ ता० २ जनवरी) रविवार के दानपत्र में वह अपने को महाराजाधिराज श्री राजि का पुत्र लिखता है[1] । मेरुतुंगाचार्य ने वि० सं० १३६१ (ई० स० १३०४) में प्रवन्ध चिंतामणि की रचना की । उसमें मूलराज के प्रवन्ध में वह लिखता है कि भूयराज (भूयड़देव) के वंशज मुंजालदेव के तीन पुत्र राज, वीज और दण्डक हुए । सोमेश्वर (सोमनाथ, दक्षिणी काठियावाड़) की यात्रा को लौटते हुए ये तीनों कार्पटिक[2] वेष में अणहिल-पुर (अणहिलवाड़ा) पहुंचे । वहां के राजा सामन्तसिंह ने राजा की योग्यता का परिचय पाकर अपनी वहिन लीलावती का विवाह उसके साथ कर दिया । कुछ समय वाद वह गर्भवती हुई और अकाल ही में उसकी मृत्यु होगई । तव मंत्रियों ने उसका पेट चीर कर गर्भस्थ वालक को निकाला । मूल नक्षत्र और अप्राकृतिक रीति से जन्म होने के कारण उसका नाम मूल-राज रक्खा गया । वह जन्म से ही वड़ा होनहार था । अपने पराक्रम से उसने अपने मामा के राज्य की वड़ी वृद्धि की । पीछे से अपने मामा को मार कर[3] वह स्वयं उसके राज्य का स्वामी वन गया[4] । जिन मंडल गणि के वि० सं० १४९२ (ई० स० १४३५) में रचे हुए "कुमारपाल प्रवन्ध" में भी वहुधा इसी कथा की पुनरावृत्ति की है[5] ।

---

1 वही; जि० ६, पृ० १९१ ।

2 "वॉम्वे गैजेटियर" में कार्पटिक का अर्थ कापड़ी (भिखरी) किया है जि० १, खंड १, पृ० १५६, जो ठीक नहीं है । कार्पटिक से कावर लेकर चलने वाले यात्री का आशय है ।

3 मामा को मार कर राज्य लेना कोई आश्चर्य की वात नहीं है । राजपूताने में पिता, भाई, जामाता आदि को मार कर राज्य हस्तगत करने के कई उदाहरण मिलते है ।

4 पृ० ३८–९ (ई० स० १८८८ का संस्करण) ।

5 पत्र २–३ (वि० सं० १९७१) ।

उपर्युक्त ग्रन्थों में आये हुए राज, बीज और दंडक नाम तो ठीक है[1], परन्तु उनमें दी हुई मूलराज के सम्बन्ध की अन्य बातें कल्पना मात्र है। सामंतसिंह का, जिसे अन्य स्थल पर भूभटदेव भी लिखा मिलता है, राज्य केवल सात वर्ष तक रहा था। ऐसी दशा[2] में अनहिलवाड़ा पहुंचने पर राजि के साथ सामंतसिंह की बहिन का विवाह होना, उस (बहिन) के मरने पर उसका पेट चीर कर मूलराज का निकाला जाना, मूलराज का अपने मामा का राज्य विस्तार करना और फिर अपने मामा को मार कर उसका सारा राज्य स्वयं हड़प लेना कैसे सम्भव हो सकता है* ।

---

1 दंडक का नाम हेमचन्द्र-रचित "द्व्याश्रय महाकाव्य" में भी मिलता है (सर्ग ३, श्लोक ६६), जो वि० सं० १२०० से भी पूर्व का है। "प्रबन्ध-चिंतामणि" से पीछे के बने हुए ग्रन्थों में राज, बीज और दंडक के पूर्वजों की शृंखला में भूयड़राज, कर्णादित्य, चन्द्रादित्य तथा समादित्य नाम दिये हैं। इनमें भूयड़राज के अतिरिक्त अन्य नाम कल्पित प्रतीत होते हैं।

2 जिन मंडन गणि-रचित "कुमारपाल प्रबन्ध" पत्र २, रत्नमाला पृ० २२। "प्रबन्ध चिंतामणि" की किसी-किसी प्रति में उसका २७ वर्ष राज्य करना लिखा है (हिन्दी प्रबन्ध चिंतामणि [मुनि जिन विजयजी संपादित] पृ० १८), जो ठीक नहीं प्रतीत होता।

सम्पादकीय टिप्पण

* इस ही प्रसङ्ग में ऊपर श्री ओझाजी ने प्रबन्ध चिंतामणि और कुमारपाल का वर्णन करते हुए वहां अपने दिये हुए टिप्पण में उल्लेख किया है कि 'मामा को मार कर राज्य लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। राजपूताना में पिता, भाई, जामाता आदि को मार कर राज्य हस्तगत करने के कई उदाहरण मिलते हैं, इससे तो यही कहा जायगा कि मूलराज, सामंतसिंह का भागिनेय पुत्र था और उसने अपने मामा अणहिलवाड़ा के अन्तिम चावड़ावंशी राजा सामंतसिंह (भूयगड़देव) को मार कर वहां का राज्य प्राप्त किया। यहां उन्होंने 'प्रबन्ध-चिंतामणि' और 'कुमारपाल प्रबंध' में दी हुई मूलराज के सम्बन्ध की अन्य बातें कल्पना मात्र बतला कर उनमें दिये हुए राज, बीज और दंडक नाम ठीक माने है। किंतु यह स्पष्ट है कि अनहिलवाड़ा से चावड़ों के राज्य का अन्त होने पर ही मूलराज वहां का स्वामी बना।

उपर्युक्त पुस्तकों में आया हुआ राज, तथा मूलराज के वि० सं० १०४३ के दानपत्र में दिया हुआ उसका पिता महाराजाधिराज श्री राजि एक ही व्यक्ति जान पड़ते हैं। ऐसी दशा में मूलराज, भूयराज (भूयगड़देव) का वंशज ठहरता है। भूयड़, भूयग अथवा भूवड़, भूभट के प्राकृत रूप हैं। भूभट, अवनिवर्मा का पर्याय है, जो कन्नौज के प्रतिहारों का सामंत था और काठियावाड़ में राज्य करता था। "प्रवन्ध चिंतामणि" से लगभग ७५ वर्ष पूर्व वने हुए अरिसिंह विरचित "सुकृत संकीर्तन" नामक ग्रन्थ में मूलराज के सम्वन्ध में लिखा है कि वहअपनी भक्ति के कारण प्रति सोमवार को सोमनाथ के दर्शनार्थ जाया करता था[1]। अवनिवर्मा (द्वितीय) के जिन दानपत्रों का उल्लेख ऊपर आया है वे ऊना ग्राम से मिले हैं, जो दक्षिणी काठियावाड़ के अन्तर्गत जूनागढ़ राज्य में सोमनाथ के निकट ही हैं। इससे तो यही प्रकट होता है कि मूलराज सोरठ की सोलंकी शाखा के अवनिवर्मा अर्थात् भूभटदेव अथवा भूयगड़देव का वंशज था। अवनिवर्मा (द्वितीय) का समय वि० सं० ९५६ और मूलराज का वि० सं० ९९८ से १०४२ तक मिलता है। इस पर विचार करने से भी हमारे अनुमान की पुष्टि होती है। मूलराज के ऊपर आये हुए दानपत्र में उसके पिता श्री राजि को महाराजाधिराज लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि वह किसी वड़े राजा का सामंत और छोटे वड़े प्रदेश का स्वामी रहा होगा, जो सोमनाथ के निकट ही होना चाहिये।

काठियावाड़ के इन सोलंकी राजाओं के समय के राजपूताना से अव तक निम्न लिखित शिलालेख और दानपत्र मिल चुके हैं—

१. वि० सं० १०५१ माघसुदि १५ (ई० स० ९९५, ता० १९ जनवरी) का परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर मूलराज का जोधपुर राज्य के सांचोर जिले के वालेरा ग्राम से मिला हुआ दानपत्र। यह दानपत्र तांवे

---

1 पदेऽय तस्याजनि भागिनेयः चौलुक्यवंशार्णव पूर्णचन्द्रः श्री मूलराजः········॥१॥········॥२॥ सुव्यक्तभक्तिः प्रतिसोमवारम य सोमनाथं प्रणिपत्यवीरः ॥३॥

के दो पत्रों के एक ही तरफ खुदा हुआ है और इसमें २१ पंक्तियां हैं। इससे पाया जाता है कि उक्त तिथि को अणहिलपाटक (अनहिलवाड़ा, पाटण) में रहते समय परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर मूलराज ने सत्यपुर मंडल का वरणक ग्राम कान्यकुब्ज से आये हुए दुर्लभाचार्य के पुत्र दीर्घाचार्य को दान में दिया[1]।

इस दानपत्र में आया हुआ सत्यपुर मंडल जोधपुर राज्य का वर्तमान सांचोर जिला है।

भीमदेव का कोई दानपत्र अथवा शिलालेख नहीं मिला है। उसके समय का एक लेख आबू के विमलशाह के मंदिर की एक मूर्ति पर खुदा है, जो वि० सं० १११९ (ई० स० १०६२) का है उससे पाया जाता है कि उक्त राजा भीमदेव के मंत्री शांति (संपत्कर, सांतू) की स्त्री शिवदेवी ने अपने दो पुत्रों नोन्न (नोना) और गीगा के कल्याण के लिए यह मूर्ति[2] स्थापित की[3]।

भीमदेव (प्रथम) के मंत्री विमलशाह के बनवाये हुए विमल वसति (विमलवसही) नामक जैन मन्दिर के जीर्णोद्धार की वि० सं० १३७८ ज्येष्ठ सुदी ९ (ई० स० १३२२, ता० २५ मई) सोमवार की प्रशस्ति में भीमदेव (प्रथम) का कुछ हाल मिलता है। उससे पाया जाता है कि चन्द्रावती के राजा धन्धु (धन्धुक, धन्धुराज) ने उसकी सेवा स्वीकार न की और धारा के स्वामी राजा भोज के पास चला गया। इस पर राजा भीम (भीमदेव) ने विमल (विमलशाह) को आबू का दण्डपति नियत किया। इसने वि० सं० १०८८ (ई० स० १०३१) में आबू पहाड़ पर आदिनाथ (विमलवसही) का मन्दिर बनवाया[4]।

सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह का लेख[5] है। वि० सं० ११८६ (चैत्रादि

---

1 एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द १०, पृ० ९८—९।

2 यह मूर्ति विमलशाह के मन्दिर की तेरहवीं देवकुलिका में स्थापित है।

3 अर्बुद-प्राचीन-जैन-लेख सन्दोह; भाग २, पृ० ३७ लेख संख्या ९३। इसमें 'सोमभूपाल' छपा है, जो ठीक नहीं है। मूल पाठ 'भीमभूपाल' है।

4 मूल लेख की नकल से।

5 मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास; खंड १, पृ० ५३।

सम्पादकीय टिप्पण

मूलराज (प्रथम) का वि० सं० १०५१ (ई० स० ९९५) तक विद्यमान होना पाया जाता है। अतएव उसका राज्य काल वि० सं० ९९८-१०५१ (ई० स० ९४१-९९५ तक निश्चित है।

११८७) आषाढ सुदि १५ (ई० स० ११३०, ता० २३ जून) का यह लेख भीनमाल के निकट गौतम तालाव के पास से मिला है।

वि० सं० १२०० (ई० स० ११४३) का वाली से मिला हुआ सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के समय का शिलालेख। इससे पाया जाता है कि उक्त संवत् में महाराजाधिराज जयसिंह का सामंत आश्वाक था, जिसकी राणी की जीविका में वालाही ग्राम था। उस समय पाल्हा के पुत्र वोपणवस्यमन ने वहु घृणदेवी के उत्सव के निमित्त चार द्रम्म दान दिये। आगे चलकर उसी व्यक्ति द्वारा कुछ अन्य लोगों, कुओं आदि को एक-एक द्रम्म दिये जाने का उल्लेख है[1]।

इस लेख में दिया हुआ वालही ग्राम जोधपुर राज्य का वर्तमान वाली है और वहुघृणदेवी, वहुगुणदेवी अथवा वोलमाता, जिसके मन्दिर में यह लेख खुदा है वाली में।

सांभर के उमरशाह-नामक कुएं में से मिला हुआ सोलंकियों का एक शिलालेख। यह लेख दो काले पत्थरों पर खुदा हुआ है और वहुत बिगड़ी हुई दशा में है। इसमें सोलंकी राजा मूलराज की राज्य-प्राप्ति का समय वि० सं० ९९८[2] (ई० स० ९४२) दिया है और इससे पाया जाता है कि मूलराज का पुत्र चामुंडराज हुआ, चामूंडराज का वल्लभराज, वल्लभराज का उत्तराधिकारी दुर्लभराज, दुर्लभराज का भीमदेव, भीमदेव का पुत्र कर्णदेव तथा कर्णदेव का जयसिंह हुआ[3]। इसके आगे का भाग वहुत विगड़ गया है, जिससे यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि यह लेख सिद्धराज जयसिंह के समय का है अथवा उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल के समय का।

इस लेख में एक स्थल पर "शाकंभरी" शब्द आया है जो सांभर का सूचक है।

बांसवाड़ा राज्य के तलवाड़ा नामक ग्राम के निकट ही गदाधर का जीर्ण मंदिर है। इसके सभा मंडप में एक गणपति की मूर्ति रखी हुई है, जिसके आसन पर वारीक अक्षरों में खुदा हुआ सात पंक्तियों का गुजरात के सोलंकी

---

1 एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ११ पृ० ३३।

2 वही संवत् "कुमारपाल प्रवन्ध" (पत्र ३) में भी मिलता है। पहले मैंने दूसरे ग्रन्थों के आधार पर मूलराज की राजप्राप्ति का समय वि० सं० १०१७ माना था, पर अव उपर्युक्त शिलालेख के मिल जाने से इस विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

3 इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द ५८, पृ० २१५।

राजा सिद्धराज जयसिंह का लेख है, जिसका कितना एक अंश प्रतिदिन जल चढ़ने से बिगड़ गया हैं, फिर भी उसका आशय स्पष्ट है। उससे पाया जाता है कि सोलंकी वंशी राजा कर्ण के पुत्र जयसिंह ने, जो 'सिद्धराज' कहलाता था, नरवर्मा (मालवे का परमार राजा) को जीत कर वहां गणपति का मंदिर बनवाया[1]' इसमें कोई संवत् नहीं दिया है और न यह पता चलता है कि गणपति का मंदिर कौनसा था; परन्तु यह निश्चित है कि यह मूर्ति उसी गणपति के मन्दिर से लाकर यहां रक्खी गई है।

चौलुक्य (सोलंकी) कुमारपाल का वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) का चित्तौड़गढ़ का शिलालेख। यह लेख २८ पंक्तियों का है। इससे पाया जाता है कि चौलुक्यवंश में मूलराज हुआ, जिसका वंशज सिद्धराज जयसिंह था। उसका उत्तराधिकारी कुमारपाल देव हुआ। शाकंभरी (सांभर) के शासक को परास्त कर और सपादलक्ष को उजाड़कर वह शालीपुर (शालेरा, उदयपुर राज्य के चितौड़ के निकट) नामक स्थान में पहुंचा। वहां अपना डेरा रखकर वह चित्रकूट पर्वत (वर्तमान चितौड़गढ़) देखने गया और वहां के समिद्धेश्वर के मन्दिर को उसने एक गांव भेंट किया[2]।

वि० सं० १२०९ माघ वदि १४ (ई० स० ११५२ ता० २७ दिसम्बर) शनिवार का सोलंकी राजा कुमारपाल के सामन्त आल्हणदेव का किराडू का शिलालेख। यह लेख २१ पंक्तियों का है। इससे पाया जाता है कि उक्त समय में जबकि कुमारपाल राज्य करता था तथा श्री करण[3] आदि समस्त मुद्राएं महादेव करता था, उसकी कृपा से किरात कूप, लाठहृद और शिवा का राज्य पाने वाले महाराज श्री आल्हणदेव ने शिवरात्रि के पर्व पर अपने अधीनस्थ उक्त नगरों के महाजनों, तंबोलियों आदि में यह आज्ञा प्रचारित की कि प्रत्येक मास की दोनों पक्षों की अष्टमी, एकादशी एवं चतुर्दशी तिथियों को कोई भी व्यक्ति जीव हत्या न करे और न दूसरों को

---

1 मेरा बांसवाड़ा राज्य का इतिहास; पृ० १४-६।

2 एपिग्राफिया इण्डिका; जिल्द २, पृ० ४२२-२४।

3 राज्य की अनेक मुद्राओं में एक में "श्री" खुदा रहता था, जिसके लगाने को "श्रीकरण" कहते थे। यह मुद्रा मुख्य मानी जाती थी। उदयपुर राज्य में प्राचीन प्रथा के अनुसार अन्य मुद्राओं के अतिरिक्त एक मुद्रा में "श्री" भी रहती है, जो रुपयों के सम्बन्ध के कागजों पर लगाई जाती है।

करने दे। इसके विपरीत यदि कोई जीव हत्या का पाप करेगा तो यदि वह साधारण व्यक्ति हुआ तो उस पर पांच द्रम्म और यदि राजा से सम्बन्ध रखने वाला कोई व्यक्ति हुआ तो उस पर एक द्रम्म दण्ड किया जायगा[1]।

वि० सं० १२०६ (चैत्रादि १२१०) द्वितीय जेष्ठवदि ४ (ई० स० ११५३, ता० १३ मई, का पाली से मिला हुआ सोलंकी राजा कुमारपाल के समय का शिलालेख[2]। यह लेख बहुत बिगड़ी हुई दशा में है।

वि० सं० १२१० (चैत्रादि १२११) ज्येष्ठसुदि ६ (ई० स० ११५४, ता० २० मई, गुरुवार) का सोलंकी राजा कुमारपाल के समय का भाटूंद से मिला हुआ शिलालेख। यह लेख भी बहुत बिगड़ी हुई दशा में है। इसमें कुमारपाल के नाडोल के दंडनायक (हाकिम) श्री वैजाक का उल्लेख है। एक स्थल पर "भट्टुटपद्रनगर" दिया है, जो भाटूंद का सूचक है[3]।

कार्तिकादि वि० सं० १२१२ (चैत्रादि वि० १२१३) श्रावणसुदि ५ (ई० स० ११५६, ता० २४ जुलाई) सोमवार का सोलंकी राजा कुमारपाल का नानाणा से मिला हुआ दानपत्र। यह तांबेके दो पत्रों पर खुदा हुआ है और इसमें ३२ पंक्तियां है। इसमें मूलराज से लगाकर कुमारपाल देव तक की इन सोलंकी राजाओं की वंशावली दी है और कुमारपालदेव के विषय में लिखा है कि उसने अणहिलपाटक (अनहिलवाड़ा, पाटण) में रहते समय नाडूलीय चौहान कुंतपाल के वंश की पुत्री लाखणदेवी के बनवाये हुए लाखणेश्वर के मन्दिर को, जो त्रिपुरुषदेव के मन्दिर के अन्तर्गत है, नाडूल की मंडपिका से एक द्रम्म प्रतिदिन दान दिया[4]।

वि० सं० १२१३ मार्गशिर्षवदि १० (ई० स० ११५६, ता० ९ नवम्बर) शुक्रवार का नाडोल से मिला हुआ सोलंकी कुमारपाल के समय का शिलालेख। इससे पाया जाता है कि उक्त संवत् में, जबकि कुमारपालदेव का राज्य था और उसका मंत्री वहड़देव श्री करण आदि समस्त मुद्रा करता था, उसके सामन्त महामांडलिक प्रतापसिंह ने, जो वोणाना जाति के योगराज का पौत्र और वत्सराज का पुत्र था, वदरी की मंडपिका की आय

---

1 एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ११, पृ० ४४-३।

2 मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास; खण्ड १, पृ० ५७।

3 वही (जोधपुर राज्य का इतिहास); खण्ड १, पृ० ६१-२।

4 मूल दानपत्र की छाप से।

से एक रुपया प्रतिदिन नदूलडागिका[1] के महावीर तथा अरिष्ट नेमी और लवंदड़ी के अजित स्वामीदेव के मन्दिरों को दान दिया[1]।

इस दानपत्र में दिया हुआ 'नदूलडागिका' नाडलाई और वदरी वोलों है, जो नाडलाई से आठ मील उत्तर में है।

वि० सं० १२१६ श्रावण वदि १ (ई० स० ११५६, ता० ३ जुलाई) शुक्रवार का वाली से मिला हुआ सोलंकी राजा कुमारपालदेव के समय का शिलालेख। यह वहां के माता के मन्दिर के एक स्तम्भ पर खुदा हुआ है और इसमें उसके दंडनायक वैजल का उल्लेख है[2]।

वि० सं० १२१८ आश्विनसुदि १ (ई० स० ११६१, ता० २१ सितम्बर) गुरुवार का किराडू से मिला हुआ सोलंकी राजा कुमारपालदेव क समय का शिलालेख। यह लेख वहाँ के शिव मंदिर से मिला है। यह बहुत बिगड़ी हुई दशा में है और इसका लगभग एक तिहाई हिस्सा नष्ट होगया है। इसके प्रारम्भिक अंश में आबू के अग्निवंशी परमारों की उत्पलराज से लगाकर कृष्णराज (द्वितीय) तक वंशावली दी है, परन्तु बीच-बीच में कुछ नाम नष्ट होगये हैं। इसके आगे कृष्णराज (द्वितीय) के छोटे पुत्र सोच्छराज के वंशजों का हाल है। इससे पाया जाता है कि सोच्छराज का पुत्र उदयराज हुआ, जिसने चोड़ गौड़, करणाट और मालवा तक प्रभुत्व स्थापित किया[3]। उसका पुत्र सोमेश्वर हुआ जिसने सोलँकी राजा सिद्धराज जयसिंह की कृपा से अपना गया हुआ राज्य प्राप्त किया। वि० सं० १२०५ (ई० स० ११४८) में सोलंकी कुमारपालदेव के समय उसने मन्दिर की प्रतिष्ठा की और वह किराटकूप (किराडू) तथा शिवकूप की रक्षा करता रहा। वि० सं० १२१८ (ई० स० ११६१) में उसने जज्जक[4] नाम के राजा से तणुकोह (तन्नोट)

---

1 इंडियन एंटीक्वेरी; जिल्द ४१, पत्र २०३।

2 मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास, खण्ड १, पृ० ५८।

3 परमार सोलंकियों के सामन्त थे और उन्हीं के शामिल रह कर इन स्थानों की लड़ाइयों में लड़े होंगे।

4 यह जैसलमेर नगर के संस्थापक भाटी जैसल का दूसरा नाम होना चाहिये। प्राचीन ख्यातों आदि में वि० सं० १२१२ में जैसलमेर नगर का जैसल-द्वारा बसाया जाना लिखा मिलता है। वि० सँ० १२१८ में उसका विद्यमान रहना सम्भव है। तणुकोह (तन्नोट) जैसलमेर से अनुमान ७५ मील उत्तर-पश्चिम में है और वह जैसलमेर राज्य की पुरानी राजधानी थी। नवसर, वर्तमान नौसर है, जो जोधपुर राज्य के फलोदी परगने में है।

और नव्वसर (नौसर जोधपुर राज्य) के किले छीन लिये तथा दंड में उसने १७६० घोड़ों और मयूर आदि ८ हाथी लिये। फिर उसको सोलंकी राजा (कुमारपालदेव) की अधीनता स्वीकार करा कर उसका राज्य उसे वापस दिला दिया।

वि० सं० १२२१ (ई० स० ११६४) का जालोर का सोलंकी राजा कुमारपाल का शिलालेख। यह लेख वहां की पुरानी मस्जिद में लगा है। इससे पाया जाता है कि उक्त संवत् में गुर्जर देश के स्वामी कुमारपालदेव ने प्रभुदेव सूरी से ज्ञान प्राप्त कर जावालिपुर में कंचनगिरि (सौनलगढ़) के गढ़ पर पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया, जो 'कुंवरविहार' कहलाता है[1]। इस लेख में दिया हुआ जावालिपुर जोधपुर राज्य का वर्तमान जालोर परगना है।

वि० सं० १२२८ मार्गशीर्षसुदी १३ सोमवार का नारलाई का सोलंकी राजा कुमारपालदेव के समय का शिलालेख। इससे पाया जाता है कि उक्त संवत् में श्री कुमारपाल देव के राज्य काल में नाडूल्य में केल्हण तथा वोरिपद्यक में राणा लखमण का राज्य था और सोनाणा का ठाकुर अर्णसिंह था। इस कार्य में सूत्रधार महिदरा और इन्दराक ने उसकी सहायता की[2]।

इस लेख में दिया हुआ 'नाडूल्य-नाडोल, सोनाणा उसी नाम का गांव और वोरिपद्यक सम्भवतः बोर्ली है, जो सभी जोधपुर राज्य में है।

विना संवत् का सोलंकी राजा कुमारपाल का चितौड़गढ़ का शिलालेख। यह बड़ा शिलालेख चितौड़ के किले पर एक खेत में पड़ा हुआ मुझे

इससे प्रकट है कि उस समय जैसलमेर राज्य का विस्तार बहुत बड़ा था और जोधपुर राज्य का फलोदी परगना भी जैसलमेर राज्य के अन्तर्गत था। इतना ही नहीं. किन्तु जोधपुर राज्य के उत्तर में स्थित बीकानेर राज्य का दक्षिण का बहुत-सा अंश जैसलमेर के भाटियों के अधीन था। जब राव बीका ने कोड़मदेसर में गढ़ बनवाया तो भाटियों ने उसे नष्ट कर दिया, जिससे उसको और उत्तर में जाकर बीकानेर नगर को अपनी राजधानी बनाना पड़ा। भाटियों का प्रभुत्व उस समय बहुत बढ़ा हुआ था। जज्जक से १७०० घोड़े और आठ हाथी दण्ड लेना भी उक्त राज्य का विशाल होना प्रकट करता है।

1 मूल लेख की छाप से।

2 एपिग्राफिया; इण्डिका; जिल्द ११, पृ० ४८।

मिला था। खेत वाला खरीफ की मौसिम में खेत की रक्षा के लिए उस पर सौया बैठा करता था, जिससे उसके कई अक्षर घिस गये हैं, तो भी अधिकांश भाग सुरक्षित है। मैंने इस लेख को उदयपुर के विक्टोरिया हॉल म्यूजियम में रखवाया, जहां अब तक वह सुरक्षित है।

सोलंकी वंश में मूलराज हुआ। उसका पुत्र चामुण्ड, चामुण्ड का वल्लभराज, वल्लभराज का दुर्लभराज, दुर्लभराज का भीमदेव और भीमदेव का पुत्र कर्णदेव हुआ। कर्णदेव ने सूदकूप नाम के घाट में मालवों के सुभटों को मारा। उसका पुत्र सिद्धराज जयसिंह देव हुआ, जिसने धारा नगरी में भोज के वंश का उच्छेद किया। पुत्र प्राप्ति के लिए वह पैदल सोमनाथ गया और देवता ने भी उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर कहा कि भीमदेव का पुत्र क्षेमराज, क्षेमराज का देवप्रसाद, देवप्रसाद का त्रिभुवनपाल और त्रिभुवनपाल का कुमारपाल है (जो तेरे पीछे राजा होगा)। कुमारपाल ने जांगलदेश के वीरों को स्वर्ग पहुंचाया, तथा उसकी सेना ने बहुत से विरोधी राजाओं की पृथ्वी अपने अधीन की। उस (कुमारपाल) ने शाकंभरी देश को जीता। वह दिग्विजय करता हुआ चितौड़ में पहुंचा। वह दान, शौर्य, सयम, सत्यता तथा देवताओं, ब्राह्मणों और गुरुओं की भक्ति के लिए प्रसिद्ध हुआ। वहां (चितौड़ में) रहते समय उसने अपने अमात्य (मन्त्री) पद-पर मधुसूदन के पुत्र सोमेश्वर को नियत किया। उसने वहां (चितौड़ में) वराह का मन्दिर बनवाया और उसके निर्वाह के लिए दान दिये[1]।

बिना संवत् का जोधपुर राज्य के रतनगढ़ ताल्लुके से मिला हुआ सोलंकी राजा कुमारपाल का शिलालेख। इससे पाया जाता है कि अमावस्या के पर्व पर पुन पाक्ष की स्त्री गिरिजादेवी ने समस्त प्राणियों को अभय-दान दिया[2]।

सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरा) के समय का वि० सं० १२३५ कार्तिक सुदि १३ (ई० स० ११७८ ता० २६ अक्टोबर) का किराडू से मिला हुआ शिलालेख। इससे पाया जाता है कि महाराज पुत्र मदन ब्रह्म-देव उसका सामन्त था[3]।

---

1 मूल लेख की छाप से।

2 भावनगर इंस्क्रिपशन्स; पृ० २०६।

3 मूललेख की प से।

वि० सं० १२४२ कातिक सुदि १५ (ई० स० ११८५ ता० ६ नवम्बर) रविवार का वीरपुर (डूंगरपुर † राज्य में) से मिला हुआ सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का दानपत्र। यह दानपत्र तांबे के दो पत्रों के एक ही तरफ खुदा हुआ है और इसमें कुल बयालीस पंक्तियां हैं। इससे पाया जाता है कि परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सोलंकी भीमदेव (द्वितीय) के राज्यकाल में जबकि महामात्य (प्रधान मन्त्री) देवधर श्री-करण आदि समस्त मुद्रा करता था, उसके सामन्त गुहिलदत्त (गुहिलोत) वंशी भर्तृपट्टाभिधान (उपनाम) वाले महाराजधिराज विजयपाल के पुत्र महाराजाधिराज अमृतपालदेव का वागड़ (डूंगरपुर और वांसवाड़ा राज्यों का सम्मिलित नाम) वटपद्रक मण्डल वड़ोदा पर राज्य था। उस (अमृतपाल-देव) ने सूर्य ग्रहण के पर्व पर भारद्वाज गौत्र के रामकवाल जाति के ब्राह्मण यज्ञ कर्ता ठाकुर शोभा के पुत्र मदन को षड्पंचाशत मंडल (छप्पन, उदयपुर राज्य) के गातोड़ ग्राम का लहसाड़िया नाम का एक रहंट, वाहर की दो हल-वाह भूमि तथा धान (चावल) का खेत दान दिया। दानपत्र के अन्त में महा-राजा अमृतपालदेव, महाराजकुमार सोमेश्वर तथा पुरोहित पालापक के हस्ताक्षर हैं[1]।

वि० सं० १२५३ (ई० स० ११९६) का वड़ा दीवड़ा (डूंगरपुर राज्य) से मिला हुआ सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का लेख। यह वहां के शिवमन्दिर की एक मूर्ति के आसन पर खुदा है। इससे पाया जाता है कि महाराज भीमदेव के राज्य समय डव्वणक (दीवड़ा) गांव में श्री नित्यप्रमोदित देव के मन्दिर में महंतम एल्हा के पुत्र वेजा ने मूर्ति स्थापित करवाई[2]।

वि० सं० १२६३ श्रावणसुदि २ (ई० स० १२०६ ता० ६ जुलाई) रविवार का आहाड़ (उदयपुर राज्य, मेवाड़ की प्राचीन राजधानियों में से एक) से मिला हुआ सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) का दानपत्र। यह

---

1 मूलदानपत्र की छाप से।

2 मूललेख की छाप से।

सम्पादकीय टिप्पण

† यह दानपत्र उदयपुर राज्य के प्रसिद्ध जयसमुद्र (ढ़ेवर) झील के निकटवर्ती वीरपुर गांव से मिला था और बम्बई से प्रकाशित होने वाली भारतीय विद्या (त्रैमासिक) पत्रिका में प्रकाशित हुआ है।

दानपत्र तांबे के दो पत्रों पर खुदा हुआ है और इसमें ३८ पंक्तियां हैं। इसके प्रारम्भ में मूलराज से लगा कर भीमदेव (द्वितीय) तक सोलंकी नरेशों की बंशावली दी है। इससे पाया जाता है कि भीमदेव (द्वितीय) ने नवति (नाउटी, उदयपुर राज्य के) कृष्णात्रेय गोत्रीय रायकवाल जाति के ब्राह्मण वीहड़ के पुत्र रविदेव को अपने राज्य के मेदपाट (मेवाड़) मंडल के अंतर्गत आहाड़ में (वभाउवा) नाम का रहंट और कुएं से संयुक्त कड़वां का खेत दान में दिया और यह आज्ञा दी कि उस कुएँ के संयुक्त खेत से हर फसल में पैदा होने वाले अन्न का नवां भाग आहाड़ के श्री भायल स्वामिदेव के मन्दिर को दिया जाय। दानपत्र के अन्त में भीमदेव (द्वितीय) का हस्ताक्षर और और एक कटार का चिह्न है[1] *

कार्तिकादि वि० सं० १२६५ (चैत्रादि १२६६) वैशाख सुदि १५ (ई० स० १२०९, ता० २१ अप्रेल) मंगलवार का सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का कनखल (आबू) का शिलालेख। इसके प्रारम्भिक अंश में लिखा है कि उज्जेन के शैवमठ के तपस्वी केदार राशि ने, जो तापस की शिष्य परम्परा में था, अचलगढ़ (आबू) के कनखल नामक तीर्थ में, कोटेश्वर आदि के मन्दिरों का जीर्णोद्धार करने के अतिरिक्त शूलपाणि (शिव) के दो नये मन्दिर और कनखल शंभु के मन्दिर के सभामंडप में स्तम्भों की एक पंक्ति बनवाई। इसके अन्तिम अंश से पाया जाता है कि उस समय परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सोलंकी भीमदेव (द्वितीय) का राज्य था और महंतम ठामू श्री करण आदि समस्त मुद्रा करता था। चन्द्रावती का धारावर्ष उस (भीमदेव, द्वितीय) का सामंत और कुमार प्रह्लादन उस धारावर्ष का युवराज था[2]।

वि० सं० १२८३ (ई० स० १२२६) का नाणा (जोधपुर राज्य) से मिला हुआ सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का शिलालेख। यह उक्त गांव के नीलकंठ महादेव के भीतर लगा है और मारवाड़ी भाषा में है।

---

1 सातवीं वड़ोदा ओरिएन्टल कॉन्फरेंस की रिपोर्ट; पृ० ६४५—८।

2 इंडियन एंटिक्वेरी; जिल्द ११, पृ० १२१।

सम्पादकीय टिप्पण

* यह दानपत्र श्री० ओझाजी को उदयपुर राज्य की राजधानी उदयपुर नगर से लगभग डेढ़ मील दूर आहाड़ गाँव, जिसका प्राचीन नाम 'आघाटपुर' लिखा मिलता है, मिला था जो सातवीं ओरियण्टल कान्फरेंस वड़ौदा की रिपोर्ट में प्रकाशित होगया है।

इसमें उक्त मन्दिर के जीर्णोद्धार किये जाने का उल्लेख है[1]।

वि० सं० १२८७ फाल्गुणवदि ३ (ई० स० १२३१, फरवरी) रविवार का, सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) का आबू में तेजपाल द्वारा बनवाये हुए लूणवसही नामक नेमिनाथ के जैनमन्दिर का शिलालेख। इसके प्रारम्भिक अंश में तेजपाल के पूर्वजों की चण्डप से पूरी वंशावली दी है। इसके बाद अर्बुद (आबू) का वर्णन और चन्द्रावती के परमारों की धूमराज के वंशज रामदेव से लगा कर कृष्णराज देव तक की वन्शावली दी है। इसमें कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है, और इससे पाया जाता है कि तेजपाल ने उक्त मन्दिर अपनी पत्नी अनुपमादेवी और पुत्र लावण्यसिंह (लूणसिंह) के कल्याणार्थ बनवाया था[2]।

उक्त संवत् का सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का आबू का दूसरा शिलालेख। इसमें भी तेजपाल द्वारा नेमिनाथ के मन्दिर के बनवाये जाने का वर्णन और उसके सम्बन्ध में मनाये जाने वाले उत्सवों की निश्चित तिथियां तथा कार्यक्रम दिया है[3]।

अन्तिम दोनों शिलालेखों में दिया हुआ तेजपाल सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के पोरवा जाति के मन्त्री वस्तुपाल का छोटा भाई था।

वि सं० १३००(ई० स०१२६३) के आस-पास सोलंकियों की बघेला शाखा के वीरधवल के पुत्र वीसलदेव ने गुजरात के अन्तिम सोलंकी राजा त्रिभुवन पाल से गुजरात का राज्य छीन लिया। उसके वंश वालों के दो शिलालेख अब तक राजपूताना से मिले हैं।

१–वि. सं. १३२० (ई० स० १२६३) का अजारी गांव (सिरोही राज्य) से मिला हुआ बघेला अर्जुनदेव का शिलालेख। यह वहां के गोपालजी के मन्दिर के फर्श में लगा हुआ है। इसके अनुसार उसके समय तक आबू के परमार किसी प्रकार गुजरात के सोलंकियों के अधीन थे।[4]

२–वि० सं० १३५० माघसुदि १ (ई० स० १२९३, ता० २९ दिसम्बर) मंगलवार आबू से मिला हुआ बघेला सारंगदेव का शिलालेख। यह वहां के विमलशाह के मन्दिर में लगा हुआ है। इससे पाया जाता है कि उस समय

---

1 मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास; खण्ड १, पृ० ५९।

2 एपिग्राफिया इण्डिका; जिल्द ८, पृ० २०८–१०।

3 वही; जिल्द ८, पृ० १२९–२२२।

4 मूललेख की छाप से।

अणहिलपाटक में परमेश्वर परमभट्टारक अभिनव सिद्धराज उपनाम वाले महाराजा सारंगदेव का राज्य था और मुख्य अमात्य वाघूप श्रीकरण आदि समस्त मुद्रा व्यापार करता था । उस (सारंगदेव) की कृपा पर निर्भर रहने वाले (सामन्त) महारावल वीसलदेव ने जो अष्टादशशतमण्डल, चन्द्रावती नगरी और अर्बुद भूनिपर राज्य करता था, विमलवसही और लूणवसही मंदिरों की पूजा तथा निर्वाह के लिए कर लगाने की व्यवस्था की और यह आज्ञा जारी की कि यात्रियों से मुंडक, चौकी, रखवाली आदि किसी प्रकार का कर न लिया जावे तथा चन्द्रावती का महारावल अथवा उसका कोई भी अधिकारी महन्त (मन्दिरों का) व कोतवाल यात्रियों से कुछ न ले और कल्याणक (पंच कल्यण) आदि के उत्सवों पर जो संघ आवे उनके चौकी-पहरे का प्रबन्ध करे एवं आबू से लौटने तक किसी की कोई वस्तु चोरी जावे तो आबू का स्वामी (ठाकुर) उसको क्षति-पूर्ति करे[1] ।

आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव स्मारक ग्रन्थ गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित, ई० स० १९४४

(समाप्त)

1 मूललेख की छाप से ।